शब्द (कविता संग्रह 1950)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरण्यान (कविता संग्रह 1984)

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जिन्दगी लहलहाई

शब्द (कविता संग्रह 1980
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)

५0 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

ज़िन्दगी लहलहाई

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक 433

जिन्दगी लहलहाई
(प्रेरक प्रसंग)

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

प्रथम संस्करण 1984

मूल्य 25 रुपये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/45 47 कनॉट प्लेस,
नयी दिल्ली 110001

मुद्रक
अंकित प्रिंटिंग प्रेस
शाहदरा दिल्ली 110032

ZINDAGI LAHALAHAI by Kanhaiya Lal Mishra 'Prabhakar' Published by Bharatiya Jnanpith B/45 47, Connaught Place New Delhi 110001 Printed at Ankit Printing Press Shahdara Delhi First Edition 1984 Rs 25/-

[illegible] (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
[illegible] (कविता संग्रह 1984)
50 [illegible], सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003
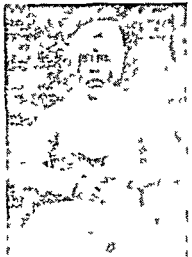
स्वर्गीय पिताश्री
प० रमादत्त मिश्र की पुण्य स्मृति मे

घोर गरीबी म भी जि ह ऋषियो-सा शान्त यागियो-सा सन्तुलित, प्रेमियो सा प्रस न, दानियो-सा उदार सामा य से सामा य जन के प्रति भी अपनत्व बखेरता जीव न जीत देख, मेरे मन मे अपन लिए समता ममतापूण जीवन के अनजान अकुर उगे, जो आग चलकर 'व्यक्ति के लिए अच्छे जीवन की खोज' एव 'राष्ट्र के लिए अच्छे जीवन की खोज' के रूप मे मेरे साहित्य एव पत्रकारिता के एकमात्र लक्ष्य बि दु हो गये और व्यक्तिगत सुविधात्मक आकाक्षाओ के जाल स बचा, मुझे विश्वात्मा गाधीजी के साथ दृढ़ता से जोडन म भावनात्मक सीमेंट की तरह काम आये—

मेरे श्रद्धापूण प्रणाम
क० ला० 'प्रभाकर'

शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लहलहाती जिन्दगी की खोज

गांधी पार्क के लान पर बैठा मैं चिंतन का आनन्द ले रहा था कि एक युवक-युवती आये और मुझसे कुछ दूरी पर बैठ गये। उनके साथ एक बालक भी था, होगा मुश्किल से दो वर्ष का। वे दोनों अपनी बातों में घुल गये और बालक माँ से सटा बैठा रहा। पास ही एक क्यारी थी, बालक घुटनों के बल चल, वहाँ पहुँच गया। फूलों के पौधे अभी पनप ही रहे थे, केवल गेंदे के वृक्ष पर एक फूल खिला था।

बालक ने फूल देखा, तो देखता ही रह गया। उसके चेहरे पर आनन्द की दीप्ति दमक उठी। उसके मुख से कुछ स्वर निकले, वे अस्पष्ट थे, शब्दों का स्वरूप नहीं ले पा रहे थे, पर बालक के मन का उच्छवास उनमें स्पष्ट प्रतिध्वनित था। मेरी दृष्टि बालक पर थी, उसका आनन्दोच्छवास मैं अनुभव कर रहा था। मन में आया, बड़ा गहरा सौंदर्य-बोध है इस नन्हे बालक में, सम्भव है आगे चलकर यह एक सफल कवि बने! बालक ने अपनी तोतली बोली में माँ को पुकारा। मेरी भावधारा टूट गयी, पर माँ बातों में मगन थी। बालक ने और जोर से पुकारा, फिर पुकारा, पर माँ ने न उधर देखा, न कुछ कहा।

मुझे लगा कि बालक अब रो पड़ेगा, पर वह रोया नहीं, उसका आनन्द सशक्त था। वह तेजी से घुटनों के बल चल माँ के पास पहुँच गया और उसकी साड़ी का पल्ला पकड़ खींचने लगा। माँ ने चाहा कि वह न उठे, पर बालक का आग्रह तो गांधी का सत्याग्रह था, उसे उठना पड़ा। बालक उंगली पकड़े पकड़े उसे क्यारी के पास ले गया और फूल दिखाया। इस बार उसके मन का उच्छवास चहक उठा। माँ ने फूल तोड़कर बालक के हाथों में दिया और उसे गोद में उठा अपने स्थान पर लौट आयी।

बालक फूल से खेलने मे तल्लीन हो गया पर बीच-बीच म माँ को भी उसे दिखाता रहा।

बात पूरी हो गयी! हा जी बात पूरी हो गयी पर बात पूरी कहाँ हो है बात म बात जो निकल पडती है। लो माँ बेटे की बात म से साहित्य क बात निकल आयी कि मनुष्य अपन सुख दुख को लिखता क्या है? लिखने की इस वत्ति न दुनिया भर म पुस्तकों का अम्बार लगा दिया है इसलिए प्रश्न महत्त्वपूर्ण है और अपना उत्तर माँगता है। विद्वान लोग युग-युगान्तरो से इस प्रश्न पर बहस कर रहे हैं और यह 'कला कला क लिए स स्वा त सुखाय तक फली हुई है पर इस लम्बी बहस का मूल्य यह है कि प्रश्न अपन स्थान पर ज्यों का त्यों खडा है। बहस की इस धआधार म फिर वही त्रिमूर्ति मेरे सामन आ गयी—बालक फूल माँ।

सहसा मेरे चिन्तन म शरद पूर्णिमा का चाँद उग आया। बालक ने फू देखा। उसका मन आनन्द स भर उठा। आनन्द और दुख को बाँटकर भोगना मानव की सहज वत्ति है तो बालक ने चाहा कि वह इस सुख मे किसी को भागीदार बनाय उसके साथ इस सुख का उपभोग कर। इसी लिए उसन अपनी माँ को आग्रहपूर्वक अपन साथ लिया। मैंने अपने पूछा—क्या अबाध बालक की इस सहज चेतना म साहित्य-सजन क उदभव और विकास पूर्ण रूप म समाया हुआ नहीं है? और क्या इसमे सामाजिक विषमता और मानव मानव को बाँटती विभिन्न दीवारो को तोडकर मानवीय समता और एकता की स्थापना का आह्वान नहीं है?

जिन्दगी लहलहाई कहने को इस पुस्तक का नाम है पर सच यह है कि यह कोई पुस्तक नहीं, स्वय मेरी लहलहाई जिन्दगी ही है जो जिन्दगी मुस्कराई बाजे पायलिया के घुघरू', दीप जल शख बजे माटी हो गई सोना महके आँगन चहके द्वार जियें तो ऐसे जियें क्षण बोल कण मुस्काये, जस चौराहो को पार कर लहलहाते खेत के रूप म यहाँ तक आ पहुची है।

यह एक व्यावहारिक सत्य है कि इन रचनाओ का मै निर्माता हू पर यह एक महासत्य है कि इन्ही रचनाओ क कारण मेरी जिन्दगी मुर्झाई नहीं

शब्द (कविता सग्रह 1950)
उस जनपद का कवि हू (कविता सग्रह 1931)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1934)

5 गौरनगर सागर वि श्वविद्यालय सागर—470003

अयथा पारिवारिक और शारीरिक परिस्थितियाँ एसी नहीं थी कि उनमे कोई जि दगी लहलहा सके। इन रचनाआ ने मेरी जिन्दगी को निर्माण के आन द से भर भर दिया और मैं गाधी पाक के उस बालक की तरह सहज भाव स उम आनन्द म नयी पीढिया का साझीदार बनाने के लिए उच्छ्वसित हो उठा। मैंन उत्तम सुदर स्वस्थ एव जीवन सवधक जो कुछ सोचा, देखा सुना और समग्र रूप मे लिया उसका वितरण अपण ही मरा साहित्य है मरी पत्रकारिता है मरे जीवन की साथकता है।

इन रचनाआ म एक असहाय व्यक्ति के द्वारा जो वीराने मे जन्मा पला, लहलहाती जिन्दगी की खोज है जीवन के निर्माता सत्या तक जिस सोपान परम्परा द्वारा वह पहुँचा उसकी कथा है। वह व्यक्ति मैं हूँ, परन्तु इस 'मैं' का मतलब कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ही नहीं—मैं आप, यह, वह, अर्थात हर वह व्यक्ति विश्व नागरिकता का एकाश है, जो टूटे जीवन को जोडता अधूरे जीवन का पूण करता गिरकर उठता, उठकर चलता, लक्ष्य की ओर बढता, निराशा के वातावरण मे भी आशावान।

तभी तो उत्तर प्रदेश के एक सुदूर कोने मे बैठकर लिखी इन रचनाओ के पाठक पजाब हरियाणा कश्मीर गुजरात महाराष्ट्र बगाल, असम, कर्नाटक तमिलनाडु आध्र, केरल गोवा दिल्ली हिमाचल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, यानी पूरे भारत मे फैले हुए हैं और देश से बाहर के देशा मे भी। प्राचार्या ए० कमला (तमिलनाडु) ने मेरठ विश्वविद्यालय से, प्राध्यापक विश्वास पाटील (महाराष्ट्र) ने पूना विश्वविद्यालय स इस साहित्य पर शोध कर पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है ओ० पी० नायर (केरल) मराठवाडा विश्वविद्यालय मे शोधकाय कर रहे हैं और एक अय विश्वविद्यालय म चौथा शोधकाय निणयाधीन है। यही नहीं इन रचनाआ के पाठक प्राइमरी स्कूलो म है कालिजा विश्वविद्यालया मे हैं देहाता म हैं, कस्बा म है शहरो म है झोपडिया मे है कोठिया मे हैं और य सब भिन भिन धर्मों मे विश्वास रखने वाले हैं।

व मुझ लिखत है, हम इन रचनाआ म किसी लखक के कला कौशल की झाँकी नहीं, स्वय हमारी ही जि दगी आशा, आकांक्षा जिज्ञासा, भावनाओ का उतार चढाव मिला है।

वे मुझे लिखते हैं हम इन रचनाओं में एक नये ढंग का रस मिला
है हमने इन्हें बार-बार पढ़ा है। इन्होंने हमारी जिज्ञासाओं को समाधान
दिये हैं हमारे जीवन को उठाया है निराशा मे आशा दी है आत्महत्या
से बचाया है हमें बदला है पारस्परिक असहमति में सहमति दी है, हमें
समन्वय-सामंजस्य की कला सिखायी है बिगड़े संतुलन को स्थिरता दी
है हमें शान्त-संतुलित जीवन का आनन्द दिया है हम अनुत्तम से उत्तम
और उत्तमोत्तम जीवन का अनुभव पा रहे हैं।
वे मुझे लिखते हैं हम पहले भी पढ़ते थे, पर पढ़ते ही थे इन्होंने हमें
पढ़े को समझना और समझ को आचरण में उतारना सिखाया है, वह भी
बिना प्रयास के सहज भाव से ही।
वे मुझे लिखते हैं और मुझे यह लिखना सबसे अधिक सुख देता है कि
हमें ये रचनाएं आपकी लगी ही नहीं, सच मानिए अपनी ही लगी, इसीलिए
ये हमारी जिन्दगी में रच पच गयीं।
मैंने कहा इन रचनाओं में एक असहाय व्यक्ति के द्वारा जो वीरान में
जन्मा-पला लहलहाती जिन्दगी की खोज है। आधी सदी से भी अधिक
समय से रात दिन चालू इस खोज की मानव जीवन के लिए उपलब्धि
क्या है?
उपलब्धि है यह सत्य कि परिस्थिति के बदलने से मनस्थिति का
बदलना, अधूरी जिन्दगी की जगह भरी पूरी समग्र जिन्दगी पाने का
सही मार्ग नहीं है। उसका सही मार्ग है मनस्थिति के बदलने से परिस्थिति
का बदलना। इस जीवन-सूत्र को थोड़ा स्पष्ट करें। यदि हमारी परि-
स्थिति गरीबी की है पराजय की है भय की है असफलता की है पर
हमारी मनस्थिति समृद्धि विजय अभय और सफलता की बन जाय, हम
बना पायें क्योंकि बना सकते हैं तो हमारी गरीबी पराजय, भय और
असफलता आप ही आप समाप्त हो जाते हैं। कहें हमारा जीवन अपूर्णता
से सम्पूर्णता में बदल जाता है वैसा ही हो जाता है जैसा हम चाहते हैं पर
वह वैसा नहीं है।
बात को और आगे बढ़ायें कि बात साफ हो। व्यक्ति का व्यक्तित्व है
उसका मनस्थिति व्यक्ति का चरित्र है उसकी मनस्थिति व्यक्ति के जीवन

नगर (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1974)
गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

का मानदण्ड है उसकी मनस्थिति, व्यक्ति की कसौटी है उसकी मनस्थिति, व्यक्ति की हीनता और महानता है उसकी मनस्थिति, व्यक्ति का वतमान है उसकी परिस्थिति और व्यक्ति का भविष्य है उसकी मनस्थिति।

ये रचनाएँ मानव की मनस्थिति को हीनता से महानता मे, सकीणता से उदात्तता म, विध्वस से रचनात्मकता म, असतुलन से सतुलन मे, अगति से गति मे परिवर्तित करने की सशोधन शालाएँ (रिफाइनरीज) हैं। मैं प्रसन्न हूँ इस विश्वास से कि जब मेरे हृदय की धडकनें अपना काम बन्द कर देंगी, तब भी ये शालाएँ अपना काय, कि मनुष्य आज से कल और कल से परसो श्रेष्ठ हो, करती रहेंगी, जसे प्रक्षेपणास्त्र स पृथक होने के बाद अतरिक्ष मे घूमता उपग्रह !

विकास/सहारनपुर —कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

नगर (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरण्य (कविता संग्रह 19-4)

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

अनुक्रम

शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)

50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मृत्युजय चूहे की जय

मृत्युजय चूहे की जय !

दैनिक पत्र म एक विचित्र समाचार छपा है कि जावरा म स्वामी माधवानन्द की कुटिया के सामने एक चूहा इधर उधर घूम रहा था कि एक विकराल काला साँप झाडी से निकलकर झपटा और उस चूहे को एक रसगुल्ले की तरह निगल गया।

हाँ, रसगुल्ले की तरह, पर इतना अतर कि रसगुल्ला जीभ और तालू के बीच म दबते ही घुल जाता है और चूहा एक हाड माँस का जीव, तो वह घुलेगा कैसे ? फिर साँप महाराज का भय आतक ता इतना कि वह नैपोलियन बोनापार्ट की खाट के नीचे भी जरा फू कर दें तो वीरो का वीर एक बार तो गेंद-सा उछल ही पडे, पर हाल बेचारो का यह कि मुह मे जाड न किल्ला और जीभ भी यों कि रेशम का धागा, तो न दाब, न चाब, बस लिया सटका धर गुल्लक भज राम ! अब जठराग्नि जाने और उसका काम—गलाये, जलाये, पकाये, पचाये।

अब किस्सा यह यो कि चूहे का मुह साँप ने अपने मुह मे लेकर इस तरह दबा लिया कि जसे चिरबिछोह के बाद मिले मित्र का हाथ दूसरा मित्र अपने गुदगुदे हाथ म ले लेता है। उनका मतलब साफ-साफ या कि चूहे मियाँ साँस के आवागमन से मुक्ति पा लें, तो इन्ह भीतर पहुँचाऊँ, पर वह निकले पूरे प्राणायामी और ज्यो ही साँप ने उन्ह गले के पार किया, तो यही नही कि वह साँस लेने लगे, यह भी कि उस लम्बी कन्दरा म अपन परो स्वय बढ चले।

अब देखिये गणश-वाहन की चातुरी कि पल भर म ही उन्होंने उस
अधेरी कन्दरा की सर्वे कर ली और यह भाँप गय कि पेट की जगह ही
बठने क लिए मजने आराम की जगह है। बठकर उन्होंने शान्ति के साथ
दो चार साँस लिये और अपन बिल से इस कन्दरा की तुलना की। अँधेरा
वहाँ भी था यहाँ भी है, पर वहाँ अधेरे स जब चाह प्रकाश म जा सकते थे,
यहाँ यह सम्भव नही। क्या ?

दिल दिमाग दोना सन्नाटा खा गये। ओह, यह कन्दरा नही, साप का
पट है। उन्ह याद आया साँप का आक्रमण, उसके मुह की दाब और तब
वह धीमी सटक ता मौन ही मौत—बचने का कोई उपाय नही यहाँ स
निकलने का कोई माग नही। उन्ह याद आ गया अपनी चुहिया, ता उनकी
आँखें तर हो आयी—हाय, बेचारी प्रतीक्षा कर रही हागी।

चुहिया चिन्तन ने सन्नाटे की गहराई कम की, तो उत्साह ने अँगडाई
ली उद्योग ने सिर ऊचा किया। उन्हे याद आया कि जब वह शहर म थे
तो उन्होंने सीमण्ट का फश काटकर कोने म अपना घर बना लिया था और
बुन्िया सठानी जब खाने पीन का सामान आलमारी म रखन लगी ता
उन्होंने उसकी मजबूत लकडी काटकर अपने लिए एक खिडकी खोल ली
थी। उन्होंने सोचा क्या साँप के पट को काटकर बाहर नही निकला जा
सकता ?

इस प्रश्न के उत्तर म उनकी बुद्धि ने ना नही की तो मुलायम-सी जगह
देखकर उन्होंने अपना पहला दाँत मारा। उनका मन हृप से खिल उठा और
आप ही आप वह कह उठे, 'अरे, यह तो न सीमण्ट है न लकडी एकदम आलू-
बुखारा है—मुलायम और मजेदार।' और तब दूसरी चिकोटी काटत हुए
उन्होंने सोचा 'बडा फुफकारना फिरता है शेषनाग का बच्चा, ले देख खिडकी
तो यह बनी, पर ज्यादा अकडेगा तो छलनी बना दूगा।'

अब साँप के प्राण सकट म और अक्ल हैरान कि हे भगवान, यह हुआ
क्या ? आज कोई पहली बार ही तो यह मिठाई नही खायी ? फिर यह
उखाड-पुछाड क्या हो रही है ? अरे बाप रे, यह तो उस नेवल से भी तेज है।
वह तो ऊपर ही दाँत मारता है पर यह तो आँतें काट रहा है! उफ़!
उफ !!

नाद (कविता संग्रह 1950)
उस अनागत का कवि हूँ (कविता संग्रह 1951)
आस्थान (कविता संग्रह 1934)
'0 गौरीनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

साँप फुकारा, पर फुत्कार भीतर तो पहुँचती नही। कच्च! ओह, फिर उसने काटा! साँप ने पूछ फडफडायी, जमीन पर मारी, पर उससे लाभ? उसने फन उठाया, उसे जमीन पर मारा, सीधा हुआ, कुण्डली कसी, लोट-पोट हुआ, पर चूहे के दाँत की आरी न रुकी, न रुकी, चली—चलती रही और सबने देखा कि कुछ ही देर म अपनी बनायी खिडकी से कूदकर चूहा बाहर आ गया।

आ गया? अरे साहब, आ गया क्या, गया। वह कूदकर निकला और दौडकर अपनी झाडी मे पहुँचा। साँप कुछ देर छटपटाया, फिर सरककर एक झाडी मे हो गया। जाने कौन-सी नस कट गयी थी कि कुछ ही देर मे उसके प्राण-पखेरू उड गये और चीटियाँ चीटे और चीलें चट कर गय!

• • 9409
3587

"हैलो! मालवीयजी महाराज हैं?"

"लीजिए, उनसे बात कीजिये।"

पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीयजी महाराज नयी दिल्ली आये हुए थे। मैं भी किसी काम से दिल्ली गया, तो चाहा कि उनके दशन करूँ। उनकी वाणी कानो मे पडी। उनकी वाणी मे एक निजी समतोल था। मुझे तो वह सदा पचगव्य-सी मधुर लगी, "दूर से क्या बोलते हो,यही आ जाओ, आते हो?" मालवीयजी बहुत भले थे और उनके चरित्र का गुण-दोष ही यह था कि वह किसी को इन्कार नहा कर सकते थे। मैं पहुँचा, तो देखकर खिल गये और वह खिले तो मैं हिल गया—जाने कब तक कहाँ-कहाँ की बातें होती रही। अचानक उन्होंने घडी देखी और वह हडबडाकर खडे हो गये, 'मुझे तो इस गाडी से मथुरा जाना है।"

जल्दी-जल्दी कपडे पहनत हुए अपने सेवक से बोले, "सामान मोटर मे रखो।" सेवक ने अपनी घडी देखी, "महाराज, अब गाडी नही मिल सकती। उसे तो दिल्ली स्टेशन से छूटे भी काफी समय हो चुका।"

न घबराहट न परेशानी। वही शान्त चेहरा, "अरे रखो तो!" और वह मोटर म जा बठे। मैं भी साथ। इधर से मालवीयजी स्टेशन आये, उधर से गाडी। जितने मिनट वह लेट, उतनी ही लेट गाडी। अब वह फस्ट क्लास

वे एक डिब्बे मे और मैं खिडकी से बाहर। बोले, 'लो एक सूत्र लिखो।'
मैंने एक कापी निकाली, तो बोल, "जब तक असफलता छाती पर न चढ बैठ दम ही न घोट दे, उसे स्वीकार मत करो।
मेरे मुह से अनायास निकल गया और सफलता के लिए बराबर उद्योग करते रहो।' सुनकर बहुत खुश हुए— बस तुम ठीक समझ गये।"
सोचता हू मैं तो जो कुछ समझा सो समझा पर यह चूहा मालवीयजी महाराज की बात को पूरी तरह समझता था और समझता क्या था उसने तो करके दिखा दिया। सांप को देखते ही आदमी मौत का घेरा देखता है। फिर यह जरा सा चूहा और सांप को उसने देखा ही नही सांप न उसे निगल लिया पर सांप के पेट म पहुचकर भी उसने मौत का घेरा नही, जिन्दगी का मैदान ही देखा।

विद्यार्थियो की एक विचार गोष्ठी म बातचीत करने गया, तो मुझसे प्रश्न पूछा गया सफलता का माग क्या है?
मैंने उत्तर दिया, स्वप्न, सकल्प श्रम सिद्धि।
व्याख्या म कहा 'स्वप्न देखो, कल्पना करो। इससे तुम्हारी चाह इच्छा को एक निश्चित रूप मिलेगा कि तुम चाहते क्या हो और तुम्हारी चाह कहीं एक ख्याली पुलाव ही तो नही है।
'तब सकल्प करो इरादा बाधो फसला करो कि मैं इस स्वप्न को साकार करूँगा पूरा करूगा पाकर ही दम लूगा। उस सकल्प से तुम्हारा स्वप्न तुम्हारे जीवन का एक यथाथ हो जायगा और उसे पूरा करने का बल तुम्हें अपने भीतर अनुभव होगा। यही नही अब तुम्ह तुम्हारा स्वप्न आकाश का नक्षत्र नही इसी पृथ्वी का फल मालूम देगा और उसकी दुलभता का निराशाजनक भाव नष्ट हो जायेगा। तुम सोचोगे मैं इसे जरूर पा सकता हूँ।
'तब श्रम करो जुट जाओ जुटे रहो पर श्रम का प्राण है योजना यह मत भूलो। युग-सन्त विनोबा का एक वाक्य है 'बे-अक्ल और बेकाम अक्ल से बचो।' य अक्ल काम का अथ है योजनाहीन श्रम और बेकाम अक्ल का अथ है योजना ही योजना ख्याली पुलाव। दोनो स बचो और योजना-पूर्वक सोच-समझकर, श्रम करो—बस सिद्धि-सफलता सदा तुम्हारे द्वार

सागर (कविता सग्रह 1950)
उस अन्तर का कवि हू (कविता सग्रह 1951)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1934)
60 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

खडी मिलेगी।"

मालवीयजी महाराज ने उस दिन श्रम की सीमा ही तो बतायी थी "जब तक असफलता छाती पर न चढ बठे, दम ही न घोट दे, उसे स्वीकार मत करो और सफलता के लिए बराबर उद्योग करते रहो।"

श्रम और सिद्धि के बीच का मार्ग साफ सुथरा नही है। उसमे बाधाएँ हैं, रुकावटें हैं, सकट हैं, खतरे हैं, पर इनसे बचने के लिए ही तो अक्ल की आवश्यकता है और इस अक्ल के दो तकाजे हैं। पहला तकाजा सुना था अमेरिका के राष्ट्रपिता जाज वाशिगटन ने, जब उन्होने युवको से कहा, "जिस काम के करने म रुकावटें, तकलीफें और सकट नही आत, मैं उसे मनुष्य के करने लायक काम ही नही समझता।"

पूछा गया, "क्यो ?" तो बोल, "मनुष्य की महत्ता इसम नही कि वह काम करता रहे। उसकी महत्ता इसमे है कि वह विशिष्ट काम करे और काम का विशिष्टता दते हैं माग के सकट, पथ की बाधाएँ, राह की रुकावटें —तो जिस काम मे य नही, वह तो एक मामूली नगण्य काम ही हुआ।"

अक्ल का दूसरा तकाजा है इन पक्तियो मे, जो काव्यगद्य सी मीठी मृदुल हैं

सकट जब तक दूर है,
उससे कन्नी काटो, आँखें न मिलाओ,
बचे-बचे रहो और उसे अपनी ओर
अभिमुख होने का अवसर न दो।
जब सकट तुम्हारी ओर अभिमुख हो,
बढकर तुम्हारे द्वार पर आ ललकारे,
तुम पल भर भी बिना खोये,
उसकी ललकार स्वीकार कर लो,
और उससे भिड जाओ!
चिन्ता न करो,
उसके साथ अपनी ताकत की तुलना भी न करो।
भय का विचार मन मे भी न आने दो,
बस, उससे भिड जाओ।

याद रखो—
सक्ट इसलिए तुम्हारे द्वार नही आया
कि तुम्हारे दशन कर लौट
जाये।
पल भर को भी न भूला कि
वह तुम्ह एक रसगुल्ले की तरह
निगल जाने को आया है।
इस हालत म
चिन्ता भय बचने भागने की वत्ति
तुम्हारी चरित्र-हीनता होगी
और चरित्र हीना के साथ
सकट वही व्यवहार करता है,
जो बिलाव चूहे के साथ
कि खल खिलाकर उस खा जाय।
एक बात याद रखो—
तुम्हारी झिझक तुम्हारी भीति,
तुम्हारी सम्पूण शक्ति को
तुम्हारे शत्रु की भुजाओ म
भर देती है।
सो सुनो बुद्धि की एक बात—
जब सक्ट द्वार पर है
तो विनाश की दाढ म तुम हो ही
और तुम्हारी निराशा झिझक,
भय और दीनता,
विनाश की गति को,
तीव्रता ही देंगे
और क्या ?
पर यदि झिझक छोडकर
तुम भिड जाओ,

शब्द (कविता संग्रह 1950)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1931)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
गौरनगर सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

तो यह विनाश बच सकता है।
तो सुनो, सोचो, समझो—
सकट एक आँधी है, बाढ है,
जो उसके पहले झपाटे मे नही गिरा,
पहले बहाव मे नही बहा,
अपनी जगह जमा-टिका रहा,
आँधी और बाढ मान लेते हैं,
कि वह अजेय है,
और यह है युद्धनीति कि
शत्रु को तुम्हारी अजेयता का
आभास भी मिला कि वह उखडा,
तो दुविधा मे मत पडो,
क्योंकि
बचाव की यह सम्भावना
यदि एक फीसदी है,
तब भी झिझक छोडकर भिड पडो,
क्योंकि
इतिहास ने अनेक बार
एक फीसदी को सौ फीसदी
हो जाते देखा है।
कौन जाने तुम भी इतने भाग्यशाली
हो कि एक नयी नज़ीर
कायम कर सको।
तुम्हे विश्वास नही ?
लो तुम्हारी बात मान लेता हूँ
कि तुम नही जीत सकते,
सकट की ही विजय निश्चित है,
पर यह क्यों भूलते हो
कि मत्यु का भी एक सौन्दय है!

कुत्त की मौत
और बहादुरी की मौत म
क्या कुछ भी अन्तर नहीं ?
कौन कह सकता है इस पर हाँ ?
फिर यही क्या कुछ कम है
कि तुम आदमी की मौत मरो
और यदि तुम विजय की एक नयी
नजीर कायम नहीं कर सकते,
तो सुन्दर मत्यु की ही
एक नजीर कायम कर दो ।
जाने इससे भविष्य म
कितने लोग प्रेरणा पायें ।
जानते नहीं तुम
जौहर भी
इतिहास का शानदार पन्ना है ।

बातें बहुत हो चुकी,
संकट द्वार पर ललकार रहा है,
उठो और उठते उठते ही
भय झिझक और चिन्ता को
दूर फेंक दो—
बिल्कुल उसी तरह
कि जसे अपने ऊपर चढे
कानखजूरे को फेंक देते हो
और भिड जाओ पूरी ताकत से
तुम्हारी विजय निश्चित है ।
फिर निश्चित अनिश्चित क्या
जब पराजय का कोई नाम ही नहीं ।
वह तत्त्वज्ञानी था—

[illegible] कविता संग्रह 1970)
उस अन्तर का बिन्दु (कविता संग्रह 1931)
अरण्यान (कविता संग्रह 1984)
लेक्चरर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जिसने अतीत म गाया—
"काय वा साधयेयम, शरीर वा
पातयेयम"
—मैं अपना काय सिद्ध करूँ या मर जाऊँ
फिर भय क्या, मिझक क्या
जब एक मुटठी मे विजय
और दूसरी मे सतोष है।

इन नन्ही-नन्ही पक्तियो मे जो बडी बात कही गयी, वह बडी तो है ही, महत्त्वपूण भी है। जब हम सकट मे फँसते हैं, तो हम सकटपूण जीवन और शान्तिपूण जीवन मे चुनाव नही करना होता हम चुनाव करना होता है इस स्थिति म कि हम सकट के सामने सिर झुकाकर चुपचाप हार जायें, नष्ट हो जायें या सकट को परास्त करने के लिए हाथ पर मारकर बचाव की क्षीण से क्षीण सम्भावना की परीक्षा करें ?

जीवन का एक महत्त्वपूण रहस्य यह है कि यह सभावना कभी क्षीण नही होती। हम अपनी मानसिक कमजोरी के कारण उसे क्षीण मान लेते हैं। सच्चाई यह है कि यह सम्भावना क्षीण-दुबल नही, सूक्ष्म होती है और हम इसे अपनी मानसिक आँखो की कमजोर दष्टि के कारण ठीक समझ आक नही पाते। इसका उपाय है चश्मा। बाहरी आँखो के लिए शीशे का चश्मा, तो भीतरी आँखो के लिए साहसी जनो के अनुभवो का चश्मा। यह चश्मा ही तो है कि चूहा साँप के पेट से जीता-जागता निकल आया। जहा चूहा पहुच गया था, वहाँ से उसके बाहर आने की सम्भावना कितनी सूक्ष्म थी, पर वह कितनी मजबूत निकली ?

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रश्न सकट के समय स्थिर रहने का नही है, प्रश्न तो सम्भावना की सूक्ष्मता का बल पहचानने का है—वही बात कि असफलता को उस समय तक स्वीकार मत करो जब तक कि वह दम न घोट दे और विश्वास रखो कि जीवन मे असफलता के अवसर कम और सफलता के अवसर अधिक हैं।

1944 मे कुछ दिन के लिए गाधीजी सेवाश्रम से वर्धा आकर रहे। वे कही भी और किसी भी चीज के बिना रह सकते थे, पर प्राथना के बिना

नही। प्रभात की प्रार्थना का समय साढे चार बजे था। सब लोग प्रार्थना भूमि मे आ बैठे थे। वल्लभ स्वामी अभी नही आये थे, उन्हे पाँच छ मील से आना था और आज गीता पाठ करना था। गाधीजी भी ठीक समय पर आकर अपनी जगह बैठ गये तो सब मे चचलता हुई कि वल्लभ स्वामी नही आये और अविश्वास उगा उभरा कि अब वह नही आयेंगे।

एक कण्ठ से यह अविश्वास फूटा "वह अब क्या आयेंगे? हम प्रार्थना शुरू कर दें।

क्या नही आयेंगे वह?" यह प्रश्न और 'अब क्या आते, दो तीन मिनट ही तो हैं।'

यह उत्तर गुनगुनाहट मे जागा कि गाधीजी का विश्वास समाधान मे उभरा, 'अभी तो तीन मिनट बाकी हैं, आयगा क्या नही।'

भाषा के सकेत कितने प्यारे और मीठे होते हैं? अविश्वास की भाषा है, 'दो-तीन मिनट ही तो।' और विश्वास की भाषा है 'अभी तो दो तीन मिनट।' स्वर आधा मिनट शेष था कि वल्लभ स्वामी आ पहुँचे। गाधीजी ने सबकी ओर ताडकर देखा। तुम लोग विश्वास की डोर इतनी जल्दी क्या छोड देते हो? यही बात कि असफलता को इतनी जल्दी क्यों स्वीकार कर लेते हो?

सचमुच जीवन में हार की, असफलता की सम्भावना से जय की, सफलता की सभावना अधिक सच्ची, अधिक वास्तविक है। मेरे बन्धु श्री जगदीशचन्द्र बहुत बीमार थे। निराशा का वातावरण था, पर उद्योग थककर बैठा नही था—काशी मे उनकी चिकित्सा हो रही थी। अतिम प्रयत्न के रूप मे सर्वोत्तम चिकित्सकों का एक बोर्ड बठाया गया पर सबका ज्ञान विज्ञान इस परिणाम पर पहुँचा कि जीवन की डोर कट चुकी है और अब प्रश्न सिर्फ समय का है। परिवार को स्पष्ट कर दिया कि उन्हे घर ले जायें और वह घर ले आये गये।

मृत्यु आयी नही थी, पर उसके आने की प्रामाणिक घोषणा हो चुकी थी। रोगी ने परिवार ने मित्रो ने मान लिया था कि घोषणा अटल है। आशा की मशाल कहाँ जलती जब सम्भावना का दीपक भी बुझ चुका था। इस दुघटना पर हमें किसी दिन रोना ही था, क्योकि हम पहले ही

काफी रो चुके थे। स्थिति यह थी कि अंतिम दर्शन के लिए सम्बंधी मित्र आ रहे थे—आ चुके थे।

उस दिन हम सबके सहृदय मित्र डाक्टर सूर्यप्रकाश गुप्त आये। डाक्टर आखिर डाक्टर, रोगी की देखभाल कर बोले, "रात ही मैंने एक नयी दवा का विज्ञापन पढ़ा है। इंजेक्शन है। शाम को मैं लेकर आऊँगा।" वह शाम को आये और इंजेक्शन लगा गये, पर रोगी देह में इतनी भी चेतना न थी कि वह सुई के चुभन से चौंके, पर पांचवें इंजेक्शन पर जगदीशचन्द्र के चेहरे पर आशा की पहली रेखा दिखायी दी और 100वें इंजेक्शन पर वह अपनी मृत्युशय्या से कूदकर जीवन के आंगन में आ खड़े हुए!

क्या बात हुई यह? यही कि सफलता की सूक्ष्म संभावनाओं का बल आँकने में हम सब चूक गये और डाक्टर सूर्यप्रकाश गुप्त ने उसे आँक-तोल कर थाम लिया। उनकी सफलता ही यह है कि उन्होंने सफलता-असफलता पर विचार नहीं किया और सफलता की छोटी से छोटी संभावना को ही सबकुछ मानकर वह जुट गये।

• •

लो, यह आ गये यशपाल—हिन्दी के वर्चस्वी लेखक और भारतीय स्वतन्त्रता के लिए खून का फाग खेलनेवाले यशस्वी क्रान्तिकारी। इनकी भी एक कहानी है—सुनने लायक, विचारने लायक।

1929 की 23 दिसम्बर, घने कोहरे में डूबी ब्रह्मवेला। वाइसराय लॉर्ड इरविन कोल्हापुर से दिल्ली आ रहे हैं और दिल्ली में उसी दिन गांधीजी से उनकी मुलाकात तय है। क्रान्तिकारी दल ने तय किया कि इस गाड़ी को बम से उड़ाकर वाइसराय को समाप्त कर दिया जाये। लाइन के बीच में बम रख दिया गया और ज़मीन के नीचे नीचे दूर तक तार फला कर उसे बटरी से जोड़ दिया गया कि गाड़ी के आने पर यशपाल इस बैटरी में पलीता लगा दें!

ठीक समय पर गाड़ी आयी, पलीता जला, डब्बे के नीचे विस्फोट हुआ, पर बम कमज़ोर निकला। बिना विशेष नुकसान उठाये गाड़ी सर से निकल गयी। अब यशपाल सड़क पर कि अपनी मोटर-साइकिल पर सवार

हा नौ-दो ग्यारह बनें पर साइकिल का इंजिन कोहरे की ठण्ड से फच्च और तभी आ पहुची एक फौजी टुकडी !

फ़ौजी टुकडी, यानी यशपाल की मौत का वारण्ट। यशपाल तनकर खडे हो गये और अपनी जेब म पडी पिस्तौल पर उन्होने हाथ साध लिया कि मरना तो है ही, पर दो चार को मारकर मरेंगे। लो यह आ गयी टुकडी सामने और फायर का हुक्म सुनने को यशपाल के कान तैयार, पर यह क्या कि कान सुन रहे हैं— 'आईज राइट।' यह तो मौत की हुँकार नही, जीवन की वन्दना है—अंग्रेजी फौज का अफसर अपने सिपाहियो को हुक्म द रहा है कि व यशपाल को सलाम करें। यशपाल भौचक और विस्मय विमुग्ध। बात यह हुई कि यशपाल उस समय फौजी वर्दी पहने हुए थे और उनके कन्धे पर मेजर का पदचिह्न लगा हुआ था। अंग्रेजी फौज के अफसर ने समझा कि मेजर साहब अपनी मोटर साइकिल पर हमसे पहले ही आ पहुंचे हैं और नियमानुसार उसने उन्हें सलाम किया। कोहरे म वह नही देख पाया कि मेजर के बिल्ले पर अंग्रेजी फौज का नही, क्रान्तिकारी दल का नाम खुदा हुआ है।

यशपाल ने फौजी शान से सलाम किया, टुकडी आगे बढी। यशपाल अपने घर आये। स्पष्ट है कि मौत निश्चित थी और बचने की सम्भावना के सब धागे टूट चुके थे पर विचारणीय तो यही है कि इन टूटे धागो म कितनी जान निकली ? क्या उस जान की जानदार घोषणा यह नही है कि जीवन म असफलता से सफलता के अवसर अधिक हैं, कम से कम नही हैं—कम भी नही हैं और सकट के आते ही, बाधा को देखते ही हाथ पर हाथ रख लेना, निराश हो जाना, असफलता को स्वीकार कर लेना और नये प्रयत्न न करना स्वय हमारी कमजोरी है।

गोयलीयजी का ट्रंक

"चलिए हुजूर, मैंने अपने कमरे मे आपके लिए एक पलग रिजव करा रखा है।"

भाईअशोककुमार जन के विवाह मे सम्मिलित होने के लिए मैं लखनऊ पहुचा तो दारुलशफा के विशाल भवन म घुसते ही मिल गये गोयलीयजी, यानी बधुवर श्री अयोध्याप्रसाद गायलीय और देखत ही बोले, "हुजूर, मैंने अपन कमर म आपके लिए एक पलग रिजव करा रखा ह।"

रोमास की कहानियो मे किसी को पहली बार देखकर या छूकर होने वाला झनझनाहट का अक्सर जिक्र आता है। जाने क्या बात है कि गोयलीय जी को देखकर मुझे हमेशा उसी तरह की झनझनाहट होती है, तो गोयलीय जी के कमरे मे अपना पलग देखकर यदि राह की थकान उतर गयी और ताजगी की एक फुरैरी आ गई, तो क्या आश्चय!

बोले, "इस पलग पर ललचाइ आखें तो बहुत पडी, पर उगली किसी की नही लगी। लीजिये, बिस्तर लगाइये।"

मैं थोडी देर आराम कर चुका, तो वह उठे और अपने ट्रक का पल्ला जरा ऊपर उठा, उन्होने उसम से चमडे का एक छोटा सा बग निकाल लिया। बोले, 'देखते क्या हैं हजामती बग का यह खूबसूरत तोहफा हम बाबू नमचन्द जैन न अपनी जापान-यात्रा से लौटकर भेंट किया था।"

मुझे उनके चटपट बैग निकालने मे एक भाव सा लगा, पर वह इतना झिलमिल रहा कि भाषा उसे पकड न पाई। खर, मैंने हजामत बनाई और मुह हाथ धोकर कमरे मे आया, तो गोयलीयजी ने फिर अपने ट्रक का पल्ला

जरा ऊपर को उठा, उसमें से एक छोटी-सी शीशी निकाली और बोले, 'लीजिये, शौक फरमाइये, असगर अली की मशहूर हिना है।"

सुरभि, सौंदर्य और स्वर किसे प्रभावित नहीं करते, मैंने भी आनन्द लिया पर ट्रंक में इस शीशी के निकालने में गोयलीय जी ने जो चौंक फुर्ती दिखाई उससे वह वेग वाला भाव फिर मन में घूम गया, पर भाषा उसे इस बार भी पकड़ न पाई।

मन अधर में उंगलियाँ फिरा ही रहा था कि पंजाब मेल के एक डब्बे में जा चढ़ा—यह मेरी कलकत्ता यात्रा की एक पुरानी स्मृति थी। मेरी सीट के सामने वाली सीट पर एक पति-पत्नी बैठे थे। अचानक पति ने पत्नी से पूछा 'मेरा फाउंटेन पेन कहाँ है ?' उत्तर मिला, 'ट्रंक में।'

पति को कुछ लिखने के लिए पेन की जरूरत थी। पत्नी ने उठकर ट्रंक खोला और नम्बरवार उसके चारों कोने टटोले पर पेन हाथ में न आया। पति का बोल जरा रूखा हो गया 'तुमने रखा भी था पेन या यों ही ट्रंक में गुत्थम-गुत्था कर रही हो ?' वह रुखाई पत्नी के परिश्रम का उपहास बन कर तीखी रेखा-सी उभर आई रखा है तभी तो खोज रही हूँ।'

पत्नी पेन खोजती रही और पति अपना धीरज खोते रहे—अन्त में खिसिया गए "बस रहने दो, मिल लिया पेन, तुम्हारे तो हर काम में यही स्यापा पड़ा रहता है।

सचमुच स्यापा पड़ गया—पत्नी की आँखें छलछला आइं और अब वह ट्रंक की एक-एक चीज नीचे रखने लगी। अरे साहब, पूरे सामान का ढेर लग गया और तब एक छोटे तौलिये में उलझा पेन मिला। उसे झटके के साथ पति के ऊपर फेंक पत्नी फिर ट्रंक में सामान लगाने लगी पर सामान इतना था कि ट्रंक में नहीं अँटा। पति ने उठकर उसे कोनों में ठूंसा और तब ट्रंक पर चढ़कर पति जो जरा लचके जरा मचके, तो ट्रंक बन्द हुआ।

ट्रंक बन्द हुआ कि मेरा मेरा झिलमिल भाव भाषा पा गया—ट्रंक में सामान लगाने का एक तरीका था उन श्रीमती जी का कि सामान ज्यादा से ज्यादा, पर इस तरह कि किसी चीज की आवश्यकता हो सोमवार को सुबह तो मिले मंगल की शाम को और एक तरीका है गोयलीयजी का कि

हर चीज आवाज देते ही बाने और अँधेरे में भी उगलियाँ उन्हे पहचान लें, पा लें।

• •

हजामत और स्नान स निपटा था दम्म-स्री में बुभुक्षा की खिड़ियाँ दहाडी और उस चुप किया, तो निन्दिया ने आ पुकारा—मैं सो गया।

"उठिए जनाब, अब स्पन का नहीं, सगीत की बारी है। गोयलीय जी ने पुकारा, तो मैं उठा। वह बारात वर क पिता श्री साहू शान्तिप्रसाद जन के सुरुचि-सौष्ठव की एक मनोरम प्रस्तुति थी। उसमें स्वर-सम्राट श्री पुलस्कर थ, शहनाई के शाह श्री बिस्मिल्ला खां थ, सितार के सूर्य श्री रविशंकर थ, तबले के आचार्य श्री अनोखलाल थे, जीवन-जागरण के कवि दिनकर थे गिटार-सम्राट श्री अमी अख्तर खां थे, जलती मशालो के शायर सागर निजामी थे और मैं था तू था, ये थे, वे थे।

साह पुलस्कर जी का नाम सुना तो निंदिया फुर हो गई और खुली आँखों से देखा एक दृश्य—गोयलीयजी न उठकर फिर अपने ट्रक का पल्ला उठाया और भीतर हाथ डाला, तो उगलियाँ मे दब दो कपडे उठे चले आये, रेशमी कुर्ता और बारीक धोती। चटपट उन्होंने कपडे पहने और तैयार हो गये। उनका यों कपडे निकालना अच्छा लगा और एक भाव भी मन मे आया, पर उसे भाषा न मिली।

सगीत गोष्ठी से लौट, तो द्वाराचार के लिए चलने की तैयारी हुई। गोयलीयजी न फिर ट्रक का पल्ला उठाया और भीतर हाथ डाला, तो उगलियों म दब तीन कपडे उठे चले आये—अचकन, चूड़ीदार पाजामा और कमीज। वह सब एक नए रूप म थे, पर मैं उनका रूप इस समय नहीं देख रहा था, सोच रहा था यह कि हर समय वे उपयुक्त कपडे, बिना ट्रक मे झांके यह चटपट कस निकाल लेते हैं?

गोयलीय जी न मेरी जिज्ञासा को भाँपा, तो बोले, "भाई साहब, ट्रक लगाना भी तो एक कला है।'

हाँ ट्रक लगाना भी एक कला है, यह तो देख ही रहा हूँ, पर बताइए कि इस कला की कुजी क्या है ?" मैंने पूछा, तो बोले,

की कुंजी है डबल यात्रा।"

"डबल यात्रा ? कैसी डबल यात्रा ?'

जी हाँ डबल यात्रा और ऐसी डबल यात्रा कि यात्रा से पहले एक बार घर बैठे कल्पना की यात्रा और तब सचमुच यात्रा। उदाहरण के लिए मुझे इस बारात में आना था तो मैंने कल्पना की यात्रा की कि रात भर का रेल-सफर, फिर यहाँ आते ही स्नान करके कपड़े बदलना, फिर गाड़ी में जाना फिर द्वाराचार पर तब विवाह संस्कार में, फिर आकर सोना और बस यो ही दूसरा दिन। अब हमने सब अवसरों के कपड़े अलग अलग लगाये और उसी सिलसिले से ट्रक में रख दिये। नतीजा यह कि जब कल्पना के बाद असली यात्रा आरम्भ हुई, तो वे निकलते चले गये। कहिए, यह डबल यात्रा है या नहीं ?"

डबल यात्रा की बात सुनी तो मुझे बहुत ज़ोर की हँसी फूट पड़ी। गोयलीयजी ने इसे अपनी डबल यात्रा का एप्रीसियेशन समझा तो मैंने कहा 'गोयलीयजी मैं तो डबल जल्से ही किया करता था पर आप डबल यात्री निकले।'

डबल जल्से ? कैसे डबल जल्से ?'

जैसी डबल यात्रा, बस डबल जल्से।'

'कुछ समझा तो यह पहेली।'

"एक बार यह पहेली मुझे पण्डित जवाहरलाल नेहरू को समझानी पड़ी थी। उसकी कहानी आपको मैं सुनाता हूँ, सुनते ही समझ जायेंगे आप डबल जल्से की पहेली।'

और तब मैंने सुनाया उन्हें अपना यह संस्मरण

1936 के भाग्य निर्णायक चुनाव हो रहे थे और पण्डित जवाहरलाल नेहरू अपने तूफानी दौरे पर थे। हमारे जिले में उनके दौरे का प्रोग्राम यह बना था कि सहारनपुर तहसील का दौरा समाप्त कर वह ढाई बजे दोपहर सहारनपुर स्टेशन आ जायेंगे। यहाँ वह चाय पियेंगे तीन बजे की गाड़ी से देवबन्द जायेंगे वहाँ से नागल और तब फिर रात में सहारनपुर। सहारनपुर स्टेशन से सहारनपुर स्टेशन तक के दौरे का इन्चार्ज मैं था।

मैंने सहारनपुर स्टेशन के फर्स्ट क्लास भोजनालय में चाय का प्रबन्ध

कर रखा था, पर हुआ यह कि पण्डित जी ढाई बजे तो क्या, तीन बजे भी नहीं पहुँचे। मैंने ऐंग्लो इण्डियन गार्ड से कहा, "चार पाँच मिनट गाडी रोक लीजिये, नहीं तो हमारा सारा प्रोग्राम चौपट हो जायेगा।" वह गुराकर बोला, "हम किस माफिक रोकने सकटा ?" मैं उसकी आँख बचा कर ड्राइवर के पास गया और अपनी बात कही, तो बोला, 'बकने दो, उस गार्ड के बच्चे को। गाडी तब चलेगी, जब पण्डितजी आ लेंगे !"

गार्ड ने सीटियाँ मारी, झण्डी दिखाई, पैर पटकता वह इंजन तक आया, पर अचानक इंजन में कुछ ऐसी खराबी आयी कि पहिया जाम हो गया। ड्राइवर ने गार्ड के सामने ही बहुत से पुर्जे छुए, दबाए, पर भाप का बाप हत्थे न चढा। 3 बजकर 17 मिनट पर पण्डितजी अपनी घडी देखते आये और झपटे झपटे अपने डब्बे में चढ गये और वह चढे कि इंजन ठीक हो गया—छुक छुक छू !

गाडी मिल गयी पर चाय छूट गयी। सीट पर बैठते ही पण्डितजी ने अपनी 555 सुलगाई और एक परिचय पत्र लिखने लगे, पर हालत यह कि दो लाइनें लिखें और इधर उधर देखें। पत्र पूरा होते ही मैंने कहा, 'आपकी सीट के नीचे है, लीजियेगा ?"

जरा झल्लाए से बोले "क्या ?"

मैंने चुपचाप सीट के नीचे उंगली से इशारा कर दिया। उन्होंने झुक कर देखा टिकोजी से ढका टी-सेट रखा था। चेहरे पर उनके खुशी आई, तो मैंने टी सेट सीट पर रख दिया। मैं जानता था उनकी चाय कोई दूसरा बनाये, तो उन्हें गुस्सा आता है। उन्होंने खुद प्याला बनाया और पीने लगे।

देवबन्द उतरे, तो घोडा गाडी में पण्डित जी को बैठाया गया। उस पर तिरंगा झण्डा लगाना था पर झण्डा कैसे बंधे ? मैंने अपने थैले से डोर का एक नया टुकडा निकालकर दिया—"लो, इसमें बाँधो झण्डा।"

पण्डित जी ने अचानक पूछा, "तुम यह रस्सी थैले में कैसे ले आये ?"

"यहाँ जरूरत पडनी थी, इसलिए ले आया पण्डितजी !" मैंने नम्रता से कहा तो बोले, "तुमको कैसे मालूम था कि जरूरत पडेगी इसकी ?"

मैंने थैले से निकालकर एक नक्शा पण्डितजी को दिया। उसमें पूरे दौरे का विवरण, खतरे और सभावनाएँ थीं। यह भी था कि पण्डितजी

सभव है लेट हो जायें और स्टेशन पर चाय न पी सकें, इसलिए एक टी-सेट सीट के नीचे रखना है और यह भी कि झण्डा बाँधने के लिए रस्सी चाहिए। और भी इसी तरह की कई छोटी छोटी बातें थीं। पढ़कर बहुत खुश हुए और मेरे कन्धों को इस गरमी से थपथपाया कि मजा आ गया। बोले, तो जनाब डबल जलसा करते हैं एक बार खोपड़ी में और दूसरी बार जमीन पर!

मैंने कहा, "पण्डितजी, जो डबल जल्सा नहीं करता, वह सफल जलसा कर ही नहीं सकता!"

गोयलीयजी मेरी तरफ देख रहे थे। मैंने कहा—"कहिये आपकी डबल यात्रा से बढ़कर है या नहीं मेरा यह डबल जल्सा" और हम दोनों खूब हँसे!

सचाई यह है कि यात्रा हो या जलसा, किसी पार्टी का प्रबन्ध हो या दिन भर का काम जो उसे पहले ही अन्त तक नहीं सोच लेता वह कभी उसे पूर्णता दे ही नहीं सकता।

आज की भाषा में इसी का नाम है प्लानिंग, योजनापूर्वक काम।

प्लानिंग आखिर है क्या? प्लानिंग है आज में कल का देखना—वर्तमान में भविष्य की कल्पना करना—दूर तक देखने वाली यथार्थ दृष्टि।

यह दृष्टि जीवन के हर क्षेत्र में, छोटे से छोटे हर काम मे अपेक्षित है। किसी कवि का कवि-सम्मेलन में जाना तो बड़ी बात नहीं है? मेरे मित्र हैं, श्री अनन्त मराल शास्त्री। वह पहले कवि के रूप मे प्रख्यात हुए तब एक पत्रकार और तब एक राज्य के सूचना विभाग के संचालक। उस दिन एक कवि गोष्ठी में जा रहे थे।

मोटर स्टार्ट कर ही रहे थे कि घर में से झपटी-झपटी उनकी श्रीमती जी आयीं और उन्होंने एक छपा, तह किया कागज उनकी जेब में डाल दिया।

यह एक रहस्य-सा लगा तो पूछा, 'क्या रख दिया है यह आपने जेब में?' मुस्कराकर बोलीं, "कुछ नहीं, मरालजी की कविता है।' और पूछने पर बोलीं "अब कविता लिखें या नहीं, पर मरालजी कवि तो हैं ही। कवि-गोष्ठी में जा रहे हैं, तो कविता पढ़ने का आग्रह होगा ही। इन्हें अपनी कोई कविता याद रहती ही नहीं, तो पढ़ेंगे क्या और नहीं पढ़ेंगे तो

लोग कहगे ही कि अरे भाई, अब तो मराल जी अफसर हो गये हैं। इससे क्या फायदा ?"

इसी का नाम है—वतमान मे भविष्य की कल्पना करना, दूर तक देखने वाली यथाथ दृष्टि। रूस के नेता बुलगानिन और ख्रुश्चेव भारत आए, तो काश्मीर भी गये। रात मे कोई दो बजे उनकी स्पेशल अम्बाला स्टेशन पर रुकी। वहा प्लेटफाम पर जो रक्षा कमचारी गश्त कर रहे थे, वे सब खडदूकाट बूटो के ऊपर, फ्लीट पहने हुए थे कि मेहमानो की नीद खराब न हो।

बात वही है कि यात्रा हो या जल्सा, किसी पार्टी का प्रबन्ध हो या दिन भर का काम, जो उसे पहले ही अन्त तक नही सोच लेता, वह कभी उसे पूर्णता नही दे सकता।

उसे अकेला छोड दो!

• • •

महावीर त्यागी हमारे देश के वर्चस्वी विधान सभा शास्त्री हैं। वह हमारी लोकसभा के तजस्वी सदस्य हैं। उनकी पहली विशेषता यह है कि वह आँकडो व्यक्तिगत प्रभावो और दूसरे मायाजालो स ढकी सच्चाई को खोज लेते हैं और उसे हिम्मत क साथ निभयभाव से प्रकट कर देते हैं। उनकी यह हिम्मत करारी तो सदा ही होती है कि चर मर करती गले उतरे पर कभी कभी पनी धारदार भी हो जाती है कि उसे गले उतारने मे गले के चिर जाने का भय हो। भय से आदमी बचता है, पर उनकी कला है कि वह सामने वाले को चारो ओर से घेर देते हैं और तब स्थिति यह हो जाती है कि आदमी उनकी बात सुनने को विवश हो, पचाने के लिए मजबूर हो, पर पचाने के लिए उसे गले उतारते वह काँपे!

उस दिन लोकसभा के काग्रेस विधानसभाई दल की बठक मे वह बोले, तो यही स्थिति हो गयी कि बात सुनने क लायक, पर तेज ऐसी कि तेजाब, छूने म काँटे, तो पीने म राम राम!

प्रधानमत्री निवेदन सुनने म खुश, तो प्रतिवदन पढ़ने के अभ्यस्त पर त्यागी की बात न निवेदन, न प्रतिवेदन, यह तो एक तकाज़ा कि सुनना पडे —सुनने के लिए मजबूर होना पडे और मजबूरी के प्रति नेहरू अपने सहज सस्कार म विद्रोही!

साथियों ने चाहा कि त्यागी चुप रहें, पर अधूरी बात मे चुप रहने के प्रति त्यागी भी विद्रोही, तो दो विद्रोही अब आमने-सामने और कई साथी मनुहार करते-से बीच म। नेहरू के लिए यह भी असह्य कि उनके साथी

का साथी मनुहार का यह मान दें, पर बागी उनका मित्र, तो चिल्लाकर बोले, "मैं उसे चालीस साल से जानता हूँ, तुम उसे अकेला छोड दो।"

सुना, तो मुझे याद आ गये रूस के प्रधानमन्त्री ख्रुश्चेव। नेहरू और ख्रुश्चेव दोनो म यह समता थी कि नापसन्दी मे, विरोध म, दोनो को गुस्सा आ जाता था पर विषमता यह कि नेहरू थे हार्दिक और ख्रुश्चेव थे बौद्धिक। तो नेहरू का गुस्सा भी हार्दिक और ख्रुश्चेव का गुस्सा भी बौद्धिक।

नेहरू गुस्सा करते थे इसलिए कि उन्ह गुस्सा आता था, पर ख्रुश्चेव के लिए गुस्सा आना आवश्यक नही, गुस्सा दिखाना ही आवश्यक था। तो नेहरू के लिए गुस्सा सयोग था और ख्रुश्चेव के लिए उपयोग। हाँ, इस बात म दोनो म समता थी कि गुस्सा लहर सा आये, इठलाए और उतर जाय।

त्यागी के लिए कहा नेहरू का वाक्य सुना तो मुझे ख्रुश्चेव याद आ गये। गुस्से के कारण नही, उस वाक्य के कारण। उन्होंने भी शान्ति परिषद के एक अधिवेशन म भाषण करते हुए, बिना नाम लिए अमरीका के प्रेसीडेंट आइजन हावर को लक्ष्य कर कहा था 'उस युद्ध की बात करने वाले को अकेला छोड दो।'

स्मरण म चिन्तन की बेल पनपी, तो प्रश्न का फल खिल आया—यह अकेला छोडना क्या है? इसमे वह महत्त्व किस रूप म निहित है, जिससे भारत का नेहरू और रूस का ख्रुश्चेव दोनो प्रभावित रहे—लडाई रोकने का उसे अजेय मन्त्र मानते रहे?

तो पहले यह कि लडाई क्या है? दो का मत जब तक एक हो, लडाई नही होती—य दो पति-पत्नी हो, भाई हो, मित्र हो पडौसी हो या फिर राष्ट्र हो। जब दो म मत की एकता भग होती है, तो दोनो यह प्रयत्न करते हैं कि दूसरा मेरे मत को, मेरी बात को, मेरे दृष्टिकोण को मान ले, दूसरे शब्दो म अपने मत को, अपनी बात को, अपने दृष्टिकोण को बदल ले।

यह होता है मतभेद। इसके बाद स्थिति यह आती है कि दोनो अपने मत पर आग्रह करते हैं और प्रयत्न करते हैं कि जैसे भी हो, दूसरे को अपने मत का बनाए। यह आग्रह दुतरफा होता है, तो इसकी प्रतिक्रिया भी दोनो तरफ होती है—'मेरी बात बिल्कुल ठीक है, उन्हें मेरी बात मान लेनी

चाहिए।' —"वे मुझे दबाने की कोशिश कर रहे हैं, पर मैं दबूं क्यों, मेरी कोई इज्जत नहीं है?" और बस यहीं से मतभेद मनभेद में बदलने लगता है।

मतभेद और मनभेद में अन्तर क्या? यह उचित स्थल पर, उचित प्रश्न है?

मतभेद की ध्वनि है यह "मुझे तुम्हारी यह बात पसन्द नहीं, इस विषय में तुम मेरी बात मानो, यही उचित है।'

मनभेद की ध्वनि है यह "मुझे तुम्हारी कोई बात पसन्द नहीं—तुम्हीं पसन्द नहीं यहाँ तक कि मैं तुमसे किसी तरह का सम्पर्क ही नहीं रखना चाहता।

कहूँ—मतभेद में पारस्परिक सम्बन्धों की रूक्षता का जन्म होता है तो मनभेद में पारस्परिक सम्बन्धों का विच्छेद ही हो जाता है।

जब हम मतभेद से आगे बढ़कर मनभेद तक पहुँचते हैं तो हमारे सामने दो रास्ते होते हैं—पहला उपेक्षा का और दूसरा संघर्ष का।

'जब मेरा उनसे मन नहीं मिलता, तो वह चाहे जो कहे, चाहे जो करें, मुझे लेना क्या देना क्या? मैं अपने घर राजी वह अपने घर।" यह है उपेक्षा का मार्ग—दूसरे शब्दों में सम्बन्ध विच्छेद।

'मैं यह कैसे बर्दाश्त कर सकता हूँ कि वह गलत काम करें या गलत बात करें। मेरे रहते यह नहीं हो सकता और मैं देखूँगा कि वह कैसे यह काम करते हैं? यह है संघर्ष का मार्ग।

इस मार्ग पर पैर रखते ही लड़ाई का जन्म होता है क्योंकि तब दूसरे की प्रतिक्रिया यह होती है 'मैं क्या उनका गुलाम हूँ कि हर समय उनकी हाँ में हाँ मिलाऊँ और पीछे चलूँ दुम हिलाऊँ। उन्हें अपनी ताकत का घमण्ड है, तो मैं भी खरगोश नहीं हूँ। देखूँगा कि वह कैसे मुझे दबाते हैं—उनके हाथ गज भर के हैं, तो मेरे सवा गज के हैं।'

यह प्रतिक्रिया रणभेरी का काम करती है। रणभेरी उन्माद की जननी है और उन्माद युद्ध का पिता है—बस दोनों भिड़ जाते हैं, जूझ पड़ते हैं, लड़ाई ठन जाती है और इनके साथी इसे और उनके साथी उसे उभारने में लग जाते हैं।

मतभेद के इसी दुराह पर एक सिपाही खड़ा है, जो हमे लडाई के भाग पर जाने स रोक्ता है। इसी सिपाही का परिचयात्मक नाम है—उसे अकेला छोड दो !

इस सिपाही का परिचय आवश्यक है। उसे अकेला छोड दो याने अपने विरोधी को साथियो से हीन कर दो। अकेला आदमी हताश हो जाता है और लडाई का इरादा बदल देता है—हथियार रख देता है लडाई रुक जाती है।

विरोधी को अकेला छोडने का, साथी विहीन करने का उपाय क्या है? तरीका प्रकार क्या है?

यह उपाय है अपनी बात को बिना क्रोध के सयत स्वर मे, युक्तियुक्त रूप से, स्पष्टता के साथ सबके सामने रखना। क्रोध के बदले क्रोध, हारने का सबसे सरल उपाय है और क्रोध के बदले शान्ति, जीतने का सबसे सरल उपाय!

यह एक आध्यात्मिक रहस्य है, पर यह एक बौद्धिक प्रयोग भी है। हम उसे समझें। क्रोध म आदमी बात नही कहता, बकता है, गालिया देता है और बकवाद एव गाली आदमी का झकोडते तो है पर बदलत नही। अब तथ्य स्पष्ट है कि जब एक आदमी बकवाद कर रहा हो, गाली दे रहा हो और दूसरा शान्त रूप से प्रामाणिकतापूवक बात कह रहा हो, तो सुननेवालो का मन गाली देने वाले के साथ नही, बात कहने वाले के साथ हो जाता है। इस तरह क्रोध के बदले शान्ति रखने वाले के साथ पहले ही कदम पर समाज के श्रेष्ठ लोग हो जाते है और विरोधी अकेला रह जाता है।

अनुभव की साक्षी है कि पक्षपात और स्वार्थ के कारण गलत मानते हुए भी कुछ लोग उस गाली देने वाले के समथन में खडे हो जाते हैं पर यह भी अनुभव की ही साक्षी है कि उनका मन उन्हे कचोटता रहता है कि हम गलत आदमी के साथ हैं गलत स्थान पर हैं और वे पूरे मन से काम न करने के कारण स्वय डूबते है और उसे भी डुबा देते हैं जिसके साथ वे खडे होते हैं। महाभारत म भीष्म, द्रोण और शल्य आदि दुर्योधन के साथ थे, पर वे इसी मानसिक कचोट का शिकार हो गये—स्वय डूबे और दुर्योधन को भी न बचा पाए।

हमारे नये इतिहास में इसका एक दूसरी तरह का उदाहरण भी है।

विट्ठल भाई पटेल केन्द्रीय असेम्बली के अध्यक्ष थे—कह कि अपने समय के सर्वोच्च सिंहासन पर वह पूजित थे, पर 1930 का सत्याग्रह आन्दोलन गांधीजी ने कुछ इस तरह उठाया कि वह सर्वोच्च आसन छोड़कर जेल जाने वाले स्वयंसेवकों की कतार में खड़े हो गए। अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा, "मेरी आत्मा कहती है कि मेरा उचित स्थान इस सिंहासन पर नहीं, उन स्वयंसेवकों के ही बीच है।"

इस परिवर्तन की आत्मा क्या है? इस परिवर्तन की आत्मा वही कचोट है जो गलत स्थान पर खड़े हुए लोगों के मन को मथती रहती है, तो जब हम क्रोध के बदले क्रोध न कर शान्ति का सन्तुलित व्यवहार करते हैं, तो अपने विरोधी को अकेला छोड़ देते हैं—उसे सुमतिजनों की सच्ची सहानुभूति से वंचित कर देते हैं और इस दशा में भी जो लोग उसका समर्थन करते हैं उसके साथ खड़े रहते हैं, उनकी समग्रता उनसे छीन लेते हैं। यही है विरोधी को अकेला छोड़ना, असहाय बनाना और विचारों के—मानसिक परिस्थितियों के—इसी चौराहे पर उद्घाटित है जीवन का यह सत्य—क्रोध के बदले क्रोध हारने का सबसे सरल उपाय है और क्रोध के बदले शान्ति जीतने का सबसे सरल उपाय!

● ●

क्रिया से प्रतिक्रिया का जन्म होता है, यह शास्त्रीय सिद्धान्त है, तो क्रोध के बदले क्रोध स्वाभाविक है हम उससे कैसे बचें? बड़ा मार्मिक प्रश्न है और सुनकर लगता है कि विरोधी को अकेले छोड़ने का सारा विवेचन इस प्रश्न की पहली ही टक्कर में मूर्छित हो गया है पर स्मृति की रसायन, देखता हूँ उसे नया जीवन दे रही है।

एक मित्र मुझसे नाराज हो गये। बहुत प्रयत्न किये कि नाराजगी दूर हो पर दूर होने के बजाय वह बढ़ती गयी क्योंकि बीच में कुछ ऐसे लोग थे, जो मित्र को भड़काते रहे—मैं आग पर जितना पानी डालता, वे उससे दुगना तेल छिड़कते—यह बुझते-बुझते भड़क उठती। एक दिन इस मित्र ने एक अखबार का रूप ले लिया। मुझे उसमें खूब गालियाँ दी गई थीं।

शाम को मित्र रास्ते में मिले, तो बचकर निकलने लगे पर मैंने बढ़-

कर सामना पकडा और उन्हें नया पत्र प्रकाशित करने पर बधाई दी। साथ ही सलाह भी—खबरें आपने बडे ढग म सजाई है सम्पादकीय बहुत जानदार है, स्थान का सुन्दर सदुपयोग किया गया है, सक्षेप मे पत्र होनहार है। बस थोडी सावधानी की जरूरत है!

सुनकर उनका अहकार बुदबुदाया, "व्यग का स्तम्भ कैसा लगा?" इसी स्तम्भ मे मुझे गालियाँ दी गयी थी। हँसकर मैंने कहा "यार, सचमुच बहुत करारा है!" उन्हे हसी आ गयी। अगले तीन अको मे भी यही क्रम रहा कि वह मुझे गालिया देते, मैं उन्हे सलाह! पाचवे अक मे मेरे लिए कुछ न था। सुबह अक मिला, शाम को स्वय आये। बातें करत रहे, चाय पी, चले गये, लडाई वन्द हो गयी। कह रहे थे—जो मिलता है, गालियाँ देता है। कहता है—तू उन्हे गालिया दता है पर वह सबसे तेरी तारीफ करते हैं। कहते हैं, कि उसकी कलम बहुत तेजस्वी है। जोश थोडा ज्यादा है। अनुभव से कम हो जायेगा, तो नाम कमाएगा पत्रकारिता मे!

यह क्या है? यह है विरोधी का अकेला छोड देना और उसकी प्रक्रिया है यह कि हम उसके गुणो को तो स्वीकृति दें, पर दोषो को नही। मेरे मित्र मे गुण तो थे ही, मैंने उन्हे विरोध मे, मतभेद मे भी स्वीकार किया और दोषो की उपेक्षा की, उन्हे किमी भी रूप मैं अपनी स्वीकृति न दी। मेरी अस्वीकृति ने उनके दोष उन्हे ही लौटा दिये और वे दोष उन्हे इस तरह घेरकर बैठ गय कि वह अकेले पड गये—उनके विचारो ने भी उनका साथ छोड दिया।

भगवान् बुद्ध वण व्यवस्था के विद्रोही थे। वह एक दिन वण व्यवस्था के समथक एक ब्राह्मण के पास से निकले, तो वह उन्हे गालिया देने लगा। बुद्ध खडे हो गये और गालियाँ सुनते रहे। जब ब्राह्मण थककर चुप हो गया, तो वह चल पडे।

साथ चलते शिष्य ने पूछा, "महाराज, वह गालियाँ देता रहा और आपने उसे कुछ भी नही कहा?"

भगवान ने पूछा, "शिष्य, कोई किसी को कुछ उपहार दे, पर वह उसे स्वीकार न करे, तो वह उपहार किसके पास रहता है!"

शिष्य ने कहा, "महाराज, वह उपहार, तब उस देने वाले के पास ही

रह जाता है।

बुद्ध ने कहा, "शिष्य, ठीक है। उस ब्राह्मण ने मुझे गालियों का जो उपहार दिया वह मैंने स्वीकार नहीं किया। तब वह उसके पास रह गया। इस स्थिति में मैं उससे क्या कहता ?"

यह क्या है ? यह है विरोधी को अकेला छोड़ने की कला। जिसने भी क्रोध में गालियाँ देते ब्राह्मण को और उन्हें शान्ति से सहते बुद्ध को देखा, उसके ही मन में बुद्ध के प्रति श्रद्धा और ब्राह्मण के प्रति घृणा उत्पन्न हुई होगी और उस श्रद्धा एवं घृणा ने उस ब्राह्मण को अकेला कर दिया।

क्या यह एक टैक्ट और दाव है ? हाँ टैक्ट भी है और दाव भी इससे अधिक है बहुत अधिक है। टैक्ट और दाव बौद्धिक होते हैं, पर जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह हार्दिक है—हम हृदय से विरोधी के दोष को अस्वीकृत करें तभी वह वास्तविक है। ऐसा न होता, तो गुलाम के सामने मालिक और पीड़ितों के सामने हत्यारे अकेले पड़ जाते—असहाय हो उठते। बात यह है कि गुलाम और पीड़ित जो अत्याचार सहते हैं वह उनकी उदारता नहीं विवशता है। इसीलिए वह हीनता है, जो उल्टे विरोधी को शक्तिशाली बनाती है।

हम ज़रा उसे समझें। महात्मा ईसा को खुले आम जीते जी क्रॉस पर कीलों से ठोक दिया गया और वह उसी हालत में काफी समय तक टँगे रहे। विश्व के इतिहास की यह क्रूरतम घटना है—विरोधी के अत्याचार का ऐसा नग्न प्रदर्शन शायद और कभी, और कहीं नहीं हुआ, पर इससे भी गहरी बात यह है कि चारों ओर खड़े लोग इसे देखते रहे और उस भीड़ से एक भी आदमी ऐसा नहीं निकला जो भागकर उस क्रास के पास जाता और उसे उखाड़ने की सफलता ही नहीं पर कोशिश तो करता।

स्पष्ट है कि क्रूरतम अत्याचारों की उस आँधी में ईसा अकेले थे, पर ईसा ने अत्याचार की उस आँधी का स्वीकृति नहीं दी— स्पष्ट रूप से उसे अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि न ईसा ने उन्हें कोसा न शाप दिया न गाली दी और कहा 'हे प्रभु इन सबको क्षमा कर क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।'

ईसा के जीवन का अन्त हो गया, पर उनके द्वारा अस्वीकृत उस

अत्याचार ने एक अद्भुत चमत्कार किया कि उन अत्याचारियों को विश्व मे एकदम अकेला छोड दिया और वे विश्व की सहानुभूति से वचित हो गये। ईसा जन जन-वन्दित हो गये, तो शक्ति के स्तम्भ से वे अत्याचारी जन गण लाछित !

• •

यही घटना इतिहास ने एक बार फिर दोहराई, तो भाग्य की बात उसे अपनी आंखो देखने का अवसर मुझे भी मिला। 1947 मे हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का बँटवारा हुआ, तो साम्प्रदायिकता के ज़हर ने देश को अधा कर दिया। हिन्दू सिर्फ हिन्दू रह गया और मुसलमान सिर्फ मुसलमान, यानि न हिन्दू आदमी रहा, न मुसलमान ही। कितना क्रूर है यह वाक्य कि दोनो मनुष्यता को भूलकर धर्म के शिखर पर चढ बैठे। हिन्दू के लिए मुसलमान का कत्ल कर देना और मुसलमान के लिए हिन्दू को मार डालना धर्म का सर्वोत्तम कार्य हो गया !

मूर्खता के अन्धकार की उस आंधी मे एक वट वृक्ष अपनी जगह खडा सबको स्थिरता और शान्ति का उपदेश दे रहा था। वह था गाधी। सब उसके विरुद्ध थे। सब उसे गाली दे रहे थे—कोस रहे थे उसकी ही जाति मे कुछ गरम दिमाग लोग उसे अपने मार्ग का रोडा समझ, मार डालने का प्रयत्न कर रहे थे और सचमुच वह अकेला था !

एक दिन प्रार्थना सभा मे गाधीजी पर गोला फेंका गया, पर वह भाग्य से बच गये। गृहमन्त्री सरदार पटेल ने गाधीजी से कहा, जो कोई भी प्रार्थना सभा मे आये, उसकी पुलिस द्वारा तलाशी होनी चाहिए। लोगो की आंखो मे खून उतरा हुआ है। जाने कब कौन क्या कर बैठे। आपका जीवन खतरे मे है।'

गाधीजी ने कहा जहाँ प्रार्थना होती है वह स्थान भगवान का मन्दिर होता है। भगवान के मन्दिर मे आने का सबको समान अधिकार है, इसलिए आने वाला पर कोई पाबन्दी नही लगाई जा सकती।

एक दिन किसी और ने भी गाधीजी से यही बात कही, तो बोले, "मेरा जीवन ईश्वर के हाथ मे है। वह जब तक मुझमे सेवा लेना चाहेगा मुझे जीवित रखेगा और जब चाहेगा बुला लेगा।

रह जाता है।

बुद्ध ने कहा, शिष्य, ठीक है। उस ब्राह्मण ने मुझे गालियों का जो उपहार दिया वह मैंने स्वीकार नही किया। तब वह उसके पास रह गया। इस स्थिति म मैं उसम क्या कहता ?"

यह क्या है ? यह है विरोधी को अकेला छोडने की कला। जिसने भी क्रोध म गालियाँ देत ब्राह्मण को और उन्ह शान्ति से सहत बुद्ध को देखा, उसके ही मन मे बुद्ध के प्रति श्रद्धा और ब्राह्मण के प्रति घणा उत्पन्न हुई होगी और उस श्रद्धा एव घणा ने उस ब्राह्मण को अकेला कर दिया।

क्या यह एक टक्ट और दाव है ? हाँ टक्ट भी है और दाव भी इससे अधिक है बहुत अधिक है। टैक्ट और दाव बौद्धिक होते हैं पर जो कुछ मैं कह रहा हू, वह हार्दिक है—हम हृदय स विरोधी क दोष को अस्वीकृत करें तभी वह वास्तविक है। ऐसा न होता, तो गुलाम क सामने मालिक और पीडितो के सामने हत्यारे अकेले पड जाते—असहाय हो उठते। बात यह है कि गुलाम और पीडित जो अत्याचार सहते हैं वह उनकी उदारता नही, विवशता है। इसीलिए वह हीनता है, जो उल्टे विरोधी को शक्तिशाली बनाती है।

हम जरा उसे समझें। महात्मा ईसा का खुले आम जीत जी क्रॉस पर कीलो से ठोक दिया गया और वह उसी हालत मे काफी समय तक ठुके रहे। विश्व के इतिहास की यह क्रूरतम घटना है—विरोधी के अत्याचार का ऐसा दारुण प्रदशन शायद और कभी और कही नही हुआ पर इसस भी गहरी बात यह है कि चारों ओर खडे लोग इस देखते रहे और उस भीड मे एक भी आदमी ऐसा नही निकला, जो भागकर उस क्रास के पास जाता और उसे उखाडने की असफल ही सही पर कोशिश तो करता।

स्पष्ट है कि क्रूरतम अत्याचारो की उस आधी मे ईसा अकेले थे, पर ईसा ने अत्याचार की उस आँधी को स्वीकृति नही दी—स्पष्ट रूप से उसे अस्वीकृत कर दिया, क्योकि न ईसा ने उन्ह कोसा, न शाप दिया न गाली दी और कहा 'हे प्रभु, इन सबको क्षमा कर क्योकि ये नही जानते कि ये क्या कर रहे हैं।'

ईसा के जीवन का अन्त हो गया पर उनके द्वारा अस्वीकृत उस

अत्याचार ने एक अद्भुत चमत्कार किया कि उन अत्याचारियों को विश्व में एकदम अकेला छोड़ दिया और वे विश्व की सहानुभूति से वंचित हो गये। ईसा जन जन-वन्दित हो गये, तो शक्ति के स्तम्भ से वे अत्याचारी जन गण-लांछित।

● ●

यही घटना इतिहास ने एक बार फिर दोहराई, तो भाग्य की बात उसे अपनी आँखों देखने का अवसर मुझे भी मिला। 1947 में हिन्दुस्तान पाकिस्तान का बँटवारा हुआ, तो साम्प्रदायिकता के जहर ने देश को अंधा कर दिया। हिन्दू सिर्फ हिन्दू रह गया और मुसलमान सिर्फ मुसलमान, याने न हिन्दू आदमी रहा न मुसलमान ही। कितना क्रूर है यह वाक्य कि दोनों मनुष्यता को भूलकर धर्म के शिखर पर चढ़ बैठे। हिन्दू के लिए मुसलमान का कत्ल कर देना और मुसलमान के लिए हिन्दू का मार डालना धर्म का सर्वोत्तम कार्य हो गया।

मूर्खता के अन्धकार की उस आँधी में एक वट वृक्ष अपनी जगह खड़ा सबको स्थिरता और शान्ति का उपदेश दे रहा था। वह था गांधी। सब उसके विरुद्ध थे। सब उसे गाली दे रहे थे—कोस रहे थे, उसकी ही जाति में कुछ गरम दिमाग लोग उसे अपने मार्ग का रोड़ा समझ, मार डालने का प्रयत्न कर रहे थे और सचमुच वह अकेला था।

एक दिन प्रार्थना सभा में गांधीजी पर गोला फेंका गया, पर वह भाग्य से बच गये। गृहमंत्री सरदार पटेल ने गांधीजी से कहा 'जो कोई भी प्रार्थना सभा में आये उसकी पुलिस द्वारा तलाशी होनी चाहिए। लोगों की आँखों में खून उतरा हुआ है। जाने कब कौन क्या कर बैठे। आपका जीवन खतरे में है।'

गांधीजी ने कहा, जहाँ प्रार्थना होती है वह स्थान भगवान का मन्दिर होता है। भगवान के मन्दिर में आने का सबको समान अधिकार है, इसलिए आने वाला पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई जा सकती।

एक दिन किसी और ने भी गांधीजी से यही बात कही तो बोले, "मेरा जीवन ईश्वर के हाथ में है। वह जब तक मुझसे सेवा लेना चाहेगा मुझे जीवित रखेगा और जब चाहेगा बुला लेगा।"

तो स्थिति यह थी कि देश भर में गांधीजी पर गालियाँ बरस रही थीं और धर्मांध लोगों का एक दल उनकी हत्या के आयोजन में लगा हुआ था। सब कुछ स्पष्ट था, पर गांधीजी ने उसे अपनी स्वीकृति नहीं दी। 30 जनवरी, 1948 को शाम के पाँच बजे तक यही स्थिति थी। 5 बजकर 17 मिनट पर प्रार्थना सभा में गांधीजी की छाती में तीन गोलियाँ मार दी गयीं और वह 'हे राम' कहकर इस संसार से विदा हो गये। उनका चेहरा शान्त था, जैसे वह पूर्ण सन्तोष की नींद में सोये हों। कहें कि उन्होंने गोली लगने और मरने के बीच वाले क्षण में भी उस मूढ़तापूर्ण अत्याचार को स्वीकृति नहीं दी।

विश्व के जीवन का महान आश्चर्य—महान से भी महान विस्मय कि पाँच बजे शाम तक जिन हत्याकारियों के विचारों का समर्थन सारा देश कर रहा था साढ़े पाँच बजे सारा देश उनका उग्र विरोधी हो गया—उग्रता इतनी कि उन विचारों का समर्थक जिन्हें समझा गया उनकी खुले आम पिटाई हुई और कई जगह तो उनके घर-दफ्तर तक फूंक दिये गये। सारे देश में उनके विरुद्ध घृणा की आँधी उठ पड़ी और उन्हें अकेला छोड़ दिया। यह घृणा की अस्वीकृति का ही तो चमत्कार था!

• •

महान् कथाकार प्रेमचन्द की जिन्दगी में गालियों का एक मौसम आया। तीन आदमियों ने तीन तरह और तीन तरफ से उन पर गालियाँ बरसाईं पर वह चुप रहे। न उन्होंने कुछ लिखा न कहा—अपना काम करते रहे। उन्हीं दिनों मैं उनसे मिला और पूछा "आपने उनमें से किसी का भी जवाब नहीं दिया?"

भोले बालक की तरह बोले "क्या जवाब हो सकता है भला उन बातों का?"

मेरे स्वर में झल्लाहट आ गयी "यह अजीब जवाब है आपका कि उनका कोई जवाब नहीं हो सकता।'

वह भीतर तक भोले हो उठे, "अरे भाई, उन लोगों की मेरे बारे में यह राय है कि मैं घृणा का प्रचारक हूँ, ब्राह्मण-द्रोही हूँ, चोर लेखक हूँ। ठीक है, वे अपनी राय के बादशाह हैं। मैं कौन होता हूँ कि उनकी राय का

बादशाह बन बैठू।"

यह लाछनो की अस्वीकृति थी और मैंने इसका चमत्कार देखा कि प्रेमचन्द की चमक बढती चली गयी, पर उन लाछनो की रचना करने वालो ने साहित्य-ससार की दृष्टि मे जो नम्बर खोये, वे उन्हे फिर कभी न पा सके !

एक बार प्रेमचन्द की ही तरह प्रसिद्ध उद्योगपति और समाज-सेवक श्री साहू शान्ति प्रसाद जन के जीवन मे भी अपवादा-लाछनो की बाढ आयी। उनका हर विरोधी तीसमारखाँ बन बैठा और पत्रा के कालम निन्दा से भर गये।

मैंने सोचा कि वह बहुत परेशान और अस्तव्यस्त होग, पर मैं मिलने गया, तो देखा—बैठे ताश खेल रहे थे। वही भोली तल्लीनता, वही भीना हास्य और वही सरल व्यवहार। आश्चय हुआ और रात मे उनके एक आत्मीय तक मेरा आश्चय पहुँचा, तो बोले, 'साहूजी ने उन अपवादा और लाछनो पर ध्यान ही नही दिया और कह दिया कि हमने पाप किया होगा, तो हमे दण्ड मिलेगा, नही तो सब ठीक हा जायेगा अपने-आप !' साहूजी की यह स्वस्थ प्रसन्नता निन्दा और लाछनो की अस्वीकृति ही तो थी !

सरदार पटेल की पसन्द भी सख्त थी, नापसन्द भी। जिससे खुश होते, निहाल कर देते और जिससे नाराज़ होते, उसकी जड खाद कर ही दम लेते। किसी बात पर कमलनयन बजाज से नाराज़ हो गय और चाट की। कमलनयन सीधे सरदार के पास पहुँचे और कहा, "आपकी चोटो से मेरा कोई नुक्सान नही हो सकता सरदार !"

"क्यो !" भौचक हो सरदार ने पूछा, तो कमलनयन ने कहा, "इसलिए कि इस चोट के बाद भी मेरी श्रद्धा आपम कायम है।" सरदार के हाथ चोट करना भूल, प्रसाद परसने म लग गये।

यह क्या बात हुई ? वही क्रोध और आक्रमण की अस्वीकृति की बात और उसका चमत्कार !

यह चमत्कार जीवन का एक आध्यात्मिक रहस्य है और स्वय मैंने जीवन भर इसके प्रयोग किये हैं, चमत्कार देखे हैं उनका लाभ लिया है।

किसी को आप पर क्रोध आ रहा है, आप उस पर क्रोध न कीजिए

और शान्त रहिए।

कोई आपसे नाराज़ है, आपको गालियाँ देता है। आप उससे नाराज़ न होइए उसे गालियाँ न दीजिए।

कोई आपसे घृणा करता है, आपके विरुद्ध लांछन लगाता है, आप उससे घृणा न कीजिए, लांछन न लगाइए।

कोई आपको नुकसान पहुँचा रहा है शक्ति रहते भी आप उसे नुकसान न पहुँचाइए।

इस तरह क्रोध, नाराजगी, गाली घृणा और आक्रमण को अपनी स्वीकृति मत दीजिए। आपका जीवन इस अस्वीकृति के लाभों से भरा-पूरा होता चला जायगा। आप आज से कल आगे होंगे, ऊँचे, शक्तिशाली और सुखी होंगे और आपके विरोधी अकेले रह जायेंगे—पिछड़ जायेंगे।

जीवन का मूल्य

9409
3.4 87...

अब मैं क्या बताऊँ आपको कि उस दिन मैं किस हालत मे था।

ठीक है आपकी वात कि कोई न कोई हालत तो होगी ही जागता हूँगा या सोना हूँगा, दुखी हूँगा या सुखी हूगा, भाव म हूगा या अभाव मे हूँगा।

जी हा, मैं आपकी वात को गलत कैसे कह सकता हूँ ? आखिर आदमी की कोई न कोई हालत तो होती ही है। अधिक से अधिक यह कि आदमी मर जाये पर मर जाना भी तो अपने मे एक हालत है। मुर्दा भी यह तो कह नही सकता कि मेरी कोई हालत नही है। फिर भी हालत यही है कि मैं क्या बताऊ आपको कि उस दिन मैं किस हालत म था।

अच्छा यह होगा कि मैं आपको अपनी हालत बताऊँ और तब आप बताएँ कि मैं किस हालत म था। काम करने को जी नही चाह रहा था और बिना काम किये रहा नही जा रहा था। कोई दुख-सकट मन मे नही था, पर मन जैसे दबा हुआ था। किसी से बात करने को मन न था, पर मन मे था कि कोई बात करने वाला आ जाये, तो जी बदले बहले। मन एक घेरे म घिरा हुआ-सा था, पर वाहर जाने को कही कोई द्वार दिखाई न दे रहा था।

"क्यो क्या बात है, जो यो चुपचाप पडे हो।"

"कोई खास बात नही, आइए पधारिए।"

यह आये वावू परमानन्द और साथ मे उनका पुत्र शकर। बेटा कुनकुनाया-सा तो बाप खुनखुनाया-सा, एक गम्भीर तो एक पैना-पना। कुछ

दोनो अपने को समाज सुधारक कहते हैं, पर एक की दृष्टि मे जीवन का मूल्य है कही रुक जाना—मर्यादा म रहना और दूसरे की दृष्टि मे कही न रुकना, बढे जाना। तो प्रश्न यह है कि समाज सुधारक कौन है और समाज सुधारक के दृष्टिकोण से जीवन का मूल्य क्या है ?

मनस्वी चिन्तक डाक्टर राधाकृष्णन् की एक सूक्ति स्मृतिपटल पर यो आ चमकी है, जैसे आकाश मे ध्रुव नक्षत्र। उस सूक्ति मे इस प्रश्न का समाधान है। वह सूक्ति इस प्रकार है "नयी मशीन का निर्माण करने वाले नही, जीवन के नये मूल्यो की स्थापना करने वाले ही इस ससार को आगे बढाते हैं।"

इस कसौटी पर बाबू परमानन्द और उनके पुत्र शकर को कसें, तो कहना न होगा कि अपने समय म समाज को आगे बढाने वाली मान्यता को बल दिया था परमानन्द बाबू ने, पर वह चले नही, एक कदम उठाकर रह गये और आज समाज को आगे बढाने वाली मान्यता को समर्थन-बल दे रहा है शकर। तो बाबू परमानन्द सुधारक थे और शकर सुधारक है।

जी, मेरी बात आपके हृदय तक पहुँची ? उससे आपकी जिज्ञासा को पोषण और तृप्ति मिली ? ठीक है आप अभी और कुछ चाहते है, तो लीजिए यह है और कुछ।

जीवन नदी की धारा है पहाड की अटल चट्टान नही। धारा बहते-बहते अपना प्रवाह खोने लगती है तो प्रकृति या इन्जीनियर उसे झाल दे देते हैं। झाल पर पानी ऊँचाई से नीचे गिरता है और गति के इस परिवर्तन मे धारा फिर अपनी तेजी पा जाती है। जीवन मे यही तरीका सुधारक का है। समाज की बहती धारा मे भी प्रवाह हीनता और गदलापन आता रहता है और सुधारक लोग आकर अगति को गति और गदलेपन को स्वच्छता म बदलने का प्रयत्न करते हैं।

• •

आइए, इन प्रयत्नो की बात को रोककर, जरा एक नये प्रश्न पर विचार करें कि प्रवाहहीनता और गदलपन की स्थिति मे क्या यह उचित न होगा कि उस धारा को ही हम बदल दें और उसकी जगह एक नयी धारा बहा दें।

मुझे प्रसन्नता है कि आप इस प्रश्न को उचित समझते हैं और इस प्रश्न पर विचार करना चाहते हैं। कुछ जोशीले लोग जो सुधार को समझौता—बुराइयों के साथ मेल जोल कहकर उनकी हँसी उड़ाते हैं और अपने को क्रान्तिकारी कहकर गर्वित होते हैं वे इस प्रश्न पर हाँ कहते हैं और एक नया समाज व्यवस्था कायम करने का नारा लगाते हैं पर प्रश्न तो यह है कि क्या नया समाज व्यवस्था सर्वथा निर्दोष होगी ? यदि हाँ तो क्या कुछ दिन बाद उसमें भी गतिहीनता और गन्दापन के दोष न आएंगे ?

इस सम्बन्ध मे जवाहरलाल नेहरू का समाधान मुझे पसन्द है और शायद आपको भी वह पसन्द आये। वह समाधान है—निरन्तरता और नवीनता का समन्वय। समाज में कुछ बातें हैं जो निरन्तर चलती हैं और कुछ को बदलकर नवीनता लानी पड़ती है। इससे समाज ऊबड़ खाबड़ नहीं होता और जड़ता से भी बचा रहता है। यही है समाज सुधार तो जो लोग समाज की जीवन धारा को गतिरोध से बचाकर गतिशील रखने के और गन्दगी को हटाकर स्वच्छ बनाने के प्रयत्न करते हैं वे हैं समाज सुधारक।

एक पुरानी बात याद आ गयी, तो सुनाऊँ वह भी आपको। शायद आपको उसमें रस आय ! जी हाँ, वह बात मेरी है, पर सम्भव है सुनते-सुनते आपकी हो जाय। मेरे पिताजी एक बार बीमार पड़े। जाड़ा क्या आता कि उनके हड़कम्प मच जाता। घर भर की रजाइयाँ हम उन पर डालते पर कपकँपी न रुकती। ठीक भी है, बाहर से आती ठण्ड को रजाइयाँ रोक सकती हैं भीतर से उमड़ते शीत को वे बेचारी कैसे रोकें ! और शीत के बाद जो बुखार आता तो भट्टियाँ जल जातीं—पारा 105 डिग्री तक तो जाता ही पर उससे आगे भी कदम रखने में न झिझकता। शीत में देह ऐंठकर रह जाती, तो आग में उसे झुलसना पड़ता।

दवा रोज आती पर कुछ असर न होता। तीसरे दिन अपनी बारी पर बुखार आ कूदता। बहुत दिनों में वह रुका और तब एक दिन पिताजी ने बताया कि बात यह थी कि मैं दवा पीता न था, फेंक देता था और बीच में दो बार मैंने मित्र से मंगाकर चुपचाप कढ़ी चावल खाये थे।

आप इससे सहमत होंगे कि दवा पीना पिताजी के लिए लाभदायक था और कढ़ी चावल खाना हानिकारक फिर भी उन्होंने दवा फेंकी और कढ़ी-

चावल खाये। क्यो भला ! क्योकि बीमार भूल जाता है कि उसका लाभ किस मे है और हानि किस म ? और जो हाल व्यक्ति का है, वही समाज का कि गति और स्वच्छता लाने के लिए जब सुधारक प्रयत्न करते है, तो समाज उसका विरोध करता है और भूल जाता है कि वह अपने ही हित का विरोध कर रहा है। स्वाभाविक है कि इससे सुधारक का मार्ग काटो से भर जाता है और आग बढने के लिए उसे कठिन सघर्ष करना पडता है।

बाढ आ रही थी, लोग सो रहे थे। सुकरात ने हल्ला मचाया कि लोग सावधान हो आपा बचाएँ, अज्ञान की बाढ मे न डूबें, पर लोगो ने समझा यह हमारी नीद खराब कर रहा है और उन्होने उसे जहर पिला दिया।

ईसा ने अपने मतलब की कोई बात किसी से कही थी ? प्रेम और सेवा ही उसके सन्देश थे, पर लोगो ने भडक कर उसे नसशता के साथ क्रास पर चढा दिया।

ब्रूनो ने क्या कहा था लोगा से ? यही कि किसी और की बात मानने से पहले अपनी अक्ल की बात सुनो, पर लोगा ने उसे रोम के उस चौराहे पर जीते जी जला दिया, जिस पर आज उसका विशाल स्टैच्यू खडा है।

जब दिल और दिमाग दोना के लिए कही राह न थी और सवनाश मुह बाए खडा था, तो स्वामी दयानन्द ने राह दिखाई, साहस दिया, पर क्या हुआ ? उन्ही लोगो ने उन्हे काच पिलाकर मार डाला।

क्या गाधीजी की ज़िन्दगी ऐसी थी कि किसी एक का भी उनसे किसी तरह का नुकसान पहुचे ? कोई इस बात पर हाँ नहीं कह सकता, पर यह कौन नही जानता कि उनकी छाती पर गोलिया मारी गयी ? क्यो ? क्योकि वह आदमी को पशु बनने से रोक रहे थे। कहा नही मैंने आपसे कि जब गति और स्वच्छता लाने के लिए सुधारक प्रयत्न करते है, तो समाज उसका विरोध करता है और भूल जाता है कि वह अपने ही हित का विरोध कर रहा है। सुधारक को इस विरोध से टक्कर लेनी पडती है और कभी-कभी जीवन का बलिदान भी करना पडता है।

सुधारक इस विरोध को बुरा नही मानता और बलिदान से वह बचता नही, डरता नही, क्याकि दूसरो के प्रति प्रेम और अपने प्रति अभय उसके जीवन की पहली शर्तें हैं और इसीलिए समाज की जीवन धारा मे समय के

प्रभाव से आ चली गतिहीनता और गन्दगी के विरुद्ध संघर्ष को वह जीवन का सुख और आवश्यक हो तो इसी काम मे अपने जीवन के बलिदान को वह जीवन का मूल्य मानता है। सुधारक का काम है इसी संसार को आकाश के कल्पित स्वर्ग की तरह सुन्दर बनाने का प्रयत्न करना और आवश्यकता हो तो इसी मे समर्पित हो जाना। इतिहास साक्षी है कि जो सुधारक के सामने सदा उद्धत भाव से खडे रहे है, वे बलिदान के बाद सुधारक की स्मृति के सामने नतमस्तक हुए हैं। इसीलिए बलिदान ही जीवन का मूल्य है समाज के लिए और बलिदान ही जीवन का मूल्य है सुधारक के लिए। एक उसे लेकर पुजारी बनता है तो दूसरा उसे देकर पूज्य।

जवाहरलाल नेहरू की चाह थी 'महात्मा गांधी जिस तरह मरे, वह मुझे बहुत पसन्द है। मैं खुद बिस्तर पर लम्बे अर्से तक दर्द और बीमारी से कराहता हुआ अपाहिजो की तरह नही मरना चाहता। मैं निर्माण के महान कार्यों मे लगे लगे ही मरना चाहता हू।"

उस कोमलतम मानव की यह चाह पूरी नही हुई, पर यह चाह हम सबमे जागे।

सब कुछ

• • •

यह है मेरी डायरी का एक पृष्ठ, जिसमें गद्य काव्य की भाषा में मेरे जीवन का एक मार्मिक अनुभव गुथा हुआ है—उनका मुझ पर मानसिक ऋण है, भग्नता के क्षणों में उन्होंने एक बार मुझे सहारा दिया था, मैं चाहता हूं जैसे भी हो उनका यह ऋण उतारूँ। वह आजकल कुछ अस्त-व्यस्त हैं और मैं स्वयं दुख उठाकर भी उन्हें सुख पहुँचाना चाहता हूं।

वह इस समय मुझसे कोमलता की आशा करते हैं, पर कितनी विचित्र स्थिति है कि मैं उन्हें सुख पहुँचाना चाहता हूँ और वह मुझसे सुख पाना चाहते हैं, पर वह मुझसे सुख ले नहीं पाते और मैं उन्हें सुख दे नहीं पाता। यही नहीं, यह भी कि जब-जब मैं उन्हें सुख देने का प्रयत्न करता हूँ वह मेरे उस प्रयत्न में नयी ठेस खा जाते हैं।

एक दिन मैंने सुख का एक अंश उनके सामने परसा कि वह उसका उपभोग करें, पर देखा कि वह पत्तल पर बैठे उस सुख का उपभोग न कर इस बात पर दुखी हो रहे थे कि उस बीते दिन मैंने उन्हें सुख का यह अंश क्यों नहीं दिया था। इस अंतर्द्वन्द्व में परसा सुख नीरस हो गया और मेरा और परसने का उत्साह ठण्डा पड़ गया।

उनका मुझ पर मानसिक ऋण है और मैं चाहता हूँ कि जैसे भी हो उसे उतारूँ।

फिर मैंने अपना मन बनाया और उनके सामने सुख का एक और अंश परसा। मैंने देखा कि उस सुख का उपभोग न कर वह इस बात पर दुखी हो रहे थे कि यही सुख मैंने अमुक-अमुक को क्यों दिया। मेरा उत्साह फिर

कुंठित हो गया और वह उस सुख से वंचित रह गये।

कुछ दिनों बाद मैं यात्रा में गया और उनके लिए बहुत ही उत्तम पुस्तक खरीदकर लाया। मान ममता के साथ मैंने वह पुस्तक उन्हें भेंट की, तो उन्होंने उसकी तरफ देखा तक नहीं और यह सोचकर दुखी होते रहे कि मैं पड़ोसी के बच्चे के लिए जो खिलौना लाया हूं, वह उनके लिए क्यों नहीं लाया।

कितनी विचित्र स्थिति है कि वह मुझसे सुख पाना चाहते हैं और मैं उन्हें सुख पहुंचाना भी चाहता हूँ पर वह सुख ले नहीं पाते और मैं सुख दे नहीं पाता।

अनुभव करता हूं कि उन्हें न अपने स्वरूप का ध्यान है, न मेरी दी हुई चीजों की बहुमूल्यता और उनके स्थान का और न इस बात का ही कि मेरी देने की इच्छा दिन-दिन निर्बल होती जा रही है। कभी वह हार्दिक थी, अब बौद्धिक है। सोचता हूँ वह उपेक्षा का रूप न ले ले।

यह सब क्या है ? सोचता हूं यह एक मानसिक रोग है कि मनुष्य उसे न देखे जो उसके सामने है और उसकी चिंता में खयाली पुलाव पकाता रहे, जो सामने नहीं है शायद कहीं भी नहीं है—सिर्फ एक प्यास ही है, केवल कल्पना ही है। जिसे हम पा सकते हैं, जिसे पा गये हैं, हम उसे महत्त्व दें या उसे कि जो हमारे लिए अप्राप्य है—दुर्लभ है ?

एक युवक मेरे पास आया। कपड़े लत्ते और आकृति से वह मुझे सुखी लगा, पर उसने कहा कि मैं बहुत दुखी हूं और जीवन से ऊब गया हूं। बातों में जाना कि वह एक राज्य में अच्छे पद पर है पर उसके कई साथी केन्द्रीय शासन में ऊंचे पद पर चले गये हैं, इसलिए वह दुखी है। मैं आश्चर्य से उसकी तरफ देखता रह गया कि यह विद्वान होकर भी कितना मूर्ख है कि अपने सुख से सुखी न होकर दूसरे के सुख से दुखी है। वही बात कि यह प्राप्त का सुख न भोग कर, अप्राप्त का दुख भोग रहा है—प्राप्त जो उसकी मुट्ठी में है और अप्राप्त जो उसका अपना नहीं है।

एक किशोर को एमेक्स नगर के एक खेत में ताम्बे की मूर्ति मिली। गरुड़ देवता की इस मूर्ति का एक कलाकृति के रूप में भी मूल्य है पर रोमन अवशेषों से सम्बन्धित होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से यह बहुत ही

मूल्यवान है।

वह किशोर इस बात से परिचित न था और उसने एक राहगीर के हाथो वह मूर्ति दो रुपये म बेंच दी। होठो निकली, कोठो चढी यह बात कैस्टर अजायबघर के अधिकारी तक पहुँची, ता वह खिल उठा। इतिहास के किसी सूक्ष्म सकेत की व्याख्या और पुष्टि के लिए इस मूर्ति की उसे बहुत दिनो से आवश्यकता थी।

पूछते खोजते अधिकारी उस बालक के पास पहुँचा, पर उसके पास अब मूर्ति न थी और मूर्ति ले जानेवाले का पता भी न था। अधिकारी ने पत्रो मे विज्ञापन दे दिया और मूर्ति के लिए अपील की। देश भर म उस मूर्ति की खोज आरम्भ हो गयी।

इस खोज के परिणाम की बाना म हम न उलझें और सोचें कि क्या हमारी भी दशा उस किशोर की तरह नही है, जो उस बहुमूल्य मूर्ति का मोल न जानता था ! हम जो कुछ मिलता है—मिला है, हम ही उसका मूल्य कहाँ जानत हैं !

हमारे देश की लोककथा है कि बाग क पेड की जड खादते समय माली को एक हण्डिया मिली। उसमे कटे छटे सुदर-सुडौल छाटे छोटे पच्चीस पत्थर थे। माली ने गुलेल म लगाकर ब दर भगाने का काम उनमे लिया। उसकी गुलेल का फेंका पत्थर किसी जोहरी पडौसी के घर जा गिरा, तो वह पूछता पूछता माली की झोपडी तक आया। अब माली क पास उस हण्डिया मे पाँच पत्थर थे और जौहरी उन्हे एक लाख रुपये म खरीदने का तयार था। माली को अपनी मूखता पर बहुत दुख हुआ और उसने आत्महत्या कर ली।

इस माली की बातो म हम न उलझें और सोचें कि क्या हमारी भी दशा वैसी ही नही है कि जो हम खो चुके, उसे तो रोत हैं, पर जो हम पा सकते हैं, पाये हुए हैं, उसे नही विचारत !

अपने जीवन क अभावो से ऊबे भक्त ने उस दिन भगवान के मन्दिर मे उपालम्भो की झडी लगा दी। उसक स्वर मे उद्वेग था, तो भाषा मे कडवाहट। जो कुछ वह कह सकता था उसने कहा और जब तक वह कह सकता था, उसने कहा, पर मन्दिर से बाहर वह आया, तो दखा एक भिखारी

सामने है पर दोनो उसके कटे, हाथ दोनो टूटे और लुज-पुज, एकदम अपग— 'अपाहिज को कुछ दो बावा,' दीन हीन पुकारो म डूबा-उतराया स्वर।

भक्त ने उसे देखा कि देखता ही रह गया। पहले वह भौचक हुआ तब स्तब्ध और फिर अधीर दौडा झपटा वह भगवान् की प्रतिमा के सामने जा पहुचा। अब वह भाव विभार तो स्वर गदगद कण्ठ अश्रु अवरुद्ध और दीन-प्रणत हे प्रभो तुमने मुझे इतने स ्र सबल हाथ पर दिय पर मैंने उनका मूल्य महत्व नही जाना और उपालम्भ देता रहा कि यह नही दिया वह नही दिया। मेरे स्वामी तुमन मुझे बहुत दिया है बहुत दिया है, मैं तुम्हारा कृतज्ञ हू।

इस भक्त की बातो म भी हम न उलझें और सोचें कि क्या हमारी भी दशा वसी ही नही कि जो हम प्राप्त है सुलभ है मिला हुआ है हमारा है, उसका तो हम सुख न लें, रस न लें, आन द न लें और जो हम प्राप्त नही है सुलभ नही है दुलभ है उसकी चाह म घुलत रह, दुख मानें रोया करें?

अणुव्रत आ दोलन के प्रवतक सन्त तुलसी ने दो ग दा म इस विकृति का जो चित्र दिया है, उसे हजार विद्वान् हजार हजार पष्ठो की हजार पुस्तको म नही दे सक्त। वे श द हैं—भूख और व्याधि।

सन्त की वाणी है 'आज क मनुष्य को पद यश और स्वाथ की भूख नही व्याधि लग गई है जो बहुत कुछ बटोर लेने क बाद भी शात नही होती।

हम इसे मन म समझ लें तो सुख पाएँ आचरण म उतार लें तो जीवन की पूणता जिसम दुख-सकट का प्रवेश निषिद्ध होता है। भूख स्वास्थ्य है, क्योकि भूख का पहला फल है प्रयत्न की उत्तजना, दूसरा फल है प्राप्ति का स्वाद और तीसरा फल है तप्ति का आन द। इसक विरुद्ध व्याधि है, अस्वस्थता जिसम प्राप्ति की उत्तजना है स्वाद लेन की उत्तेजना है तप्ति पाने की उत्तजना है—बस उत्तेजना की उत्तजना है।

क्या उत्तजना कोई बुरी चीज है? नही उत्तेजना अच्छी चीज है, क्योकि वह प्रगति की प्रेरणाशक्ति है।

50 गौरनगर, सागर वि वविद्यालय, सागर—470003

क्या उत्तेजना कोई बुरी चीज़ है ? हां, उत्तेजना बुरी चीज़ है , क्योंकि वह बढकर प्रगति की जगह अगति का वाहन हो जाती है और लक्ष्य स्थान आने पर भी मनुष्य को रुकने नहीं देती। तब मनुष्य चलना-बढना भूलकर घूमने लग जाता है और तेली के बल की तरह घूमता ही रहता है, कहीं पहुँचता नहीं।

सन्त का दिशा निर्देश है कि हम पद, यश, स्वार्थ की भूख से उत्तेजित हो, व्याधि से पीडित नही।

भूख और व्याधि की मध्यरेखा कहाँ है ? मध्य रेखा है—सीमा। हमे प्राप्ति की सीमा का ज्ञान हो, हममे उस ज्ञान पर टिके रहने की दृढता हो। हम जाने रहें कि हमे क्या चाहिए, कितना चाहिए और जब वह उतना हमे मिल जाये तो हम और न चाहे, और और न चाहे। यह है सीमा जो भूख को व्याधि बनने से रोकती है, बचाती है। वही बात कि हम प्राप्त का सुख लें, अप्राप्त के लिए अपनी सीमा मे प्रयत्न करें, उसके लिए दुखी न हो। अपने प्राप्त का सुख न खोयें।

महू छावनी के यशस्वी डाक्टर हैं श्री राधामोहन। सदव्यवहार उनका स्वभाव है और यही है उनकी सफलता का रहस्य। एक दिन बातो बातों मे बोले, 'दुनिया म हर आदमी दुख दुख चिल्लाता है, पर सचमुच दुखीआदमी इस ससार म बहुत कम हैं और सचाई तो यह है कि दुख क्या है और सुख क्या है इस पर आदमी गहराई स कभी सोचता ही नही, बस एक आदत सी बन गयी है आदमी की कि दुख दुख चिल्लाये और सुखा के नकली सपने देखे।'

उनकी बात मेरे गले नहीं उतरी और मैं जिज्ञासा भरी आँखो से उनकी तरफ देखता रह गया, तो बोले, "मेरी बात की कसौटी यह है कि कोई आदमी किसी दूसरे आदमी से अपनी ज़िन्दगी बदलने को तैयार नही है।

मेरी जिज्ञासा एक प्रश्न म उभर आयी "क्यो, क्या आप जवाहरलाल नेहरू स अपना जीवन बदलने को तैयार नही हैं ?'

पूरी तेजी मे दोना हाथ ऊपर उठाकर और पजे फला हिलाकर वह बोले, "ना, ना।"

मैंने मन-ही मन सोचा—इस मजेदार 'ना, ना के पीछे डाक्टर साहब अपनी हार को छिपा रहे हैं और पूछा, "क्यो ?"

पूरी स्थिरता से बोले, 'जवाहरलाल के घर म कोई लडका नही, मेरे घर म दो स्वस्थ सुदर कमाऊ बेटे हैं फिर जवाहरलाल नेहरू बूढे हैं मैं प्रौढ हू। भला मैं अपनी पूरी जिन्दगी उनसे कस बदल सकता हू ? आप ही बतलाइए।

मैं उनकी तरफ आश्चय से देखता रह गया। जीवन का कितना बडा सत्य उन्होने मेरे सामने परस दिया था। सचमुच जीवन की कितनी बडी विकृति है कि हम प्राप्त का सुख नही लेते और अप्राप्त क लिए हाय-हाय करते हैं। जो हमारे पास है उसकी ओर ध्यान नही देत और जो हमारे पास नही है या दूसरो के पास है उसकी लिप्सा म डबे-खोय रहते हैं बगल म लडका शहर म ढिंढोरा और क्या होगा ?

एक अधे फकीर को एक दिन एक गीत गाते हुए सुना था। उसकी पहली लाइन थी— हर हाल मगन रह रे बन्दे हर हाल जतन कर रे बन्दे। जीवन की कितनी बडी उपलब्धि समाई है इन दस शब्दो मे। जीवन की सफलता, सम्पूर्णता और कृतार्थता यह नही है कि हम एक विशेष हाल मे खश मगन रह यह तो जीवन की एकागिता है। जीवन की परिपूर्णता तो यह है कि हम हर हाल म मगन रह सकें—वही बात कि प्राप्त का सुख ले सकें अप्राप्त की चाह मे खो न जायें।

तो क्या अप्राप्त की चिता पाप है ? अपराध है ? भूल है ? ना, न पाप है न अपराध है न भूल है उसके लिए प्रयत्न हम करें पर रोएँ नही अपने को खोए नही। यदि प्रयत्न करने की क्षमता न हो प्रयत्न करने के साधन न हो तब प्रश्न मार्मिक है और अध फकीर की आधी पक्ति म उसका तार्किक समाधान है—हर हाल जतन कर रे बन्दे। ऐसा कोई अवसर नही जिसम जतन की प्रयत्न उद्योग की गुजाइश न हो प्राप्त का सुख लेते लेते हम अप्राप्त के लिए प्रयत्न करें खुला माग सामने न हो, तो माग खोजने बनाने मे जुटें निराश-हताश अकमण्य न हो पर अप्राप्त की प्राप्ति के प्रयत्न मे प्राप्त को न भूलें उसका सुख लते रहें।

क्या अप्राप्त की प्राप्ति के लिए प्रयत्नो की कोई सीमा है ? हाँ उसकी सीमा है यह कि हम कुछ मिलने पर खुश रह बहुत कुछ मिलने पर सतुष्ट हो और सब कुछ कभी न चाहें।

तैरना और डूबना

• • •

स्थान कलाभूमि पेरिस,
उम्र यही कोई पचीस वर्ष,
उभरती हुई कीर्ति का युग कि सर्वत्र प्रशंसा
पर मन मे यही भाव है कि मैं और भी अच्छा लिख सकता हू
और यह बेचैनी कि फिर लिख क्यो नही पाता—
कमी कहाँ है ? किस बात की है ?
यह थे बाद के महान लेखक श्री स्टीफन ज़्विग।

• •

एक दिन प्रसिद्ध बेल्जियम लेखक वरहरन के साथ वह वर्चस्वी मूर्तिकार रोडिन से मिले। वह पृथ्वी पर थे तो रोडिन शिखर पर, पर यह शिखर ऐसा था कि पृथ्वी को प्यार दे सके— रोडिन ने उन्हें गाँव आकर अपनी मूर्तिशाला देखने का निमन्त्रण दिया।

यह है रोडिन की मूर्तिशाला उनका साधना मन्दिर, ज़्विग के शब्दो मे "अविश्रान्त जीवन व्यापी जिज्ञासा और पुरुषार्थ का केन्द्र।" ज़्विग के साथ वह एक मिट्टी की मूर्ति के सामने रुके, "लो, यह है मेरी सबसे ताज़ी रचना, यह बिल्कुल तयार है।"

और उन्होने मूर्ति पर लिपटा गीला कपडा उतारा। उसे देखकर उनकी आँखो मे एक अदभुत चमक आ गयी, वह खिल उठे। उनकी आँखें तेज़ी से उस पर घूम गयी—ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर और यो ही कई बार। तब आप ही आप बोले "अरे, यह कन्धा, यह लाइन जरा और

मुलायम होनी चाहिए।

ज्विग ने अनुभव किया कि वयोवृद्ध रोडिन की नस नस एक आत्मिक स्फूर्ति से चमचमा उठी है। उन्होंने अपनी करनी उठा ली और ज्विग से कहा "माफ कीजिएगा ज़रा।" और वह मूर्ति को नया स्पर्श देने में जुट गये। करनी चलती रही लाइन मुलायम होती गयी कन्धा चमकता गया। करनी रुक गयी— "बस अब ठीक है।" और आँखें फिर घूम चली ऊपर से नीचे नीचे से ऊपर।

छातियों के उभार पर उनकी आँख ठहर गयी— "ओह ज़रा यहाँ भी।" और करनी के स्पर्श सौन्दर्य की खेती में जुट रहे। ज्विग को साथ लाने की बात वह भूल गये थे—शायद उन्हें अपने वहाँ होने की चेतना भी न थी। हाथ का कोण बदलता बनता, करनी की दिशा भी बदलती कुछ मिट्टी खरच जाती कुछ लग जाती एक नया रूप उभर आता वह चमक उठते और तब फिर आँखें नीचे ऊपर घूम जातीं। कहीं टिक जाती करनी चलने लगती हाथ मचलने लगते रूप निखरने लगता, रेह उभरने लगते।

यों ही घण्टा बीत गया। वह और उनकी मूर्ति और उनकी मूर्ति और वह—उनकी स्मृति में चेतना में और कहीं कुछ नहीं कहीं कुछ भी नहीं। आँखें ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर फिरीं पर इस बार वे कहीं ठहरी नहीं। वह चमत्कृत हो उठे— "बस अब ठीक है।" गीला कपड़ा उन्होंने फिर मूर्ति पर लपेट दिया और उल्लसित भाव से वह पीछे हटे—उनको ज्विग दिखाई दिये। झम चम झम झम उनकी पुतलियों में स्मृतियाँ फिल्म सी घूम गयी और तब उन्हें याद आया कि वह ज्विग को अपनी मूर्तिशाला दिखाने लाये थे "ओह माफ कीजिएगा मैं बिल्कुल ही भूल गया था।" ज्विग ने उन्हें अपना वाक्य पूरा नहीं करने दिया और उनका हाथ अपने हाथ में लेकर कृतज्ञता से दबा दिया रोडिन मुस्करा उठे।

इस अनुभव के सम्बन्ध में ज्विग कहते हैं "इस अनुभव से ज्यादा कि कैसे एक व्यक्ति समय स्थान और संसार को भूल सकता है मुझे जीवन में और किसी चीज ने प्रभावित नहीं किया। उस घण्टे भर में मैंने सारी कला और सारी भौतिक सफलताओं का भेद जान लिया और वह है एकाग्रता—एक व्यक्ति की सारी शक्तियों का एक कार्य को पूरा करने में पूर्ण उपयोग

करना, चाहे वह काय छोटा हो या बडा और अपनी इच्छाशक्ति को जो प्राय मे द्रित होकर फैल जाती है, एव ही चीज पर केद्रित करना।'

इस अनुभव से मैं जान गया कि मेरे काय मे किस चीज की कमी थी। मुझमे उस उत्साह का अभाव था, जो व्यक्ति का पूणता प्राप्त करने की इच्छा के सिवाय और सब बातो को भुला देता है। मनुष्य को अवश्य इस योग्य होना चाहिए कि अपने काम म अपने को बिल्कुल भूल जाये। मैं अब अनुभव करता हूँ कि अपने काम के अतिरिक्त और सब को भूल जाने की शक्ति के सिवाय जीवन मे और कोई दूसरा चमत्कार नही है।

जिग का यह अनुभव तो बहुत बाद म पढा पर मुझे जीवन के इस चमत्कार का ज्ञान 1928 मे हुआ था, जब भाई रामस्वरूप शर्मा न याकुल स्मारक कवि सम्मेलन का निमत्रण-पत्र मुझे भेजा। उस निमत्रण-पत्र पर महाकवि बिहारी का यह दोहा छपा था

तन्त्री नाद, कवित्त रस, सरस राग, रति रग।
अनबूडे बूडे, तरे जे बूडे सब अग॥

पत्र पढकर अपना पथ खोजती मेरी तरुणाई लहरा उठी थी—अनबूडे जो पूरी तरह कला की, जीवन की साधना मे नही डूब व डूब गय असफलता के डाकडे म और तर गये—पार हुए वे जो सर्वांग रूप से उसमे डूब गय—सब कुछ भूलकर उसी के हो गये। मेरा अग अग रोमाचित हो उठा था और बेखुदी की हालत म कई दिन तक इस दोहे को गुनगुनाता जगल-रास्ता मे घूमा था 'अनबूडे बूडे, तरे जे बूडे सब अग।'

सब कुछ भूलकर एक मे रम जाना, जुट जाना ही एकाग्रता है। इसे ही तल्लीनता कहत है और इसी के लिए मेरा निमत्रण है उन सबको, जो सफलता चाहते ह, सिद्धि चाहते हैं असाधारणता चाहत है चमत्कार चाहत है—तैरो मत, बस डूब जाओ। सौदय का दशन मात्र है किनारे पर बठना, सार सामथ्य स समर्थित रत्न राशि तो अथाह तल मे हैं। वे मूख हैं और अभागे भी जो किनारे पर बठे रह जात हैं या ऊपर ऊपर तैरकर लौट आते हैं

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पठ।
मैं बौरी खोजन गई, रही किनार बैठ॥

लोककथा है कि एक प्रेमी अपनी प्रमिका के ध्यान मे डूबा उससे मिलने जा रहा था। सडक किनारे वठा एक साधु ईश्वर का ध्यान कर रहा था। प्रेमी उस साधु से टकरा गया पर रुका नही चलता रहा। साधु न चिल्ला कर कहा नालायक मैं ईश्वर के ध्यान मे डूबा हुआ था तूने टकराकर मेरा ध्यान भग कर दिया।

प्रेमी ने कहा हे साधु मैं अपनी प्रमिका के ध्यान मे डूबा था। मुझे तुझसे टकराने की कोई सुध नही है पर यह तो वता कि तेरा ईश्वर ध्यान कसा है कि मुझसे टकराते ही तू चौंक उठा और वडवडाने लगा।

यह है तरने और डूबन का अतर और स्वरूप ठोकर। रास्ते की विघ्न वाधा जिसकी एकाग्रता को भग कर दे वह तर रहा है पर जो परा जया म असफलताओ मे रुकावटो म भी अभग रहे, वह डूबा हुआ है सफलता का चमत्कार उसे ही प्राप्त होता है। सौ बात की एक बात—एक को याद रखो और शेष सबको भूल जाओ। गाधीजी कहा करते थे सौ बातें मरे सामने रहती हैं पर मैंने ऐसा अभ्यास कर लिया है कि जब चाहू 99 म स अपना ध्यान हटाकर एक मे ही पूरी तरह लगा दू। यही है डूबना एकाग्र होना तल्लीन हाना।

दाते ने नरक का वणन किया तो साहित्य म उसकी धूम मच गयी। कही आसपास तो क्या दूर पार भी नरक नही। सामने पुस्तक के छप पन्ने पर पडो तो लगता कि चारा ओर नरक और चारो ओर क्या, स्वय पाठक जैस नरक क वातावरण म। सब प्रशसा और आश्चय के भाव स परिपूण। किसी ने पूछा दाते नरक का वणन करन म तुम्हे ऐसी सफलता कसे मिली? उत्तर मिला इस वणन को कागज पर उतारने म जितने महीने लग उतने महीने मैंने नरक की कल्पना नही की मैं स्वय नरक म ही रहा और मुझे लगा कि मैं उम अपनी आँखो से देख रहा हू और तन मन से भोग रहा हू।

कितना मार्मिक है महाकवि दाते का यह उत्तर कि महीनो तक वह नरक म रहे उन्होने नरक मे रहन का अनुभव किया उसका कष्ट सहा, तब उन्होने उसका वणन किया। वढिया सजे कमरे म वठकर जो साहित्यिक सेतो पवता का वणन करते हैं क्या दाते की सफलता पा सकते हू? नही क्योकि वे तरत हैं डूबते नही।

• •

यह है 1950 और यह सजी है इन्दौर म विशाल उद्योग प्रदशनी। उसी के रगमच पर महू छावनी की मित्र मडली ने अभिनीत किया एकाकी नाटको के राजकुमार डाक्टर रामकुमार वर्मा का 'कौमुदी महोत्सव'। इस मण्डली के प्राय सभी सदस्य रेल विभाग के श्रमजीवी न किसी को नाटकीय शिक्षण की सुविधा, न अभिनय प्रशिक्षण का अवसर पर सब मे सहज चाव, तो आ जुटे समभाव। उन्ही मे भाइ बाबूराम शर्मा, अभिनेता वसुगुप्त की भूमिका म। अन्त म विष पीकर आत्महत्या का दृश्य, पर दश्य इतना सजीव कि दशको को उसने मरघट के वातावरण मे पहुचा दिया, बस वही यवनिका पात।

दूसरे दिन मैंने उन्ह बधाई दी, तो बोले, "प्रभाकर जी, बस थोडी देर और अभिनय चलता तो मेरी मत्यु हो जाती।'

चौंक कर मैंने पूछा, "क्या भैया ?'

बोले "मैं यह भूल गया कि अभिनय कर रहा हूँ और मैंने विष नही, लेमन पिया है। अभिनय जस जैसे आगे बढा, विष का असर मुझ पर चढा। अन्त मे स्थिति यह थी कि मेरा दम घुटने लगा था और आँखें बाहर आने लगी थी। पर्दा गिरा तो ध्यान टूटा और हम लौट आये, नही तो जान जाने मे कुछ कसर न थी।' जब जब भाई बाबूराम की बात याद आती है तैरने और डूबने का अन्तर अन्त करण मे स्पष्ट हो उठता है।

अब्राहम लोहार हथौडे बनाया करता था। उसके एक ग्राहक के पास किसी ने उसका बनाया हथौडा देखा, तो जाकर कहा "अब्राहम, मैं तुझे मूह माँगा दाम दूगा, तू मुझे एक हथौडा बना दे पर वह उस आदमी के हथौडे से भी अच्छा हो।' अब्राहम ने कहा, हथौडा तो बना दूगा, पर वह वैसा ही होगा, क्योकि मैंने एक भी हथौडा ऐसा नही बनाया, जिसमे पूरा ध्यान न लगाया हो।" ग्राहक खुश हो गया, क्योकि उसके लिए अब्राहम की बात का मतलब यह था कि वह पूरी तरह डूबकर काम करता है, इसलिए उसकी बनाई हुई कोई चीज घटिया नही हो सकती।

अब्राहम का यह सस्मरण पढा, तो मन मे आया कि कुछ अच्छे लेखको से यह प्रश्न पूछा जाये कि आपकी जो रचना प्रकाशित हुई है, क्या वह इससे

अच्छी नहीं बन सकती थी। कोई दस बारह लेखकों से मैंने यह पूछा, तो भिन्न भिन्न उत्तर मिले। कुछ ने कहा—और अधिक मेहनत करने से और अच्छी हो सकती थी। कुछ ने कहा—हमारे पास और अधिक समय नहीं था। कुछ ने प्रश्न से बचने के लिए प्रश्न किया—क्या आप इस सम्बन्ध में कोई सुझाव देंगे?

यही प्रश्न जब मैंने डाक्टर नगेन्द्र से पूछा, तो पूरे बल के साथ बोले, "ना, मेरे द्वारा रचना इससे अच्छी नहीं हो सकती थी।" मैंने पूछा, 'क्या?' बोले "मैंने पूरे परिश्रम से, पूरी लगन से, पूरी योग्यता से इसमें पूरा समय लगाया और जब समझ लिया कि अब इसमें और कुछ नहीं कर सकता, तो इसे प्रेस भेज दिया।' मैंने पूछा 'यह बात आप इसी रचना के सम्बन्ध में कह सकते हैं या सब रचनाओं के सम्बन्ध में?' बोले 'सब रचनाओं के सम्बन्ध में और सच तो यह है कि अपने सब कामों के सम्बन्ध में, क्योंकि अधूरे मन से मैं कभी कोई काम करता ही नहीं।"

पहले उत्तर देने वाले न थे तो नगेन्द्र जी का उत्तर डूबने वाले का था। पूरे परिश्रम से पूरी लगन से पूरी योग्यता से किसी काम में पूरा समय लगाना, उसमें निःशेष भाव से जुटना ही, डूबना है। यह डूबना ही जीवन का कला है।

लुई नाइज़र ने इस कला की रूपरेखा अपनी एक सूक्ति में इस सफाई से दी है कि उसमें ही उसकी सिद्धि की प्रक्रिया भी आ गई है। वह कहते हैं 'जो आदमी अपने हाथ से काम करता है वह मजदूर है और जो अपने हाथ और दिमाग से काम करता है, वह कारीगर है पर जो अपने हाथ, दिमाग और दिल तीनों से काम करता है वह कलाकार है।"

इसे हम समझें। हाथ अपना काम कर रहा है, पर दिमाग उसमें रस नहीं ले रहा है तो दिमाग दुविधा उत्पन्न करेगा कि पता नहीं वह काम होगा या नहीं और होगा भी तो उसमें मुझे कुछ लाभ मिलेगा या नहीं, इस हालत में उस कार्य में विशेषता उत्पन्न हो ही नहीं सकती। अब यदि हाथ और मस्तिष्क दोनों उसमें लगे हैं, पर दिल नहीं तो काम करने वाला उस काम में आनन्द नहीं ले सकता और किसी में कोई डूबता है आनन्द के ही द्वारा तो परिपूर्णता असम्भव है। दिमाग़ और दिल लगाये बिना किये हुए

अच्छी नही बन सकती थी। कोइ दस-बारह लेखको से मैंने यह पूछा, तो भिन्न भिन्न उत्तर मिले। कुछ ने कहा—और अधिक मेहनत करने से और अच्छी हो सकती थी। कुछ ने कहा—हमारे पास और अधिक समय नही था। कुछ ने प्रश्न से बचने के लिए प्रश्न किया—क्या आप इस सम्बन्ध में कोइ सुझाव देंगे?

यही प्रश्न जब मैंने डाक्टर नगेन्द्र से पूछा, तो पूरे बल के साथ बोले, "ना, मेरे द्वारा रचना इससे अच्छी नही हो सकती थी।" मैंने पूछा, "क्यो?" बोले, "मैंने पूरे परिश्रम से, पूरी लगन से पूरी योग्यता से इसमें पूरा समय लगाया और जब समझ लिया कि अब इसमें और कुछ नही कर सकता, तो इसे प्रेस भेज दिया।" मैंने पूछा, "यह बात आप इसी रचना के सम्बन्ध में कह सकते है या सब रचनाओं के सम्बन्ध में?" बोले, "सब रचनाओं के सम्बन्ध में और सच तो यह है कि अपने सब कामो के सम्बन्ध में, क्योंकि अधूरे मन से मैं कभी कोइ काम करता ही नही।"

पहले उत्तर तरने वाला क थे, तो नगेन्द्र जी का उत्तर डूबने वाले का था। पूरे परिश्रम से, पूरी लगन से पूरी योग्यता से किसी काम में पूरा समय लगाना, उसमें निःशेष भाव से जुटना ही, डूबना है। यह डूबना ही जीवन की कला है।

लुई नाइज़र ने इस कला की रूपरेखा अपनी एक सूक्ति में इस सफाई से दी है कि उसमें ही उसकी सिद्धि की प्रक्रिया भी आ गई है। वह कहते हैं "जो आदमी अपने हाथ से काम करता है वह मजदूर है और जो अपने हाथ और दिमाग से काम करता है वह कारीगर है, पर जो अपने हाथ, दिमाग और दिल तीनो से काम करता है वह कलाकार है।"

इसे हम समझें। हाथ अपना काम कर रहा है, पर दिमाग उसमें रस नही ले रहा है तो दिमाग दुविधा उत्पन्न करेगा कि पता नही वह काम होगा या नही और होगा भी तो उसमें मुझे कुछ लाभ मिलेगा या नही, इस हालत में उस काय में विशेषता उत्पन्न हो ही नही सकती। अब यदि हाथ और मस्तिष्क दोनो उसमें लगे हैं पर दिल नही तो काम करने वाला उस काम में आनन्द नही ले सकता और किसी में कोई डूबता है आनन्द के ही द्वारा, तो परिपूर्णता असम्भव है। दिमाग और दिल लगाये बिना किये हुए

ुस्खे की सफलता बताते हुए उन्होंने कहा, "डाक्टर कृष्णन साठ
म्र मे भी इसलिए इतने कर्मठ है, क्योंकि उनके पास आमोद और
ख़ज़ाना है। वह जब भी मुझे मिलते हैं, एक न एक मनोरंजक बात
ता देते हैं।

नता और मायूसी का सम्बन्ध साधना और बाहरी चीज़ों से नहीं,
ा है। एक साधन सम्पन्न आदमी चिड़चिड़ा और उदास हो सकता है
गरीब आदमी हमेशा प्रसन्न। मैं अक्सर एक अन्धे फकीर को देखता
नी जगह बैठा मुस्कराता रहता है। सिकन्दर ने जब एक साधु से
विश्वविजयी हूँ, सब कुछ मेरे पास है, बोल तू क्या चाहता है?"
मस्ती से उत्तर दिया, "हट जा मेरे सामने से धूप आने दे।"
स्ती है इस उत्तर मे कि सिकन्दर की सब विजय धरी रह गयी।
ावान रहने का नुस्खा है प्रसन्न रहना, सक्रिय रहना, यानी

प्रसन्नता

• • •

जवाहरलाल नेहरू ने सदा जवान रहने का एक नुस्खा बताया है—प्रसन्नता। सैंकडा साल हुए च्यवन ऋषि ने जवानी का एक नुस्खा बताया था—च्यवनप्राश, पर जवाहर हकीम का नुस्खा उससे हर तरह उत्तम है। इसकी पहली खास बात तो यह है कि इसमे कुछ खच नही होता, दूसरी यह कि इसके लिए किसी हकीम डाक्टर, वैद्य के पास नही जाना पडता और तीसरी यह कि इस हकीमजी ने खुद अपने ऊपर आजमाया है और कामयाब पाया है।

1929 म जब जवाहरलाल नेहरू लाहौर काग्रेस के प्रधान चुने गये, तो युवक सम्राट थे और सत्तर वप के होने पर भी देश के पूज्य पण्डितजी नही, प्यारे पण्डितजी ही रहे। अपनी 70वी वषगांठ पर उन्होन खुद आश्चय स कहा था 'मुझे नही लगता कि जिन्दगी के इतन साल गुजर गये लेकिन एतिहासिक सबूत है तो मानना पडता है कि हा मैं इतने सालो का हो गया। ये सबूत न होते ता मैं इस मानने से इकार कर देता, क्योकि मुझे तो ऐसा नही लगता। तो जरूरत है कि हम सब जवानी को सदा बनाये रखनेवाले जवाहरलाल के नुस्खे को समझें और उससे लाभ उठाये।

प्रमुख वैज्ञानिक डाक्टर कृष्णन की वषगाठ सभा मे जवाहरलाल नेहरू ने अपना सदा जवान बने रहने का नुस्खा खुले आम बाँटते हुए कहा यदि कोई सदा जवान और क्रियाशील बना रहना चाहता है तो उसे आमोदी और हँसमुख स्वभाव को उथले रूप म नही, बल्कि वास्तविक और गम्भीर रूप म विकसित करना चाहिए।"

इस नुस्खे की सफलता बताते हुए उन्होंने कहा, "डाक्टर कृष्णन साठ वर्ष की उम्र मे भी इसलिए इतने कमठ हैं, क्योकि उनके पास आमोद और हँसी का खजाना है। वह जब भी मुझे मिलते है, एक न एक मनोरजक बात अवश्य सुना देत हैं।'

प्रसन्नता और मायूसी का सम्बन्ध साधनो और बाहरी चीजों से नही, स्वभाव से है। एक साधन सम्पन्न आदमी चिडचिडा और उदास हो सकता है और एक गरीब आदमी हमेशा प्रसन्न। मैं अक्सर एक अन्धे फकीर को देखता हूँ जो अपनी जगह बैठा मुस्कराता रहता है। सिकन्दर ने जब एक साधु से कहा, 'मैं विश्वविजयी हूँ, सब कुछ मेरे पास है, बोल तू क्या चाहता है?" तो उसने मस्ती स उत्तर दिया "हट जा मेरे सामने से धूप आने दे।' कितनी मस्ती है इस उत्तर म कि सिकन्दर की सब विजय धरी रह गयी। तो सदा जवान रहन का नुस्खा है प्रसन्न रहना सक्रिय रहना यानी रचनात्मक चिन्तन और रचनात्मक काम, दूसरे शब्दो मे सहज जीवन।

प्रसन्नता और सक्रियता की स्वय मूर्ति रहे है श्री जवाहरलाल नहरू। उस दिन नार्वे के प्रधानमन्त्री श्री एनर गिरहाडसन का दिल्ली के लालकिले मे स्वागत था। इधर स्वागत की कार्यवाही चल रही थी, उधर नेहरूजी दीवाने खास की छत की कारीगरी को बारीकी से देख रहे थे और उसके बारे मे धीमे धीमे बातें भी कर रहे थे। मैंने सोचा था कितनी सक्रियता, कितनी रचनात्मकता है पण्डितजी में और जीवन मे—उसकी छोटी स छोटी बात मे कितनी दिलचस्पी है और यह भी कि यह रचनात्मक दिलचस्पी ही तो उनकी प्रसन्नता की पृष्ठभूमि है।

तभी कारपोरेशन की मेयर श्रीमती अरुणा आसफअली ने घोषणा की "आपकी तरफ़ स मैंने पण्डितजी से कुछ शब्द बोलने की प्रार्थना की थी, मुझे बहुत खुशी है कि उन्होंने उसे मान लिया है।'

अब पण्डितजी माइक पर थे—जनता शान्त, उत्सुक और वह मूक गम्भीर। अजीब-सा लगा पर तभी वह बोले, 'इस जगह नये नये चेहरे आते रहते हैं और आप अक्सर उनका स्वागत करते रहत हैं, पर एक चेहरा उन चेहरो मे अक्सर चिपका दिया जाता है।' सब समझ गये कि वह अपनी बात कह रहे हैं, तो सब खिलखिला पडे, पर तभी उन्होंने अपनी

निराली टोन मे कहा, "कोई कितना भी वहया हो, कभी न कभी तो उसे शम आ ही जाती है।' और वह इस तरह मुस्कुराये कि लोग लोट-पोट हो गये। मतलब यह कि अपनी प्रसन्नता से वह खुद भी सुखी हुए और उन्होंने दूसरो को भी सुखी किया। अपनी जवान ताजगी से वह अपने नुस्खो की सफलता का प्रदशन भी कर पाय।

एक अंग्रेजी कहावत है कि तुम हँसो, सारा ससार तुम्हारे साथ होगा, पर तुम राओ, तो ससार मे तुम अकेले रह जाओगे। प्रसन्नता मे आकषण की महाशक्ति का निवास है। हँसमुख हाना जीवन का एक श्रेष्ठ वरदान है।

यह वरदान कस मिल ? यह मार्मिक प्रश्न है पर इसका उत्तर इससे भी मार्मिक है कि यह वरदान तो जन्म के साथ ही मनुष्य को मिल जाता है। इसलिए आवश्यक यह नही कि इम वरदान को पाने के लिए हम प्रयत्न करें आवश्यक यह है कि हम जन्म क साथ मिले हुए इस वरदान को अपनी भूलो से अभिशाप न बनने दें। हाँ, प्रसन्नता वरदान है, अप्रसन्नता अभिशाप, और बिगडी हुई प्रसन्नता हा तो अप्रसन्नता बन जाती है।

एक बार मैंने अपने पिताजी से पूछा, 'दमघाटू गरीबी मे भी आप इतने प्रसन्न कसे रह पाते हैं ?"

उन्होंने इस तरह मेरी तरफ देखा, जस मैंने कोई बडी उजबक बात कह दी हो। तब बोले, 'गरीबी ! कहाँ है गरीबी ? तेरी राय मे मैं गरीब हूँ ?'

मैंने आश्चय से उनकी तरफ देखा और तब कहा, हाँ गरीब नही, तो क्या हम रईस हैं ? पिताजी, रईस ता लाला हरनामसिंह हैं।"

शान्त स्वर म बोले, 'हाँ बटा, लाला हरनामसिंह रईस आदमी हैं, मैं उन्हें गरीब तो नही कह रहा हूँ, पर मैं गरीब कहाँ हू ?"

मुझे लगा कि मैं रत गया हू, भीड म खो गया हूँ। तब बाले, "चतरू को जानता है तू ?"

"हाँ, हमारा भगी है वह रोज ही आता है।' और समय की बात चतरू तभी आ गया। पिताजी ने पूछा बटा चतरू के पास जूता है ?'

मैंने कहा, "ना।'

"बेटा, बिना फटे या साफ कपडे हैं ?"

मैंने कहा, "ना।"

"और क्या बेटा, मेरे पास क्या नया जूता और साफ कपडे हैं ?"

मैंने कहा, "हा।'

पिताजी बोले, 'तो बेटा, गरीब तो चतरू है कि न उसके पास जूता है, न कपडे। न बतन। न ढग का घर। मैं गरीब कहाँ हूँ ?"

कुछ देर वह चुप रहे और तब बहुत गम्भीर होकर बोले 'बेटा दुनिया की बातो म हमेशा अपने से नीचे देखना चाहिए और धम की बातो म अपने से ऊपर। सुख सम्पन्नता का यही माग है।'

अपनी बात उन्होंने मुझे समझायी, 'बेटा, हम हमेशा लाला हरनाम सिंह की हवेली और वभव की बातें सोचते रहे, तो हमारे अभाव हमम दुख, अप्रसन्नता और विषाद भर देंगे पर हम चतरू की दशा पर ध्यान दें तो अपनी परिपूणता हममें सुख, प्रसन्नता और आह्लाद के भाव भरेगी और हम बेकार की हाय हाय से बच जायेंगे। इसके विरुद्ध धम के मामलो मे हम अगर यह सोचे कि हम रोज़ मन्दिर जाते हैं पूजा करते हैं पर हमारा पडोसी न मन्दिर जाता है, न पूजा करता है तो हमम अभिमान आयेगा, और हमारा पतन होगा, पर हम उस पडोसी की ओर देखें जो मन्दिर म पूजा भी करता है और दान भी देता है तो हम नम्र होंगे उन्नति करेंगे।"

मेरे पिताजी की बात का सारतत्व क्या है कि दूसरो से ईर्ष्या न करना और अपने म सन्तुष्ट रहना ही प्रसन्नता की कुजी है।

आह, यह अट्टहास किसका गूज रहा है मेरे कानो म ? लगता है पहाड से कोई नदी हहराकर उतर रही है। यह प्रेमचन्दजी का अट्टहास है, जो बात-बात मे यो फूट पडता था कि सुनियो मे उफान उमड आते थे। न समाज ने उन्हे उनके जीवन मे धन दिया, न उचित पद प्रतिष्ठा ही। उन्होंने एक दिन बातो बातो मे मुझसे कहा था "दूसरे अपना काम नही करते तो मैं अपना काम क्या न करूँ ?' वह कितने अल्पसन्तुष्ट थे और यह आत्म-सन्तोष ही तो उनकी प्रसन्नता का रहस्य था।

चाह का घडा कितना विचित्र है कि एक बूद म भर जाता है और पूरे समुद्र मे भी नही भरता। कहावत प्रसिद्ध है कि ओछा घडा अधिक

निराली टोन मे कहा, "कोई कितना भी बेहया हो, कभी न कभी तो उसे शर्म आ ही जाती है।' और वह इस तरह मुस्कुराये कि लोग लोट-पोट हो गये। मतलब यह कि अपनी प्रसन्नता से वह खुद भी सुखी हुए और उन्होंने दूसरो को भी सुखी किया। अपनी जवान ताज़गी से वह अपने नुस्खों की सफलता का प्रदर्शन भी कर पाये।

एक अंग्रेज़ी कहावत है कि तुम हँसो, सारा संसार तुम्हारे साथ होगा, पर तुम रोओ तो संसार में तुम अकेले रह जाओगे। प्रसन्नता में आकर्षण की महाशक्ति का निवास है। हँसमुख होना जीवन का एक श्रेष्ठ वरदान है।

यह वरदान कैसे मिले? यह मार्मिक प्रश्न है, पर इसका उत्तर इससे भी मार्मिक है कि यह वरदान तो जन्म के साथ ही मनुष्य को मिल जाता है। इसलिए आवश्यक यह नहीं कि इस वरदान को पाने के लिए हम प्रयत्न करें आवश्यक यह है कि हम जन्म के साथ मिले हुए इस वरदान को अपनी भूला से अभिशाप न बनने दें। हाँ, प्रसन्नता वरदान है अप्रसन्नता अभिशाप, और बिगड़ी हुई प्रसन्नता ही तो अप्रसन्नता बन जाती है।

एक बार मैंने अपने पिताजी से पूछा, "दमघोटू गरीबी में भी आप इतने प्रसन्न कैसे रह पाते हैं?'

उन्होंने इस तरह मेरी तरफ देखा, जैसे मैंने कोई बड़ी उजबक बात कह दी हो। तब बोले, 'गरीबी! कहाँ है गरीबी? तेरी राय में मैं गरीब हूँ?'

मैंने आश्चर्य से उनकी तरफ़ देखा और तब कहा, "हाँ गरीब नहीं, तो क्या हम रईस हैं? पिताजी, रईस तो लाला हरनामसिंह हैं।'

शान्त स्वर में बोले 'हाँ बेटा, लाला हरनामसिंह रईस आदमी हैं, मैं उन्हें गरीब तो नहीं कह रहा हूँ, पर मैं गरीब कहाँ हूँ?"

मुझे लगा कि मैं रम गया हूँ भीड़ में खो गया हूँ। तब बोले, "चतरू को जानता है तू?'

'हाँ, हमारा भंगी है वह, रोज ही आता है।" और समय की बात चतरू तभी आ गया। पिताजी ने पूछा, बेटा चतरू के पास जूता है?'

मैंने कहा 'ना।'

"बेटा, बिना फटे या साफ कपडे हैं ?"

मैंने कहा, "ना।"

"और क्यों बेटा, मेरे पास क्या नया जूता और साफ कपडे हैं ?"

मैंने कहा, "हा।"

पिताजी बोले, "तो बेटा, गरीब तो चतरू है कि न उसके पास जूता है, न कपडे। न बतन। न ढग का घर। मैं गरीब कहाँ हूँ ? '

कुछ देर वह चुप रहे और तब बहुत गम्भीर होकर बोले 'बेटा दुनिया की बातो म हमेशा अपने से नीचे देखना चाहिए और धम की बातो म अपने स ऊपर। सुख-सम्पन्नता का यही माग है।"

अपनी बात उन्होंने मुझे समझायी, 'बेटा, हम हमेशा लाला हरनाम सिंह की हवेली और वभव की बातें सोचते रहे, तो हमारे अभाव हमम दुख, अप्रसन्नता और विषाद भर देंगे, पर हम चतरू की दशा पर ध्यान दें तो अपनी परिपूर्णता हममे सुख, प्रसन्नता और आह्लाद के भाव भरेगी और हम बेकार की हाय हाय से बच जायेंगे। इसके विरुद्ध धम के मामलो मे हम अगर यह सोचें कि हम रोज़ मन्दिर जाते हैं, पूजा करते है पर हमारा पडौसी न मन्दिर जाता है, न पूजा करता है तो हमम अभिमान आयेगा, और हमारा पतन होगा, पर हम उस पडोसी की ओर देखें जो मन्दिर म पूजा भी करता है और दान भी देता है तो हम नम्र होंगे, उन्नति करेंगे।"

मेरे पिताजी की बात का सारतत्त्व क्या है कि दूसरा से ईर्ष्या न करना और अपने म सन्तुष्ट रहना ही प्रसन्नता की कुजी है।

ओह, यह अट्टहास किसका गूज रहा है मेरे कानो म ? लगता है पहाड से कोई नदी हहराकर उतर रही है। यह प्रेमचन्दजी का अट्टहास है, जो बात-बात मे या फूट पडता था कि दुनिया मे उफान उमड आते थे। न समाज ने उन्हें उनके जीवन मे धन दिया, न उचित पद प्रतिष्ठा ही। उन्होंने एक दिन बातो बातो मे मुझसे कहा था "दूसरे अपना काम नहीं करते तो मैं अपना काम क्या न करूँ ?' वह कितने अल्पसन्तुष्ट थे और यह आत्म सन्तोष ही तो उनकी प्रसन्नता का रहस्य था।

चाह का घडा कितना विचित्र है कि एक बूद म भर जाता है और पूरे समुद्र म भी नहीं भरता। कहावत प्रसिद्ध है कि आछा घडा अधिक

निराली टोन म कहा, ' कोई कितना भी कहता हो, कभी न कभी तो उस दाम आ ही जाती है । ' और यह इस तरह मुस्कराए कि लोग लोट-पोट हो गये । मतलब यह कि अपनी प्रसन्नता से वह खुद भी सुखी हुए और उन्होंने दूसरों को भी सुखी किया । अपनी जबान ताजगी से वह अपने कुल्ल की सफलता का प्रदर्शन भी कर पाये ।

एक अंग्रेजी कहावत है कि तुम हँसो, सारा संसार तुम्हारे साथ होगा, पर तुम रोओ तो संसार में तुम अकेले रह जाओगे । प्रसन्नता म आकर्षण की महाशक्ति का निवास है । हँसमुख होना जीवन का एक श्रेष्ठ वरदान है ।

यह वरदान कैसे मिले ? यह मार्मिक प्रश्न है, पर इसका उत्तर इसस भी मार्मिक है कि यह वरदान तो जन्म के साथ ही मनुष्य को मिल जाता है । इसलिए आवश्यक यह नहीं कि इस वरदान को पाने के लिए हम प्रयत्न करें आवश्यक यह है कि हम जन्म के साथ मिले हुए इस वरदान को अपनी भूलों से अभिशाप न बनने दें । हाँ प्रसन्नता वरदान है अप्रसन्नता अभिशाप, और बिगड़ी हुई प्रसन्नता ही तो अप्रसन्नता बन जाती है ।

एक बार मैंने अपने पिताजी से पूछा, ' इतनी गरीबी म भी आप इतने प्रसन्न कैसे रह पाते हैं ?'

उन्होंने इस तरह मेरी तरफ देखा, जैसे मैंने कोई बड़ी उजबक बात कह दी हो । तब बोले, "गरीबी ! कहाँ है गरीबी ? तेरी राय म मैं गरीब हूँ ?"

मैंने आश्चर्य से उनकी तरफ देखा और तब कहा, ' हाँ गरीब नहीं, तो क्या हम रईस हैं ? पिताजी, रईस तो लाला हरनामसिंह हैं ।"

शान्त स्वर मे बोले, ' हाँ बेटा, लाला हरनामसिंह रईस आदमी हैं, मैं उन्हें गरीब तो नहीं कह रहा हूँ पर मैं गरीब कहाँ हूँ ?"

मुझे लगा कि मैं रुक गया हूँ, भीड़ म खो गया हूँ । तब बोले, "चतरू को जानता है तू ?"

"हाँ, हमारा भंगी है वह, रोज ही आता है ।' और समय की बात चतरू तभी आ गया । पिताजी ने पूछा बेटा चतरू के पास जूता है ?"

मैंने कहा, "ना ।'

"बेटा, बिना फटे या साफ कपडे हैं ?"

मैंने कहा, "ना।"

"और क्यो बेटा, मेरे पास क्या नया जूता और साफ कपडे हैं ?"

मैंने कहा, "हां।'

पिताजी बोले, 'तो बेटा, गरीब तो चतरू है कि न उसके पास जूता है, न कपडे। न बतन। न ढग का घर। मैं गरीब कहाँ हूँ ?"

कुछ देर वह चुप रहे और तब बहुत गम्भीर होकर बोले 'बेटा दुनिया की बातो मे हमेशा अपने से नीचे देखना चाहिए और धम की बातो मे अपने से ऊपर। सुख सम्पन्नता का यही माग है।"

अपनी बात उन्होंने मुझे समझायी, 'बेटा, हम हमेशा लाला हरनाम सिंह की हवेली और वैभव की बातें सोचते रहें, तो हमारे अभाव हममे दुख, अप्रसन्नता और विषाद भर देंगे पर हम चतरू की दशा पर ध्यान दें तो अपनी परिपूणता हमम सुख, प्रसन्नता और आह्लाद के भाव भरेगी और हम बेकार की हाय हाय से बच जायेंगे। इसके विरुद्ध धम के मामले मे हम अगर यह सोचें कि हम रोज़ मन्दिर जाते हैं पूजा करते हैं, पर हमारा पडौसी न मन्दिर जाता है न पूजा करता है तो हममे अभिमान आयेगा, और हमारा पतन होगा, पर हम उस पडोसी की ओर देखें जो मन्दिर मे पूजा भी करता है और दान भी देता है तो हम नम्र होंगे उन्नति करेंगे।"

मेरे पिताजी की बात का सारतत्त्व क्या है कि दूसरो से ईर्ष्या न करना और अपने म सन्तुष्ट रहना ही प्रसन्नता की कुजी है।

आह यह अट्टहास किसका गूज रहा है मेरे कानो म ? लगता है पहाड से कोई नदी हहराकर उतर रही है। यह प्रेमचन्दजी का अट्टहास है, जो बात-बात मे यो फूट पडता था कि सुनियो मे उफान उमड आते थे। न समाज ने उन्हे उनके जीवन मे धन दिया, न उचित पद प्रतिष्ठा ही। उन्होंने एक दिन बातो-बातो मे मुझसे कहा था 'दूसरे अपना काम नही करते तो मैं अपना काम क्या न करू ?" वह कितने अल्पसन्तुष्ट थे और यह आत्म सन्तोष ही तो उनकी प्रसन्नता का रहस्य था।

चाह का घडा कितना विचित्र है कि एक बूद म भर जाता है और पूरे समुद्र म भी नही भरता। कहावत प्रसिद्ध है कि ओछा घडा अधिक

छनवता है। यही बात मनुष्य की है कि वह अन्दर से सन्तुष्ट हो, प्रसन्न हो, तो उसकी स्थिरता सक्रियता बना रहती है, पुनता बनी रहती है, नहीं तो वह उदासी और निष्क्रियता से घिर जाता है।

जब तक सब कुछ पास न हो कोई कैसे प्रसन्न रह सकता है?"

ये वाक्य अक्सर युवकों के मुख से मुझे सुनायी देते हैं और मैं सोचता हूँ कि ये कम से कम से वचन के बन्द बहान हैं। आदमी के पास सब कुछ हो, उसका जीवन भरा पूरा हो, यह अच्छी बात है और यह भी सच है कि जीवन में साधना का बहुत महत्त्व है पर सब कुछ मेरे पास हो, तो मैं सुख रहूँ और सब साधन पहले जुट जायें तो मैं काम आरम्भ करूँ, यह सुख सफलता का नहीं, दुःख और असफलता का ही मार्ग है। जगभूषण के पास साधन है वह एक उपवन तैयार करने में जुट सकता है और उससे प्रसन्नता पा सकता है पर कुलभूषण अपने कमरे में गमली का एक पेड़ लगाने और उसे सींचने में भी आनन्द ले सकता है।

• •

गरीबाल्डी उन दिनों अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे थे और उनका यश दूर-दूर तक फैल चुका था। अपने समय के महापुरुषों में उनकी गिनती होने लगी थी।

एक दिन किसी दूसरे देश का एक सेनापति परामर्श के लिए उनके पास आया। वह सुन चुका था कि गरीबाल्डी बड़े आदमी हैं और दुनिया की मनोवृत्ति है कि बड़े आदमी के साथ वैभव की कल्पना वह अपने-आप जोड़ लेती है। सन्ध्या के समय गरीबाल्डी अपने मामूली घर में उस सेनापति से मिले। साधारण बातचीत के बाद सेनापति ने कहा, 'कृपा कर लैम्प मँगाइए। मुझे आपसे एक नक्शे पर बातें करनी हैं।'

'लैम्प का प्रबन्ध तो मेरे पास नहीं है।' सरलता के साथ गैरीबाल्डी ने कहा, 'असल में मुझे कभी उसकी जरूरत ही नहीं पड़ती।'

"आप चिन्ता न करें मैं कल दिन में आपसे मिलूँगा।' सेनापति ने कहा और वह चले गये, पर गरीबाल्डी की निर्धनता और साधनहीनता अब उनके सामने थी, वह उससे दुखी हुए।

"यह आपके चरणो म मेरी तुच्छ भेंट है कृपाकर इसे स्वीकार करें। मेरे लिए यह असह्य है कि आप जैसे महापुरुष का जीवन इस तरह अभावो से घिरा रहे।" बातचीत के बाद दूसरे दिन पाच हजार पौंड की रकम भेंट करते हुए सेनापति न गैरीवाल्डी से कहा।

'ना, ना। यह सब कुछ नही। मुझे कोई कष्ट नही है। और अभाव ! इन्हे तो मैंने स्वय अपन जीवन का साथी चुना है। आप विश्वास करें, ये अभाव मुझे जीवन म अधिक से अधिक सघर्ष करने की प्रेरणा देत हैं—ये न हो, तो मैं इतना काम हो न कर पाऊँ।"

गैरीवाल्डी के इन्कार से सेनापति का मन खिन्न हो गया तो अत्यन्त कोमल हो, उन्होने उस सेनापति से कहा, अच्छा अच्छा, मुझे आपका उप हार स्वीकार है पर पाच हजार पौड नही आप मुझे पाच पौड मोमबत्तियाँ दे दें। जब कभी सध्या के समय आप जसा कोई मित्र आयगा, तो मैं उनम से एक जला दिया करूगा। इस तरह काम मे रुकावट भी न पडेगी और उस समय मुझे आपकी मीठी याद का सुख भी मिला करेगा।"

क्या आप पर प्रसन्नता, उदासी और अकमण्यता का भूत सवार है और आप सोचते हैं कि साधना की हीनता या कमी के कारण कुछ भी नही किया जा सकता ?

हाँ, तो आज ही और अभी उठकर खडे हो जाइए और यदि कुछ भी नही कर सकत तो किसी हसमुख और उद्यमी मित्र स मिलने चले जाइए, किसी लहलहात खेत पर जा बठिए किसी उपवन की सर कीजिए, या कोई अच्छी पुस्तक पढिए—आपके सिर पर चढा भूत भागता नजर आयेगा और आप अपने को गरीवाल्डी और जवाहरलाल नेहरू की तरह प्रसन्नता और सजीवता के साथ काम म जुटा पाएँगे।

हमेशा हसमुख रहन की आदत डालिए हमेशा कोई न कोई निर्माण काय करत रहिए और याद रखिए, कि रचनात्मक चिन्तन और रचनात्मक काम आदमी को सदा-सवदा जवान रखत हैं।

पत्नी और वेश्या

• • •

सूरत अफ्रीका की मिट्टी से बनी—एकदम आबनूसी कलर और भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत से प्राप्त नाम था रामचन्द्र, पर अफ्रीकी देह योरोपियन वेशभूषा हैट से बूट तक आच्छादित, तो संस्कृत नाम ब्रिटिश देन भाषा से सम्पादित—मिस्टर आर० चन्द्रा। यह चन्द्रा लिखने में, तो बोलने में चन्दरा और कभी-कभी चांदरा भी।

सूरत, वेशभूषा और नाम में ही नहीं, अन्तःस्वभाव में भी रामचन्द्र विविध—तीन तरह के आदमी। वह अफ्रीकियों की तरह मेहनती-सहिष्णु, तो भारतीयों की तरह विभिन्न देवताओं के पुजारी और योरोपियनों की तरह तेज-तर्रार।

इस तरह सूरत और सीरत दोनों में तिरंगे मेरे मित्र श्री रामचन्द्र, माने मिस्टर आर० चन्द्रा अपनी जगह एक निहायत दिलचस्प इन्सान।

चन्द्रा का जन्म एक ऐसे घर में हुआ जहाँ कभी लालटेन नहीं जली और जो सदा मिट्टी के तेल की ढिबली जलाकर ही अपना काम चलाता रहा। चन्द्रा जैसे-तैसे आठवाँ दर्जा पास कर नौवें में पहुँचा तो था, पर यह मुझे मालूम नहीं कि उसमें कितने दिन बैठा क्योंकि काम धन्धे के कारण मैं दूसरे शहर में चला आया, पर कोई दो साल बाद वह मुझे अचानक एक दिन रेल में मिला तो पूरा बाबूजी बना हुआ था—सूट भी था, बूट भी था, घड़ी भी थी छड़ी भी थी। मैंने गौर से देखा, सभी चीज़ें घटिया क़िस्म की थीं, पर वह सब को करीने से संवारे हुए था।

मन ही मन मैंने अनुमान लगाया कि वह एण्ट्रेंस पास नहीं कर सका

और अब म्युनिसिपिल चुगी मे नौकर हो गया है। सोचकर मुझे खुशी हुई कि चलो काम पर लग गया रामचन्द्र और अपने माँ बाप को सुख देगा, पर जब मैंने पूछा कि नौकरी कहा लगी है तो बोला, 'मैं ठहरा आज़ाद तबियत आदमी भाई साहब, मुझसे किसी की गुलामी नही होती। फिर नौकरी का भविष्य कुछ नही। लिये जाओ जन्म भर बँधी-बँधायी तनख्वाह।"

बडा अजीब-सा लगा उसका जवाब, फिर भी पूछा, "तो क्या करते हो अब ?" तडाक से बोला 'प्रिंसिपल हूँ।'

उसका उत्तर मेरे दिमाग पर छडी-सा पडा और वह भिन्ना गया, फिर भी अपने स्वर को जहा तक बना, सम्भालकर साधकर मैंने पूछा, "कहाँ हो प्रिंसिपल ?'

पूरी स्थिरता से रामचन्द्र ने उत्तर दिया "मैंने अपना कालज खोल लिया है भाई साहब। मैं आज़ाद तबियत का आदमी हू और भाई साहब, मुझसे किसी की गुलामी नही होती।'

"अपना कॉलिज खोल लिया है और तुम उसके प्रिंसिपल हो!' ज़रा तेज़ी से मैंने पूछा तो वही ठण्डा उत्तर मिला 'हाँ।' और तब बातो म पता चला कि जब रामचन्द्र नौवें दर्जे की पूरी किताबें न खरीद सका, तो अब अपनी सवा दो गज़ लम्बी और दो गज़ चौडी बठक मे उसका कालेज खुल गया। नाम है—चन्द्रा टाईपिंग कालेज और उसके प्रिंसिपल है मिस्टर आर० चन्द्रा।

कालेज म एक पुराना टाइपराइटर है, जिससे चन्द्रा साहब लोगो की दरख्वास्तें टाइप करते हैं और रोटी कमाते हैं। एकाध टाइप सीखनेवाला लडका भी कभी-कभी आ जाता है, फीस तो ऐसी-वैसी ही देता है पर प्रिंसिपल साहब के घर का सामान बाजार स ला देता है। इसस भी बडा लाभ यह है *कि उसके ही कारण चन्द्रा साहब और प्रिंसिपल य दो नाम* प्रचलित रहते हैं, सब कुछ सुन-समझ कर मैंने सोचा—रामचन्द्र हवा बाँधनी खूब सीख गया है।

सचमुच हवा बाँधते ही उसकी ज़िन्दगी बीती और एक बार ता उसने ऐसी हवा बाँधी कि मैं देखता ही रह गया। वह मेरे घर मेहमान हुआ, तो मैं उसका ठाठ देखकर दग रह गया। बढ़िया सूट, चैस्टर, चमडे की छोटी-

बड़ी अटैचियाँ और क्रीम-पावडर से डब्बे पर डब्बे। उसने बताया कि वह अब एक लिमिटेड कम्पनी का मनेजिंग डायरेक्टर है और नयी दिल्ली में उसका दफ्तर है।

मैंने देखा कि उसके पास रुपयों की भी अब कमी नहीं है। शाम तक उसने पाँच सात रुपये फालतू कामों पर खर्च कर दिये। यही नहीं, उसने मुझे दिखाया कि अटैची में कपड़ों के नीचे नोटों की गड्डियाँ भरी पड़ी थीं। देखकर मैं तो स्तब्ध रह गया।

कुछ दिन बाद मैं नयी दिल्ली गया तो देखा कि सचमुच ही वह एक लिमिटेड कम्पनी का मैनेजिंग डायरेक्टर है। वह अपने शानदार कमरे में बैठा घण्टी बजाता चपरासी आता वह कहता 'स्टेनो को भेजो।' स्टेनो आता उसका डिक्टेशन लेता और चला जाता। अकाउण्टेण्ट आता और कहता 'साहब पन्द्रह हजार का चेक बम्बई से आया है सात हजार का अहमदाबाद से क्या करूँ?' चन्द्रा कहता 'उन्हें बैंक भेज दो।' इसी तरह वहाँ रात दिन हजारों की बातचीत होती।

चन्द्रा दफ्तर में आता जाता तो चपरासी चिक उठाता, चपरासी ही जूते खोलता। एक मोटर दफ्तर के बाहर खड़ी होती। ड्राइवर अदब से सलाम करता पूछता 'साहब गाड़ी किस समय चाहिए?' वह समय बताता या कहता 'आज नहीं चाहिए।' मोटर चली जाती। मुझे भी उसने एक दो बार मोटर की सैर करायी खिलाया पिलाया और कई बार कहा, 'जरूरत पड़े तो सौ-दो सौ रुपये मँगा लेना, फिक्र न मानना।'

मुझ पर चन्द्रा का बहुत रौब पड़ा और मैंने सोचा, सचमुच रामचन्द्र की सफलता एक चमत्कार है पर कुछ दिन बाद उसका तार मिला कि मैं जेल में हूँ, फौरन आओ। मैं गया, मिला, उसने मुझे बताया कि मेरी उन्नति से कुढ़कर मुझे कुछ लोगों ने नकली मामले में फँसा दिया है तुम मेरी जमानत कर दो बाहर आकर मैं इन सबको ठीक कर दूँगा।

उसने अपनी स्थिति के बारे में बहुत बातें कीं और मुझे समझाया कि उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता पर बाहर जेलर ने मुझे बताया कि इसने गाँव के धनी युवकों को दफ्तर की शान दिखाकर अपनी कम्पनी का डायरेक्टर बनाया और उनका रुपया बेवकूफी से खर्च किया। बाद में झूठे चेक

काटे और जालसाज़ी म पकडा गया। तलाशी म इसके घर से बीस हज़ार रुपया के नोटो की गड्डियाँ मिली, पर उन गड्डियो पर ऊपर-नीचे एक नोट था और बीच मे उसी साइज के कटे हुए सादे कागज़ स्टिच करके रखे थे। अब इसके खिलाफ सात मुकदमे हैं।

जेल से बाहर ही मुझे चन्द्रा का स्टेनो मिल गया। उसने कहा, आप जैसे लोगो क सामन चन्द्रा जा चिट्ठियाँ बडे लागा के नाम डिक्टेट कराता था, व सब दिखाव के लिए। अपनी सफलता की हवा बाधने के लिए ही होती थी। मैं उन्ह टाइप नही करता था और अकाउण्टेण्ट, जो हज़ारा रुपया के चेक आने की बात करता था वह भी नकली थी, जब कम्पनी म कोई व्यापार था ही नही तो चेक कहाँ से आते क्यो आत ? इसी तरह वह हज़ारो रुपयो के जिन चेको पर दस्तखत करता था व भी दिखाव क हाते थे। बाहर जाकर मैं उन्ह फाड देता था। व किसी को दिये न जात थे।

"और वह मोटर कहाँ गयी ?' मैंने पूछा ता स्टेनो हसा, "भाईजी, वह मोटर तो उस ड्राइवर की है। उसे कुछ रुपय महीना इस बात के मिलते थे कि वह आप जैसो के सामने आकर अपनी सूरत दिखा दे, जिससे चन्द्रा की गिनती मोटरवालो म हो जाये, और सुननेवाला पर रौब पडे।"

पता नही इस मुकदमे की गगा को उसने कैसे पार किया, पर कई वर्षों तक मुझे उसका पता नही चला। तब एक दिन उसका एक पत्र मुझे लखनऊ से मिला। लेटर पेपर पर एक लि० कम्पनी का नाम लिखा था। उसके डाय रेक्टर इचाज थे आर० चन्द्रा। पत्र मे लिखा था 'यहाँ एक बहुत बडी स्कीम चालू की है। भगवान की सब तरह कृपा है। आओ तो मेरी कोठी म ही ठहरना।' पढकर सोचा—रामचन्द्र हिम्मतवाला आदमी है। हारा नही, थका नही, अपना काम उसन फिर जमा लिया।

मैं लखनऊ गया तो वह मुझे मिला उसन अपना पता मुझे दिया खाने के लिए बुलाया और कहा 'आज मोटर खराब है नही तो मैं अपनी गाडी भेज दता।"

अपन काम धन्धे से निपटकर मैं चन्द्रा से मिलन गया, ता जहाँ उसने बताया था, कोई कोठी न थी। वह श्रमजीविया का मुहल्ला था। बडी खोजबीन के बाद एक खपरैलिया घर-सी दिखायी दी जिसके बाहर एक

काटे और जालसाज़ी मे पकडा गया। तलाशी म इसके घर से बीस हज़ार रुपया के नाटो की गड्डियाँ मिली, पर उन गड्डियो पर ऊपर-नीचे एक नोट था और बीच म उसी साइज के कटे हुए सादे कागज़ स्टिच करके रखे थे। अब इसके खिलाफ सात मुकदमे हैं।

जेल के बाहर ही मुझे चन्द्रा का स्टेनो मिल गया। उसने कहा, आप जैसे लोगो के सामने चन्द्रा जो चिटिठयाँ बडे लागा के नाम डिक्टेट कराता था, व सब दिखाव के लिए। अपनी सफलता की हवा बाँधने के लिए ही होनी थी। मैं उन्हें टाइप नहीं करता था और अकाउण्टेण्ट, जो हज़ारा रुपया के चेक आने की बात करता था वह भी नकली थी, जब कम्पनी म कोई व्यापार था ही नहीं, तो चेक कहाँ स आते, क्यो आते? इसी तरह वह हज़ारो रुपया के जिन चेका पर दस्तखत करता था, व भी दिखावे के होते थे। बाहर जाकर मैं उन्हे फाड देता था। व किसी को दिये न जाते थे।'

"और वह मोटर कहाँ गयी?" मैंने पूछा, ता स्टेनो हसा, 'भाईजी, वह मोटर तो उस ड्राइवर की है। उसे कुछ रुपये महीना इस बात के मिलते थे कि वह आप जैसो के सामने आकर अपनी सूरत दिखा द, जिसस चन्द्रा की गिनती मोटरवाला मे हो जाये, और सुननेवाला पर रौब पडे।"

पता नही इस मुकदमे की गगा को उसने कम पार किया, पर कई वर्षों तक मुझे उसका पता नहीं चला। तब एक दिन उसका एक पत्र मुझे लखनऊ मे मिला। लेटर पेपर पर एक लि० कम्पनी का नाम लिखा था। उसके डायरेक्टर इन्चाज थे, आर० चन्द्रा। पत्र म लिखा था, 'यहाँ एक बहुत बडी स्कीम चालू की है। भगवान की सब तरह कृपा है। आओ तो मेरी कोठी म ही ठहरना।' पढकर सोचा—रामचन्द्र हिम्मतवाला आदमी है। हारा नहीं, थका नही, अपना काम उसन फिर जमा लिया।

मैं लखनऊ गया तो वह मुझे मिला उसने अपना पता मुझे दिया खाने के लिए बुलाया और कहा 'आज मोटर खराब है नहीं तो मैं अपनी गाडी भेज दता।"

अपन काम धन्धे स निपटकर मैं चन्द्रा से मिलने गया, तो जहाँ उसने बताया था, कोई कोठी न थी। वह श्रमजीविया का मुहल्ला था। बडी खोजबीन के बाद एक खपरलिया बरक-सी दिखायी दी, जिसके बाहर एक

चढ़ी अटचियाँ और क्रीम-पावडर के डब्बे पर डब्बे। उसने बताया कि वह अब एक लिमिटेड कम्पनी का मैनेजिंग डायरेक्टर है और नयी दिल्ली म उसका दफ्तर है।

मैंने देखा कि उसके पास रुपया की भी अब कमी नहीं है। शाम तक उसने पाँच सात रुपये फालतू कामो पर खच कर दिय। यही नहीं, उसने मुझे दिखाया कि अटची मे कपडो के नीचे नोटो की गड्डिया भरी पडी थी। देखकर मैं तो स्तब्ध रह गया।

कुछ दिन बाद मैं नयी दिल्ली गया तो देखा कि सचमुच ही वह एक लिमिटेड कम्पनी का मैनेजिंग डायरक्टर है। वह अपने शानदार कमरे म बैठा घण्टी बजाता चपरासी आता वह कहता 'स्टेनो को भेजो।" स्टेनो आता, उसका डिक्टेशन लेता और चला जाता। अकाउण्टण्ट आता और कहता, साहब पन्द्रह हजार का चेक बम्बई स आया है सात हजार का अहमदाबाद से क्या करूँ?" चन्द्रा कहता, "उन्हें बैंक भेज दो।' इसी तरह वहाँ रात दिन हजारो की बातचीत होती।

चन्द्रा दफ्तर म आता जाता, तो चपरासी चिक उठाता, चपरासी ही जूते खोलता। एक मोटर दफ्तर के बाहर खडी होती। ड्राइवर अदब स सलाम करता पूछता, 'साहब गाडी किस समय चाहिए?' वह समय बताता या कहता, आज नहीं चाहिए। ' मोटर चली जाती। मुझे भी उसने एक दो बार मोटर की सैर करायी, खिलाया पिलाया और कई बार कहा, "जरूरत पडे तो सौ-दो सौ रुपय मगा लेना दिक्कत न मानना।'

मुझ पर चन्द्रा का बहुत रौब पडा और मैंने सोचा, सचमुच रामचन्द्र की सफलता एक चमत्कार है पर कुछ दिन बाद उसका तार मिला कि मैं जेल म हूँ, फौरन आओ। मैं गया, मिला उसने मुझे बताया कि मेरी उन्नति स कुढकर मुझे कुछ लोगो ने नकली मामला म फँसा दिया है तुम मेरी जमानत कर दो बाहर आकर मैं इन सबको ठीक कर दूगा।'

उसने अपनी स्थिति के बारे म बहुत बातें की और मुझे समझाया कि उसका कुछ नहीं बिगड सकता, पर बाहर जेलर ने मुझे बताया कि इसने गाँव के धनी युवको को दफ्तर की शान दिखाकर अपनी कम्पनी का डायरेक्टर बनाया और उनका रुपया बेवकूफी से खच किया। बाद म झूठे चेक

काटे और जालसाजी म पकडा गया। तलाशी मे इसके घर से बीस हजार रुपयो के नोटो की गड्डिया मिली पर उन गड्डिया पर ऊपर-नीचे एक नोट था और बीच म उसी साइज के कटे हुए सादे कागज स्टिच करके रखे थे। अब इसके खिलाफ सात मुकदमे हैं।

जेल के बाहर ही मुझे चन्द्रा का स्टेनो मिल गया। उसने कहा, आप जैसे लोगो के सामन चन्द्रा जा चिटिठ्यां बडे लोगा के नाम डिक्टेट कराता था, व सब दिखावे के लिए। अपनी सफलता की हवा बाँधने के लिए ही होती थी। मैं उन्हे टाइप नही करता था और अकाउण्टैण्ट, जो हजारो रुपया के चेक आने की बात करता था वह भी नकली थी, जब कम्पनी म कोई व्यापार था ही नही तो चेक कहाँ से आते, क्या आते ? इसी तरह वह हजारो रुपया के जिन चेको पर दस्तखत करता था व भी दिखावे के होते थे। बाहर जाकर मैं उन्हें फाड देता था। व किसी को दिये न जाते थ।'

"और वह मोटर कहाँ गयी ? मैंन पूछा तो स्टेनो हसा, 'भाईजी, वह मोटर तो उस ड्राइवर की है। उसे कुछ रुपय महीना इस बात के मिलते थे कि वह आप जसो के सामने आकर अपनी सूरत दिखा दे, जिसस चन्द्रा की गिनती मोटरवाला म हो जाये, और सुननेवाला पर रौब पडे।"

पता नही इस मुकदमे की गगा को उसने कस पार किया, पर वह वर्षों तक मुझे उसका पता नही चला। तब एक दिन उसका एक पत्र मुझे लखनऊ से मिला। लेटर पेपर पर एक लि० कम्पनी का नाम लिखा था। उसके डाय रेक्टर इचार्ज थे, आर० चन्द्रा। पत्र मे लिखा था, यहाँ एक बहुत बडी स्कीम चालू की है। भगवान की सब तरह कृपा है। आओ तो मेरी कोठी म ही ठहरना।' पढकर सोचा—रामचन्द्र हिम्मतवाला आदमी है। हारा नही थका नही, अपना काम उसने फिर जमा लिया।

मैं लखनऊ गया तो वह मुझे मिला उसने अपना पता मुझे दिया खाने के लिए बुलाया और कहा आज मोटर खराब है नही तो मैं अपनी गाडी भेज देता।"

अपने काम धधे स निपटकर मैं चन्द्रा से मिलने गया, तो जहाँ उसने बताया था, कोई कोठी न थी। वह श्रमजीवियो का मुहल्ला था। बडी खोजबीन के बाद एक खपरैलिया बरक-सी दिखायी दी जिसके बाहर एक

कार खडी थी—एक आदमी उसे साफ कर रहा था। मैंने उससे पूछा, "तुम्हारे साहब कहाँ हैं।

गहरी उपेक्षा से उसने कहा, "हमारे साहब ? आप किसे पूछ रहे हैं ?"

मैंने बेफिक्री से कहा, "अरे भाई, चन्द्रा साहब, जिनकी यह गाडी है।"

वह बहुत जोर से हँसा और तब उसने बताया कि यह एक वर्कशाप है और यह गाडी मरम्मत के लिए मिल से आयी है। अन्त मे उसने कहा, 'यहाँ ऐसा कोई साहब नही रहता, जिसके पास मोटर हो।"

मैंने चन्द्रा साहब का पता फिर डायरी म देखा। पता यही था, पर अजीब बात कि वह लापता थे। मैंने हिम्मत न हारी और आस पास के दूसरे लोगो से पूछताछ की। इसी बैरक की दूसरी तरफ वह रहते थे। मैं वहाँ पहुँचा तो देखा 50 60 एक ही तरह की शीशियाँ सामने रखे चन्द्रा साहब उसम खुशबूदार तेल भर रहे थे और उनकी पत्नी लेबिल चिपका रही थी।

मुझे देखकर एक बार तो रामचन्द्र झेंपा, पर तुरन्त ही वह सम्भला और अपने तेल की तारीफें उडाने लगा। बातो-बातो म वह एक छपी हुई किताब उठा लाया। यह किसी प्राइवेट कम्पनी का प्रास्पेक्टस था। डाइरेक्टरो म कई राजाओ, ताल्लुकेदारो, रायबहादुरो और बडे जमीदारो के नाम थे और डायरेक्टर इन्चार्ज की जगह छपा था—आर० चन्द्रा।

बडे लम्बे चौडे प्रोग्राम थे इस कम्पनी के पर मजा तब आया, जब मैंने पूछा कि इसमे रुपया कौन लगाएगा ? पूरे विश्वास के साथ उसने कहा, "यू० पी० म जमीदारी खत्म हो रही है और मैंने इन सब लोगो से मिलकर तय कर लिया है कि उनके मुआवजे म उन्हे जो लाखो रुपये मिलेंगे, उन्हे व इस कम्पनी म लगा देंगे।

जमीदारी सचमुच खत्म हो गयी, पर चन्द्रा साहब की कम्पनी नही खुली और अब भी वह तेल बेचते हैं। सूरत, वेश स्वभाव अब भी ज्यो का-त्यो है। अभी उस दिन मिला तो अपनी आय पन्द्रह सौ रुपये माहवार बता रहा था। वही धुन वही तरीके, कोई अन्तर नही।

मैंने पूछा 'अब आगे क्या प्रोग्राम है ?' बोला, 'पूरे राज्य की रियासतो का संगठन कर रहा हूँ। इस तरह एक लाख आदमियो की ताकत

मेरे साथ होगी और मेरी आमदनी एक लाख रुपये साल की होगी। राज्य के सात बडे शहरो मे मैं अपने वकशाप खोलूगा। सब रिक्शाओ की मरम्मत उनमें ही हुआ करेगी और उनसे मुझे साठ हजार रुपये साल की नयी आमदनी होगी। यह काम कर मैं प्राइम मिनिस्टर से मिलूगा और पार्लियामेंट पहुँचूगा। इसम कई हजार रुपये भी खच हो जायें, तो कोई बात नही, क्योकि एम० पी० होने के बाद तो रुपया बरसेगा मुझ पर जिन्दगी का नक्शा ही कुछ और हो जायेगा।"

रामचद्र के मनसूबे सुनकर मुझे अक्सर हँसी आती है और मैं जानता हूँ कि दूसरो को भी हँसी आयेगी। क्या रामचन्द्र अकेला है कि हम उस पर हँस लें और बठ जाएँ? नही रामचन्द्र अकेला नही है, वह तो प्रतिनिधि है उस जीवन-वत्ति का जो समाज मे फैली हुई है, उसके तन मन पर छायी हुई है। वह वृत्ति है—लक्ष्मी क्रीडा की परिमाणहीन पैसे की प्यास की।

यह लक्ष्मी-क्रीडा है, लक्ष्मी पूजा की विपरीत वत्ति। इसे हम यो कह कि पत्नी म *दाम्पत्य है, वेश्या मे विलास, दोनो मनुष्य की सहज वत्तियाँ है,* पर एक उसका सदुपयोग है, दूसरा दुरुपयोग है। उस सदुपयोग का ही नाम है परिमाण-परिग्रह, योजनापूवक श्रमयोग्यता के उपयोग से धन कमाना और उसका सीमा मे सदुपयोग करना लक्ष्मी पूजा है और रामचन्द्र और नटवरलाल की तरह या सटटे जुए लाटरी से बिना लम्बे परिश्रम के, धनपति होने के रगीन सपने देखना, असगत कम करना, लक्ष्मी क्रीडा है। हम लक्ष्मी-पूजा करें और लक्ष्मी क्रीडा से बचने का व्रत भी लें।

जीवन की मर्यादा मे सुख-सुविधा चाह, उनके साधन जुटायें, पर पसे की राक्षमी प्यास से दूर रहे और वभव के उद्दण्ड प्रदशन से बचें, यह धर्म का निर्देश है, युग की माँग है।

बीमार दिलचस्पी

• • •

बड़े इरादों से पास की थी उन्होंने होम्योपैथिक डाक्टरी पर छोटी छोटी शीशियों की दुनिया बसा ही रहे थे कि स्वतन्त्रता के संघर्ष में कूद पड़े। गांधीजी के आन्दोलन में जेल गये और उधर से हटे तो व्यापार के बाजार में जा बैठे। मतलब यह है कि डाक्टरी नहीं की पर बोलचाल में हैं वह डाक्टर ही यानी सब कहते हैं उन्हें डाक्टर हरिश्चन्द्र।

उनका पुत्र बीमार था। एक विशेषज्ञ चिकित्सा कर रहे थे, पर रोग पकड़ में नहीं आ रहा था और रोग क्या पकड़ में आता जिन्दगी ही मृत्यु की जकड़ में आती जा रही थी। डा० हरिश्चन्द्र चिंतित हो उठे और एक दिन चिकित्सामनीषी डा० रामनारायण बागल को बुला लाये।

बीमार पुत्र ऊपर के कमरे में था। दोनों बातें करते हुए जीने पर चढ़ कमरे में घुसे और रोगी के पलंग के पास जा खड़े हुए। रोगी पुत्र दीवार की ओर मुँह किये लेटा जाग रहा था। डाक्टर साहब को पिता उस रोग की बात सुना रहे थे पर उसने न इधर ध्यान दिया न करवट ही बदली।

डाक्टर बागल कुछ देर खड़े रहे फिर रोगी को छुए-देखे बिना लौट पड़े। दोनों उतर तांगे में आ बैठे और डाक्टर हरिश्चन्द्र से बोले, "इसे हड्डी की टी० बी० (तपेदिक) है। अपने डॉक्टर से कहना कि इसकी रीढ़ की हड्डी के निचले भाग से पानी निकालकर जाँच कर लें, सब पता चल जायगा। वह बहुत योग्य हैं फिर भी कोई असुविधा हो, तो मुझे बुला लें।" और डाक्टर बागल अपने बीमारों के मेले में लौट आये।

बिना बीमार की जाँच पड़ताल किये ही डॉक्टर बागल ने जो निर्णय

लिया उसकी शहर मे चर्चा हुई—चर्चा क्या निन्दा हुई। किसी ने कहा, 'डाक्टर बागले अब मौलवियो की तरह फतवा देन लगे है।" किसी न कहा, "अजी, अब उन्हे बहुत घमण्ड हो गया है।" बात सब को ठीक लगती थी, पर कुछ दिन बाद बात ठीक निकली डाक्टर बागल की ही। डाक्टर बागले के प्रति मेरा आदर भाव है। मैंने उनसे पूछा, "आपने डाक्टर हरिशचन्द्र के पुत्र का रोग निदान बिना जाँच-पडताल किये ही किस आधार पर कर लिया था?"

सरल-सहज भाव से वह बोले, "उसम आधार खोजन की बात ही नही थी। हम दोनो बात करते जीन पर चढे। पलग के पास खडे बातें करत रहे, पर बीमार ने हममे कोई दिलचस्पी नही ली—यहाँ तक कि एक बार गरदन मोडकर देखा तक नही। दिलचस्पी की इतनी कमी तपेदिक मे ही हो सकती है। यदि तपेदिक फेफडे म होती तो पहले ही दिन पता चल जाता। एसा नही हुआ, तो बात साफ है कि हड्डियो की है।"

सुनकर लगा कि मेरे भीतर एक नये विचार की ज्योति जाग उठी है। वह विचार था—दिलचस्पी (चाव) ही जीवन है और दिलचस्पी का अभाव ही मृत्यु है। काकोरी-काड के शहीद रोशनलाल ने फाँसी पर चढने से पहल गाया था

जिन्दगी जिन्दादिली को जान ऐ रोशन।
मुरदादिल खाक जिया करते हैं॥

जसे मनुष्य जीता है, मरता है और बीमार भी पडता है उसी तरह मनुष्य की दिलचस्पी बीमार भी होती है। बीमार दिलचस्पी मनुष्य के व्यक्तित्व को भी बीमार कर देती है, पर यह बीमारी ऐसी है कि बीमार अपने को बीमार नही मानता। इसका मुझे बहुत बार अनुभव हुआ है।

मेरी तबियत खराब है। सिर के पुराने रोग न खतरनाक झटका दिया है। अपने नियम के अनुसार मैंने प्रयत्न किया है कि इस की खबर कमरे से बाहर न जाये, पर किसी तरह पता लग गया है और एक मित्र मेरी खबर लेने आये हैं। कमरे मे आते ही वह चारो तरफ करीने से रैंको मे लगी पुस्तको को देखते हैं। तब कहते हैं, 'वाह, आपके पास तो बहुत उम्दा पुस्तकालय है।" मैं क्या कहूँ इस पर। चुप रहता हूँ पर वह चुप नही रहते।

प्रश्न उभरता है, "ये सब पुस्तकें आपको वस ही मिल गयी हैं या आपने खरीदी हैं ? '

उत्तर देना पडता है, "दोनो ही तरह की हैं।" अब वह अपनी कुरसी के पास वाल रैंक की पुस्तका पर इधर से उधर अपनी निगाह फेरते हैं। फिर काई पुस्तक निकालकर उसे पढने लगते हैं और जब पढना समाप्त होता है तो उठ खडे होते हैं। कहते है, "भाई साहब, अपन भडार मे आपने तो हीर मोती रख रखे हैं। फिर किसी दिन फुरसत मे आऊगा।" और वह चले जाते हैं पुस्तक को मेज़-चौकी पर छोडकर। उनके जाने पर मैं सोचता हूँ—बीमार दिलचस्पी के शिकार हैं बेचारे यानी कि बीमार हैं, पर मानते नही कि बीमार हैं। उन्हें यह भी मालूम नही कि वह यहा किसलिए आये थे।

1953 की बात है। प्रधानमत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू लोक प्रियता की पूरी ऊँचाई पर थे। देश भर म काग्रेसी मत्रिमडल शासन कर रहे थे। कानपुर के स्टेशन पर बहुत-से मुसाफिर गाडी की प्रतीक्षा कर रह थे। गाडी लेट थी। एक कडकडाती आवाज़ सबके कानो मे गूज गयी, "पण्डित नेहरू स दोस्ती करने का यन हम से खरीदा। सकडा आदमी आवाज़ लगाने वाले के चारो तरफ घिर गये। तब उसने पूरे आत्मविश्वास से कहा, 'इस यत्र से नेहरूजी दोस्त बनेंगे राज्या के मुख्यमत्री आपको अपना साथी समझेंगे जिला के कलक्टर आपका सलाम करेंगे और पुलिस कप्तान आपके पीछे फिरेंगे। इस भारतीय आविष्कार की कीमत सिफ दस आने है।

उस यत्र को लेने इतने आदमी आग बढे कि बात-की-बात मे साठ रुपय जमा हो गय। शान्ति क साथ रुपय उसने जेब म डाले, अपना डब्बा खोला और एक एक टोपी फुरती से सबके हाथ म थमा दी। लेनेवाले मुसकराये, न लेनेवाले हँसत हसते लोट पोट हो गये। क्या इसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता है कि ये सब बीमार दिलचस्पी के शिकार थे—पूरी तरह से बीमार, पर अपन को स्वस्थ मानवाल बीमार। कोई पूछे इन भलेमानसो से कि कहीं यत्रा स भी किसी का कोई दोस्त बना है ! फिर प्रधानमत्री, मुख्य मत्री और कलक्टर-कप्तान दस आने म हाथ चढ़ने लगें, तो कौन है जो इस

युग मे चूकेगा और नही चूकेगा तो देश की क्या दशा होगी ?

एक बार गाधीजी बठे कुछ लिख रहे थे और काका कालेलकर उनके पास बठे कुछ पढ रहे थे। गाधीजी ने पूछा, 'क्या पढ रहे हो ?" काका जी ने बताया कि यह उमर खय्याम की रुबाइयो का फिटजजेराल्ड कृत अग्रेजी अनुवाद है।

इस पर गाधीजी की प्रतिक्रिया काकाजी के शब्दा म यह थी "मुझे भी अग्रेजी कविता का बडा शौक था, लेकिन मैंने सोचा कि मुझे अग्रेजी कविता पढने का क्या अधिकार है। सस्कृत का मुझे जितना ज्ञान होना चाहिए उतना कहाँ है ? अगर मेरे पास फालतू समय है, तो मैं अपनी गुजराती लिखने की योग्यता क्या न बढाऊँ ? मुझे आज देश की सेवा करना है तो अपना सारा समय सेवा शक्ति बढाने मे ही लगाना चाहिए।'

गाधीजी की बात का यह प्रभाव हुआ कि मातभाषा मराठी के विद्वान और अग्रेजी साहित्य के प्रेमी काका कालेलकर गुजराती की साधना मे लग गये। फल यह हुआ कि उनके लिए गुजरात म काम करना सुगम हो गया और आगे चलकर वह गुजराती के लेखका म अग्रणी माने गये।

कहूँ, उनकी दिलचस्पी बीमार थी, स्वस्थ हो गयी। बीमार दिलचस्पी मनुष्य को भटकाती है, किसी एक म एकाग्र नही होने देती और परिणाम होता है कि आदमी कही जुटकर काम नही कर पाता।

इदौर के मफ नतम एडवोकेट श्री सूरजमल गग कानून की शिक्षा पूण करने से पहले हिन्दी के सफल लेखक हो चुके थे। पत्रो म उनके लेख सम्मान के साथ छपते थे और उत्सुकता के साथ पढे जाते थे। एक वयोनानवद्ध कानून विशारद के पास जब वह वकालत का प्रशिक्षण ले रहे थे, तभी की बात है। एक दिन वह बाहर बरामदे मे बैठे कोई पुस्तक पढ रहे थे कि भीतर से उनके प्रशिक्षक निकल आये। तब तो वह कुछ नही बोले, पर दूसरे दिन उन्होंने शान्तभाव से कहा, "सूरजमल, पढने लिखने म तुम्हारी रुचि है तो किसी कालिज मे प्राध्यापक के पद पर तुम्हारी नियुक्ति का प्रयत्न करूँ, पर तुम वकील बनना चाहो, तो एक बात समझ लो कि कानून ईर्ष्यालु पत्नी की तरह है—लॉ इज जेलेस मिस्ट्रेस—जो अपने साथ और किसी को बर्दाश्त नहीं करती।" बस, उसी दिन सूरजमल का लेखन-अध्ययन

छूट गया और उनके कदम कानूनी सफलता के पथ पर बढ चले।

ईश्वरभक्ति के क्षेत्र मे स्तुति से जाप श्रेष्ठ है, पर जाप से भी श्रेष्ठ है ध्यान क्योकि ध्यान मन को बाहर स समेटकर अतर को एकाग्र करता है। बिखरना नाश का पथ है तो सिमटना निर्माण का। ठीक भी है—जो बिखरा है वह ग्रहण क्या करेगा और जो ग्रहण ही नही करेगा, वह बनेगा क्या! मेरी स्मृति बहुत अच्छी है। अपनी ढाई वर्ष की उम्र तक की घटनाएं आधी शताब्दी बीत जाने पर मुझे आजकल की बात-सा याद रही हैं पर बाहर के नगरो की बात क्या अपने नगर के रास्ते ही मुझे याद नही रहते। तो मेरी स्मृति अच्छी है या खराब? विख्यात मनोविज्ञान शास्त्री डाक्टर भीखनलाल आत्रेय से मैंने यह पूछा तो बोले, 'आपकी स्मृति बहुत उत्तम है। रही रास्तो के याद रहने की बात तो चलते समय आपका ध्यान चारो ओर फैले जीवन पर केन्द्रित रहता है। बेचारे रास्तो को आप देखते ही कहाँ हैं जो वे आपको याद रहें। कहते हैं गीध ऊचे आकाश मे उडते हुए बीस मील के क्षेत्र को देख लेता है पर उससे कोई पूछे कि क्यो भाई, तूने आज महल देखा होगा। बता तो वह ऊपर से कैसा लगता है भला! क्या उत्तर देगा गीध इस प्रश्न का? उसका ध्यान तो मरे हुए जानवरो पर केन्द्रित रहता है जो उसके लिए स्वादिष्ट भोजन का काम देते हैं। अर्जुन को वृक्ष कहाँ दीखा था चिडिया भी कहाँ दीखी थी, उसे तो दिखाई दी थी सिर्फ चिडिया की आँख तभी तो वह लक्ष्यवधी माना गया।

ठीक है सब सफलताओ की कुंजी है एकाग्रता और बीमार दिलचस्पी है इस कुंजी को टुकड-टुकडे करनेवाली हथौडी। यह हमे क्या, कहाँ क्या और कितना के विवेक से वचित कर देती है। दूसरे शब्दो मे हम बीमार दिलचस्पी का शिकार होकर सेंस ऑफ प्रपोशन (वितरण बोध) और सेंस आफ प्रायरिटी (प्राथमिकता-बोध) खो बैठते हैं।

मैंने एक बार प्रेमचन्दजी से पूछा 'बाबूजी कहानी लिखने की कला क्या है? अपनी निराली शैली म सहजभाव से वह बोले, 'कहानी लिखने की कला क्या यहां तो तुम्हें पूरे जीवन की कला ही बता दू!'

मैंने कहा, 'बडी कृपा होगी।' इस पर वह बोले 'बस, सब कलाओ की कला यह है कि क्या पकड़ें और क्या छोड दें।'

बीमार दिलचस्पी सब कलाओ की इस महाकला की शत्रु है। वह मनुष्य को फ़ालतू कामो मे ऐसा उलझा देती है कि हम पकडने लायक़ को पकडें या नहीं, पर छोडने लायक को जरूर पकडते रहते हैं और इस तरह जीवन का उपवन जगल बन जाता है।

एक युवक ने एक जीवनशास्त्री से पूछा, 'मैं विवाह करना चाहता हूँ पर कुछ लोग मुझे बहुत डरा रहे हैं। कृपा कर मुझे सफल दाम्पत्य का सूत्र बताइए।" जीवनशास्त्री ने कहा, "सफल दाम्पत्य का सर्वोत्तम सूत्र यह है कि विवाह से पहले अपनी दोनो आखें पूरी तरह खुली रखो पर विवाह के बाद एक बन्द कर लो।"

बहुत अर्थपूर्ण व्याख्या है स्वस्थ और बीमार दिलचस्पी की। मतलब यह है कि पत्नी मे और पति म कुछ बातें ऐसी होगी जो दूसरे के अनुकूल हो और कुछ एसी होगी जो प्रतिकूल हो। तो अनुकूल मे दिलचस्पी लो, प्रतिकूल म दिलचस्पी न लो। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ की पक्तिया हैं, 'मेरे प्रभु, मैं यह प्रार्थना नही करता कि मुझे यह दो, वह दो। मैं तो यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे एसी वृत्ति दो कि मैं उसमे आनन्द ले सकू जो मेरे पास ह।

बस, स्वस्थ दिलचस्पी का अर्थ है—मानसिक सयम और अस्वस्थ दिलचस्पी का अर्थ है मानसिक असयम। हमम स्वस्थ दिलचस्पी हो, हम बीमार दिलचस्पी से बचें।

विश्वास

• • •

अप्रैल 1962 में सरदार शहर राजस्थान के विज्ञान-मन्दिर में पीवना नाम का एक साँप लाया गया।

अति भयकर साँप, जिसके काटने से सैकडो आदमी मर गये।

जी हाँ, सैकडो आदमी पीवना साँप के काटने से मर गये, पर उस बेचारे ने कभी किसी को नही काटा।

क्या मतलब इस बात का ?

इस बात का मतलब खास परन्तु पर उसे समझने से पहले यह समाचार—जब पीवना साँप को बम्बई की हाफकिन इन्सटीट्यूट सर्प अनुसधान-परिषद मे भेजा गया तो जाँच पडताल मे बाद पता चला कि पीवना जाति के साँपो मे जहर होता ही नहीं।

साँप के काटने का तरीका यह है कि वह आदमी की खाल काटकर तालु में लगी विष की थैली से उस काटी हुई जगह में जहर उँडेल देता है। इस तरह जहर खून में मिल जाता है और उसके प्रभाव से आदमी मर जाता है। कहना चाहिए, साँप ससार में इन्जेक्शन पद्धति का पहला आविष्कारक है।

"पीवना ने किसी को काटा नही, और वह काटे भी तो उसके गले मे जहर नहीं फिर भी उसके काटने से सैकडो आदमी कैसे मर गये ?"

हाँ ठीक है पीवना ने किसी को काटा नहीं और उसके गले मे जहर भी नहीं, जलती हुई चिताएँ और खुदी हुई कब्रें गवाह हैं कि पीवना के काटने से सैकडो आदमी मर गये।

आखिर क्या मतलब इस बात का ?

इस बात का मतलब खाक-पत्थर। कुदरत का मज़ाक देखिए कि पीवना साँप की यह आदत कि कोई आदमी सो रहा हो और वहाँ पीवना साँप निकल आये, तो वह उस सोते हुए आदमी की छाती पर कुंडली मारकर बैठ जाता है और उसके नाक पर अपना मुँह रखकर उसके साँस को सूँघने लगता है। उसके स्पर्श से आदमी जागता है तो घबराकर चिल्ला पड़ता है, "अरे बाप रे, खा लिया साँप ने।" भाग दौड़ शुरू होती है, झाड़ फूँक का ताँता लगता है पर आदमी मर जाता है।

काटा एक को नहीं, पर मर गये सैकड़ों, इसका मतलब है न खाक-पत्थर। *यह खाक पत्थर विश्वास का चमत्कार है—"अजी, पीवना का काटा कौन बचा है ?"*

क्या विश्वास की शक्ति इतनी प्रबल है कि बिना विष के ही आदमी मर जाये ? हाँ, विश्वास की शक्ति इतनी प्रबल है कि आदमी बिना विष के मर जाये और यही नहीं, यह भी कि विष से न मरे।

श्रीमती चन्द्रवती ऋषभसैन जैन की एक सच्ची कहानी है—लुधियाना में लाला भोलाराम एक साधारण श्रेणी के वकील थे। उनके छोटे-से मकान के चौके में चूल्हे की आड़ देनेवाली छोटी सी दीवार थी। उसमें एक गुल्लक-नुमा आला था, जिसमें वह कुछ पैसे रखा करते थे। उस आले में एक छेद था, जो शायद किसी चूहे का घर था।

एक दिन दही मगाने के लिए पैसे उठाने को उन्होंने आले में हाथ डाला तो उनकी उँगली में कच्च से दो दाँत घुस गये और खून निकल आया। उन्होंने समझा कि चूहे ने काटा है। गुस्से में लोहे की एक गोल मूठ-सी उन्होंने उस छेद में ठोक दी—'कमबख्त अब घुटकर मर और अपने किये की सजा भोग।" खाना खाकर वह कचहरी चले गये। शाम को कचहरी से लौटे तो वह बहुत देर तक उस छेद के पास कान लगाए खड़े रहे और जब कोई आवाज़ सुनाई न दी, तो गर्व से बोले, "क्या बेटा सो गया, आजा, और काटना है मेरी उँगली में ?"

इस घटना के तीन वर्ष बाद लाला भोलानाथ की वकालत चमक उठी थी और उनका मामूली मकान शानदार हवेली बन गया था। उस दिन वह

आराम कुर्सी पर चौक में बैठे, मिस्त्री को कुछ हिदायतें दे रहे थे। मिस्त्री ने उस छोटी सी दीवार को ढाना आरम्भ किया तो अचानक वह रुक गया। उस ठूंठी मूठ के नीचे एक डेढ़ गज लम्बे साँप की ठठरी जमी थी। "ओह, बेचारा घुटकर मर गया।" उसके मुंह से निकला।

भोलानाथ को पुरानी घटना याद हो आई—"वह चूहा होगा कम्बख्त।" पर वह तो साँप था। भोलानाथ ने कुर्सी से उठकर देखा—ओह, वह तो साप ही था। उनके मन में आया—तो मुझे उस दिन साँप ने काटा था और मैं चूहा समझता रहा। उन्हें लगा कि विष उनके शरीर में फैल रहा है। वह अपनी कुर्सी पर धम्म से बैठ गये और फिर कभी नहीं उठे, उसी क्षण उनकी मृत्यु हो गयी।

तो पीवना साँप के भय से बिना काटे, बिना विष के ही सकडों मर गये और विषधर साँप के काटने पर भी भोलानाथ नहीं मरे और न काटने पर मर गये। यह सब क्या है? यह सब विश्वास का चमत्कार है। भय विश्वास के मयत्र को तोड डालता है उसे अस्त-व्यस्त कर देता है, काम नहीं करने देता। अभय को इसीलिए धर्म का प्राण कहा गया है, क्योंकि धर्म है व्यवस्थापूर्वक कर्म का स्नात और भय इस व्यवस्था का सधान करता है।

मेरे पिताजी काँसी के थाल में एक यत्र लिखकर दिया करते थे। प्रसिद्ध था कि गर्भिणी कुछ देर उस यत्र को देखती रहे तो प्रसव सुगमता से हो जाता है। उस युग में नर्से नहीं थी, लेडी डाक्टरों का कस्बा में नाम भी नहीं सुना था। मेरे पिताजी का यत्र ही सकट में सहारा था उन दिनों। इस यत्र में लाल कलम से रेखाओं का एक गोरखधन्धा होता था कि कैसे कोई केन्द्र में पहुँचे? पर प्रश्न तो यह है कि यत्र क्या सहायता करता था? किस प्रकार सहायता करता था?

जब मैं बडा हुआ और विभिन्न प्रश्नों पर सोच विचार करने लगा, तो एक दिन पिताजी से पूछा यह प्रश्न। बोले बेटा, न यह यत्र है, न मत्र, यह तो तन्त्र है। तन्त्र माने तरकीब—युक्ति। तो युक्ति यह है कि प्रसव की पीड़ा से परेशान गर्भिणी के सामने यत्र लिखा थाल रखा जाता है, तो वह उसकी रेखाओं को देखने लगती है। उसका मन रेखाओं के द्वारा केन्द्र में पहुँचने का मार्ग खोजने लगता है। इससे उसका ध्यान बँट जाता है और

ध्यान बँटने से शरीर का खिचाव ढीला पड जाता है। यह ढील निश्चित रूप से प्रसव मे सहायक होती है, ध्यान बँटने से पीडा का भाव भी कम हो जाता है, और वह कठिन समय सुविधा से बीत जाता है। फिर यत्र के प्रति, मत्र-तत्र के प्रति नारियो मे गहरी अन्धश्रद्धा है। इस अन्धश्रद्धा से और कुछ लाभ हो न हो, यह विश्वास को दढ जरूर करती है, और बेटा जीवन मे असली तत्त्व तो विश्वास ही है।

पिताजी की बात ध्यान मे आयी, तो स्मृति के आगन म आ खडे हुए महान चिकित्सक श्री काल युग। अपने चिकित्सा के अनुभवो मे उन्होने कहा, "मेरे जीवन के उत्तराध म मेरे पास जितने भी रोगी आये, उनमे शायद ही कोई ऐसा हो, जिसकी चिकित्सा के लिए मुझे उसमे धार्मिक दष्टिकोण के विकास की आवश्यकता न पडी हो। मैं पूरी जिम्मदारी के साथ कह सकता हूँ कि मेरे उन रोगियो मे से हर एक ही इसलिए मानसिक रोगा स ग्रस्त हुआ था कि उसे वह मानसिक खराक नही मिली थी, जो धार्मिक दृष्टिकोण वाले व्यक्तियो को अपने-आप मिल जाती है।" उल्लखनीय बात यह है कि उन बीमारो मे वही स्वस्थ हुए जो अपना दष्टिकोण धार्मिक बना सके और वे अच्छे नही हुए, जिनकी धम के प्रति आस्था नही थी।

सोचता हूँ चिकित्सक चूडामणि काल युग के पास एक तत्त्व है और पिताजी के पास उसकी व्याख्या थी, पर इस तत्त्व और व्याख्या को एक सूत्र मे समोकर रख गया है महान् योद्धा नपोलियन कि "सारी विद्वत्तापूण चुना चुनी—तक वितक एक विश्वास शब्द के सामने खण्डहर हो जाते हैं।'

यह विश्वास ही तो था, जिसने गाधीजी से कहलवाया था कि "यदि राम नाम का मत्र मेरे हृदय म गहरा उतर जायेगा तो मैं कभी बीमार होकर नही मरूँगा।" उन्होने बार-बार कहा कि जिस राम नाम म पूण श्रद्धा है वह कभी बीमार पड ही नही सकता। क्या, वह यह सब झूठ कहते थे? हमे बहकाते थे? नही उनका यही विश्वास था और जो जिसका विश्वास होता है, वही वह स्वय हो जाता है।

तभी तो सैकडो आदमी पीवना साँप के काटने से मर गय, पर उस बेचारे न कभी किसी को नही काटा और साँप के काटने पर भोलानाथ को घुड घुडी भी नहीं आयी, पर उस काटने के स्मरण मात्र से साँप सूँघ गया।

बचपन में एक आर्यसमाजी भजनोपदेशक का भजन सुना था—"रेल रोज पच्छिम को जावै पच्छिम में दिशाशूल बतावै, पोपो ने मचाया अंधेर।' इस भजन में सनातन धर्म के मुहूर्त और शकुनों का करारा मजाक उड़ाया गया था। मेरे पिताजी कर्मकाण्डी पण्डित थे और लोग उनसे मुहूर्त-शकुन पूछने आया करते थे।

मैंने जोश में कहा, 'पिताजी, यह सब तो पोपलीला है।' हसकर बोले, 'बेटा, ये सब भटकते मन के सहारे हैं। इनसे आदमी की हिम्मत बधती है आगे बढ़ने की। मेरे पास जो लोग मुहूर्त शकुन की बात करने आते हैं वे अक्सर वे लोग होते हैं जो किसी परेशानी में फँसे हो।"

बात कुछ समझ में आयी भी, कुछ नहीं, पर बहुत वर्षों के बाद एक विद्वान् ने बताया कि हमारे शास्त्रों के अनुसार उत्तम मुहूर्त शकुन यह है कि मन में काम आरम्भ करते समय पूरा उत्साह हो। इसके साथ पिताजी की बात मिलाकर मैंने सोचा था कि साधारण मनुष्य काम आरम्भ करते समय सन्देह उठाता है कि काम होगा या नहीं। सन्देह विश्वास का शत्रु है क्योंकि सन्देह-दुविधा के कारण मनुष्य किसी काम में एकाग्र नहीं हो पाता और जो एकाग्र नहीं है दुविधा-सशय में है सफलता उसके द्वार नहीं आती। मुहूर्त और शकुन आदमी को एकाग्रता दे देते हैं—हमने शुभ मुहूर्त में काम आरम्भ किया है और शकुन भी शुभ हुए है, इसलिए इस काम में सिद्धि सफलता अवश्य मिलेगी।

गीता का वचन है—सशयात्मा विनश्यति—सशयवाला मनुष्य नष्ट हो जाता है, उसे कभी सफलता नहीं मिलती, उसके द्वारा कभी कोई महान् निर्माण नहीं होता। सफलता की कुजी है—विश्वास।

भगवान ईसा ने रोगी के सिर पर हाथ फेरा और बस रोगी चगा हो गया। यह पुस्तकों में लिखा है और करोड़ो आदमी इसमें आँखो देखी बात की तरह विश्वास करते हैं। हम तुर्क का सहारा ले, इसे गप्प कह सकते हैं। और खण्डन-मडन का मोर्चा जमा सकते हैं पर गहराई में उतरें तो यह जीवन का एक सरल सत्य है और व्यवहार की भाषा में इसे यो कह सकते हैं कि ईसा की विशिष्टता यह नहीं कि उसके स्पर्श से रोगी अच्छे हो जाते थे, उसकी विशेषता यह है कि लोगों में उसके प्रति यह विश्वास था कि

उसके स्पर्श से रोग दूर हो जाते हैं।

जहाज में सवार एक अंग्रेज अपनी पत्नी के साथ समुद्रयात्रा कर रहा था। दोनों का थोड़े दिन पहले विवाह हुआ था। वे आनन्दमग्न थे कि तभी समुद्र में भयकर तूफान आ गया। सब घबरा गये—अब डूबा जहाज, अब डूबा, मरे, पर वह अंग्रेज शांत बैठा रहा।

व्याकुल होकर उसकी पत्नी ने कहा, "आप तो ऐसे बैठे हैं, जैसे कोई बात ही नहीं हो, मेरे प्राण सूख जा रहे हैं।"

उस अंग्रेज के पास एक तलवार थी। उसे म्यान से बाहर निकालकर उसने पत्नी के सिर पर रख दी और हँसते हुए पूछा, ' क्या तुम इस तलवार से डर रही हो।"

पत्नी ने आश्चर्य से पति की ओर देखा और कहा "नहीं।"

पति ने पूछा, "जब तलवार सिर पर है, तो तुम डरती क्यों नहीं, तलवार तो यह भयानक ही है।"

पत्नी ने कहा, "तलवार तो भयानक है, पर है तो आपके हाथ में।"

पति ने कहा, "जैसे तलवार मेरे हाथ में है और इससे तुम्हें कोई खतरा नहीं, वैसे ही तूफान भगवान के हाथों में है और उसमें मुझे कोई खतरा नहीं, क्योंकि जैसे तुम्हें मेरे प्यार में विश्वास है वैसे ही मुझे भगवान् के प्यार में विश्वास है। इस विश्वास के कारण ही मैं इस भयानक तूफान में भी निश्चिन्त बैठा हूँ।"

जीवनशास्त्री स्वेट मार्डेन का कहना है "जीवन में कोई भी तब तक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक उसमें आत्मविश्वास का बल न हो।" एक पशु पालक खूंखार और जंगली पशु के कटघरे में प्रवेश करता है। उसके मन में यदि भय और सन्देह है तो वह पशु को वश में कैसे कर सकता है? यदि कोई आदमी जंगली पशुओं को पकड़ने के लिए जाय पर उसे अपने ऊपर पूर्ण विश्वास न हो, तो वह अपने काम में सफल हो ही नहीं सकता।

ऐसे लोग हैं जो अफ्रीका के जंगलों से बड़े-बड़े भयानक शेरों को पकड़ लाते हैं। उनकी सफलता का रहस्य है उनका अपने प्रति विश्वास। विश्वास टूटा तो मौत आयी। भयग्रस्त और निर्बल विचारों का आत्मी संघर्ष में

टिक ही नही सकता। मन मे सशय आया कि हड्डी-पसली साफ। पशु की आँख से आँख मिलाते समय अविचलित विश्वास ही विजय देता है। भय सशय से आँख झपझपाई कि जानवर हावी हुआ। मनुष्य को अपने मन मे यह विश्वास जाग्रत करना चाहिए कि जिस सफलता के लिए वह प्रयत्न कर रहा है वह उसे प्राप्त हो रही है, और अवश्य प्राप्त होगी।

अनुभव की सूक्ति है, विश्वास फलदायकम—फल का देनेवाला विश्वास ही है। यह विश्वास कस फल देता है ? यह प्रश्न उचित है, पर उसका एक और एक दो की गणित भाषा मे उत्तर देना सम्भव नही है। जन्माध महिला विचारक हेलन कलर ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य अपन मानसिक विकास के अनुरूप शब्दा का विकास नही कर पाया है, इसलिए वह अपनी मानसिक अनुभूतिया का शब्दो मे कह सकने की क्षमता स वचित है। फिर विश्वास कैस फल देता है यह एक भौतिक नही, आध्यात्मिक सत्य है। आध्यात्मिक सत्या के प्रकटीकरण का तन्त्र अनुभूति है ज्ञान नही और शब्दो की सीमा है ज्ञान। इसलिए आध्यात्मिक आनन्द को सतो ने गूगे का गुड कहा है जो खाए सो जाने, जो जाने सो मान।

रूस के नेता बुल्गानिन और ख्रुश्चेव भारत आय तो उस समय बुल्गानिन रूस के प्रधानमत्री थे और ख्रुश्चव रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रधानमत्री। व दोना दिल्ली के पास का एक उन्नतिशील गाँव भी देखने गये। जब वे गाँव म थे तभी एक बालक का जन्म हुआ और पिता ने उसका नाम बुल्गानिनसिंह रखा। बडा होनहार निकला यह बालक, पर जब यह कुछ और बडा हुआ तो बीमार रहने लगा।

पिता ने एक म एक बढ़िया इलाज कराया, पर बालक बुल्गानिनसिंह का रोग न गया और अन्त म यहाँ तक कि उसके जीवन की आशा ही क्षीण हो चली। उन्ही दिनो एक नेता उस गाँव मे आय और बुल्गानिनसिंह के घर भी निमन्त्रित हुए। पिता ने अपने पुत्र की निराशाजनक बीमारी की बात उनस कही तो तपाक से वे बोले— 'बुल्गानिन को प्रधानमत्री पद से हटा दिया गया है और पता नही बेचारा जेल म है या कहाँ। कही भी हो, अपने बुरे दिन भोग रहा है। मेरा ख्याल है कि तुम्हारे बेटे पर भी उसका असर पड रहा है। अरे भाई, अब तो ख्रुश्चेव का समय है, तुम अपने

बेटे का नाम ख्रुश्चेवसिंह रखो।"

नेताजी तो हसी की बात हँसी मे कहकर चले गये, पर पिता के मन को विश्वास का सम्बल मिल गया। दूसरे ही दिन उसने हवन पूजन कर अपने बटे का नाम ख्रुश्चेवसिंह रखा दिया और सब से कहा—"मेरी बेवकूफी थी कि मैं इसे डाक्टरो के घर लिये फिरा। इसे कोई बीमारी नही थी, यह बेचारा बुल्गानिन के ग्रहो का फल भोग रहा था।" और सचमुच दूसरे ही दिन मे लडका ठीक होने लगा और कुछ दिनो म पूरी तरह ठीक हो गया।

तो जीवन का अनुभव मत्र है—विश्वास कीजिए और फल पाइए।

आलोचना का व्याकरण

• • •

'विकास' साप्ताहिक एक वर्ष प्रकाशित होने और पाँच महीने बन्द रहने के बाद अब अपने ही प्रेस से निकलनेवाला था। ये पाँच महीने रात दिन परिश्रम म बीत थ — चिन्ता म और चिन्तन म। पाँच महीने बिताकर 'विकास' का नये रूप म पहला अंक बाहर आ रहा था।

विकास क संस्थापक और प्रधान सम्पादक श्री विशम्भर प्रसाद शर्मा प्रेस के लिए नया सामान लेने दिल्ली चले गये थे और यह पूरा अंक मैंने अकेले तैयार किया था। उत्तरदायित्व बडा था और कभी-कभी घबराहट भी होती थी पर उत्साह उससे भी बडा था तो घबराहट उसकी लहरो मे डूब जाती थी।

शाम का चार बजे अंक तैयार हुआ और छह बजे की गाडी स वह लौटे। ओह कितने उत्साह से मैंने विकास उनके हाथ म दिया—वह विकास जिसक हर अक्षर म मेरी आत्मा क मोती जडे हुए थे। उसके पहले रंगीन पृष्ठ पर देश क कुछ प्रमुख पुरुषो के आशीर्वाद थे। उनकी दृष्टि पूज्य टण्डनजी क आशीर्वाद पर पडी और वह भिन्ना उठे 'क्या गजब काम करते हैं आप भी! प्रूफ तक तो आप देख नहीं सकते!'

अंक हाथ म लिये वह भीतर चले गये पर मेरी हालत उस नेवले जैसी हो गयी जिसने साँप से ब्राह्मणी क बेटे की रक्षा की थी। वह ब्राह्मणी के बाहर से लौटने पर अपना खून स भरा मुंह दिखाने के लिए दरवाजे पर दौड आया था पर ब्राह्मणी ने यह समझकर कि इस दुष्ट ने मेरे बच्चे को खा लिया है पानी स भरा घडा उसके ऊपर डाल दिया था।

सम्भलकर—अपने को सम्भालकर—मैंने 'विकास' का मुखपृष्ठ देखा। टण्डन की जगह टण्डल छपा था। मैं अपने कमरे मे जा पडा। मेरी हालत उस समय ऐसी थी कि जैसे मैं किसी ऊँचे पेड से नीचे गिर पडा हूँ। कोई घण्टे-भर बाद श्रीमती शान्तिदेवी शर्मा मेरे कमरे मे आयी, "आपको बाबूजी बुला रहे हैं।"

मन नही था, फिर भी गया। बाबूजी एकदम उत्फुल्ल। 'विकास' का खुला अक उनके सामने—'शान्तिदेवी, प्रभाकरजी के लिए मिठाई और नमकीन लाओ।' और तुरत मुझसे—'कमाल का अक निकाला है आपने। बहुत सुन्दर, बहुत स्वस्थ।" मिठाई नमकीन आ गयी। मैं खाता रहा, वह प्रशसा मुझ पर बरसाते रहे और कोई घण्टे भर की बातचीत म उस भूल का उन्होने उल्लेख तक नही किया। शिकायत तो उनका स्वभाव ही नही है। सहिष्णुता और शान्ति उनके स्वभाव के सहज अग हैं। फिर मेरे प्रति तो वह सदैव ममतालु अग्रज रहे हैं। मुझे खिलाकर उन्होने खाया है मुझे सुलाकर वह सोये हैं। जाने किस मूड म बाहर मे लौटे थे कि ग़लत शब्द देखकर वे शन्द कह गये।

अब वह खुश थे और मैं भी खुश था, पर मैंने इस घटना से जीवन का एक महत्वपूर्ण पाठ पढ लिया था— आलोचना करो, कमिया कमजोरियो पर जरूरत हो तो कडी बात भी कहो, पर बातचीत आलोचना स आरम्भ मत करो।"

० ०

यह बाणो की शय्या पर लेटे हुए हैं भीष्म पितामह और उनके सामने बैठे हैं पाण्डव बन्धु। युधिष्ठिर ने भीष्म से कहा, "महाराज, आपके हार्दिक आशीर्वाद से हमे विजय प्राप्त हुई है और हम राज्य के स्वामी हुए हैं, पर राजा वही सफल हो सकता है जो सबको प्रसन्न रख सके। इसलिए आप हमे सबको प्रसन्न रखने की कला का उपदेश करें।"

उम्र और अनुभव म वृद्ध भीष्म ने किसको किस तरह प्रसन्न रखा जाय, इस सम्बन्ध मे जो उपदेश दिया, उसकी एक पक्ति है— मूर्खं छन्दानुरोधेन।" मूर्ख को छन्दानुरोध स प्रसन्न करे। छन्दानुरोध का मोटा अर्थ है—हाँ मे हाँ मिलाकर, याने मूर्ख जो कुछ कहे, पहले उस पर हाँ

कहो। इससे वह सन्तुष्ट हो जायगा और बस सन्तोष की इसी स्थिति मे उसे उसकी भूल बताओ—अपनी बात उससे कहो।

यह जीवन का एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तथ्य है और इसका भी फलितार्थ यही है कि बातचीत आलोचना से आरम्भ मत करो। बात यह है कि हम आलोचना उसकी करते हैं जिसे अपनी दष्टि से ग़लत समझते हैं, और गलती करने का ही दूसरा नाम मूखता है। तो जब कोई मूखता का काम करता है तो भले ही वह बुद्धिमान हो, हमारी दृष्टि मे उस क्षण मूख होता है गलत होता है—ठीक नही होता। उस समय हमारा कतव्य है कि हम उस ग़लती से, मूखता से सावधान करें ताकि वह भविष्य मे उससे बचे। यदि सावधान करने की यह क्रिया आलोचना से आरम्भ होती है, तो भूल करनेवाला एक उससे भी बडी भूल म फँस जाता है। वह भूल है प्रतिक्रिया की कि अब वह अपनी भूल के बारे म सोचने लायक ही नही रहता —उसे सुधारने की बात तो दूर। तो काम की वही बात कि हम अपनी बात आलोचना स आरम्भ न करें, याने इस तरह आरम्भ करें कि सुनने वाले का मन सुनने-मानने लायक बन जाए, तब हमारी आलोचना उसके कानो प पडे।

• •

एक मित्र के घर सुबह ही सुबह पहुँचा, तो दुकान-सी सजी हुई थी। वह रात ही बम्बई से आये थे और किसके लिए क्या लाये हैं, यह दिखा रहे थे। मित्र की जेब गरम थी और हाथ नरम तो सभी के लिए कुछ न कुछ लाये थे—यहाँ तक कि नौकरो क लिए भी। सामान की प्रदशनी समाप्त हुई तो वह अपनी पत्नी से बोले, 'तुम अग्रवाल स्टोस से अपनी मन-पसन्द चीजें ले आना।'

मुझे बडा अजीब-सा लगा और मैंने पूछा, "क्यो, भाभीजी के लिए बम्बई स कुछ क्यो नही लाय ?"

उनस पहले ही भाभीजी बोली, 'भइया, मेरे लिए जब ये उपहार खरीदने गये, तो बम्बई म हडताल हो गयी।' यह मीठा हास नही, कडवा उपहास था, यह मैंने जाना पर इसकी जड कहाँ है ?

तभी भाभीजी दूसरे कमरे मे चली गयी तो मित्र बोले, 'तीन बार,

इनके लिए बाहर से उपहार लाया, पर तीनों ही बार इन्होंने मीन मेख निकाली—साडी का रग ठीक नही है बुन्दे तो मेरे पास थे ही लाना ही था, तो अँगूठी लाते, भला ऐसे चप्पल अब कौन पहनता है, आपको कुछ खरीदना ही नही आता पता नही आपकी रुचि कमी है और जाने क्या-क्या ! बस तब से मैंने यह नियम बना लिया है कि इनके लिए कुछ नही लाता और कह देता हूँ कि जो तुम्हें पसन्द हो, खरीद लाओ।

मैं चला आया, पर कई दिना तक मेरा मन मित्र की ही बात सोचता रहा कि कितने चाव से बाज़ारों बाज़ार भटककर यह भाभीजी के लिए उपहार लाये होंगे, पर भाभीजी ने उनकी आलोचना कर उपहार लाने की उनकी इच्छा को ही कुण्ठित कर दिया और इस तरह अपने उनके बीच एक ऐसी दीवार खीच दी, जो दिखाई भी न दे, पर ऊँची इतनी कि लाघना असम्भव।

मित्र की बात सोचते-सोचते मेरे मन म एक प्रश्न उठा कि हमे कोई कुछ उपहार दे और वह हमारे काम का न हो या हम पसन्द न हो, तो क्या यह ढोग नही है कि हम फिर भी उसकी प्रशसा करें।

इस प्रश्न ने मुझे दुविधा मे डाल दिया और बहुत दिना बाद इसे दूर करने का श्रेय मेरे एक दूसरे मित्र की पत्नी न लिया। यह मित्र एक उच्च सरकारी पद पर काम करते हैं। उस दिन उनसे मिलने गया, तो चाय पीते पीते बोले, "भाई साहब आप तो लेखक थे ही पर यह सुषमाजी भी कवि हो गयी हैं।"

सहज भाव मे मैंने उनकी पत्नी से कहा, 'वाह यह तो शुभ समाचार है कि आप कवि हो गयी, पर बधाई मैं तब दूगा जब आप अपनी नयी कविता सुनाएँ।"

वह शरमाती-सी बोलीं "भाई साहब आप भी इनकी बातो में आ गये ! आप जानते नही, आदमी को बनाने म इन्हे लुत्फ आता है !"

यह बोले, "लीजिए, पूरा किस्सा आपको सुनाता हूँ। फिर आप ही फैसला करें। चार-पाँच दिन हुए इनका जन्मदिन था। मैं सेक्रेट्रिएट से शाम को लौटा, तो इनके लिए एक हरी साडी लेता आया। हरा रग इन्हें पसन्द नहीं है, पर साडी का पल्ला इतना शानदार था कि मैं नापसन्द न कर सका। साडी इन्हें दी, तो इन्होंने उसके पल्ले की वह तारीफ़ें उडाइ कि

इनके लिए बाहर से उपहार लाया, पर तीनो ही बार इन्होंने मीन मेख निकाली—साडी का रग ठीक नही है, बुन्दे तो मेरे पास थे ही, लाना ही था, तो अँगूठी लाते भला ऐसे चप्पल अब कौन पहनता है आपको कुछ खरीदना ही नही आता, पता नही आपकी रुचि कैसी है और जाने क्या-क्या ! बस तब से मैंने यह नियम बना लिया है कि इनके लिए कुछ नही लाता और कह देता हूँ कि जो तुम्हें पसन्द हो खरीद लाओ।'

मैं चला आया पर कई दिनो तक मेरा मन मित्र की ही बात सोचता रहा कि कितने चाव से बाजारो बाजार भटककर यह भाभीजी के लिए उपहार लाये होंगे, पर भाभीजी ने उनकी आलोचना कर उपहार लाने की उनकी इच्छा को ही कुण्ठित कर दिया और इस तरह अपने उनके बीच एक ऐसी दीवार खींच दी जो दिखाई भले न दे, पर ऊँची इतनी कि लाघना असम्भव।

मित्र की बात सोचते सोचते मेरे मन म एक प्रश्न उठा कि हमे कोई कुछ उपहार दे और वह हमारे काम का न हो या हम पसन्द न हो तो क्या यह ढोग नही है कि हम फिर भी उसकी प्रशसा करें।

इस प्रश्न ने मुझे दुविधा म डाल दिया और बहुत दिनो बाद इसे दूर करने का श्रेय मेरे एक दूसरे मित्र की पत्नी न लिया। यह मित्र एक उच्च सरकारी पद पर काम करते हैं। उस दिन उनसे मिलने गया तो चाय पीते पीते बोले, "भाई साहब आप तो लेखक थे ही, पर यह सुषमाजी भी कवि हो गयी हैं।"

सहज भाव मे मैंने उनकी पत्नी से कहा 'वाह, यह तो शुभ समाचार है कि आप कवि हो गयी, पर बधाई मैं तब दूगा जब आप अपनी नयी कविता सुनाएँ।"

वह शरमाती-सी बोली, 'भाई साहब आप भी इनकी बातो मे आ गये ! आप जानते नही, आदमी को बनाने म इन्हे लुत्फ़ आता है !"

वह बोले, 'लीजिए, पूरा किस्सा आपको सुनाता हूँ। फिर आप ही फ़ैसला करें। चार-पाँच दिन हुए इनका जन्मदिन था। मैं सेक्रेट्रिएट से शाम को लौटा, तो इनके लिए एक हरी साडी लेता आया। हरा रग इन्हें पसन्द नहीं है, पर साडी का पल्ला इतना शानदार था कि मैं नापसन्द न कर सका। साडी इन्हें दी, तो इन्होंने उसके पल्ले की वह तारीफ़ें उडाई कि

क्या कहिये, पर बाद म बोली, राजा, मैं चाहती हूँ तुम्हारा आज का उपहार हमारे लान जैसा नही, नीले आसमान जसा हो। मैं उल्टे पाव गया और नीले रग की सा‍री ले आया। अब आप ही बताइए कि क्या इनकी बात कविता नही ह ?'

मैंने कहा, "सुषमाजी की बात नातिया कविता है और वह कविता न होती, ता उसका ऐसा असर ही कसे होता कि आप दिन भर की थकान भूल-कर दौडे जाते।'

हँसी की बात थी हम सब हस पडे, पर अब उम प्रश्न का उत्तर मरे सामने था कि किसी का उपहार हमारे काम का न हो या हम पस‍न्द न हो तो क्या यह ढोंग नहीं है कि हम फिर भी उसकी प्रशसा करें ?

उत्तर यह था कि वह उपहार हमे भले ही पसन्द न हो पर यह तो निश्चित है कि उसम कुछ खूबियाँ हैं और उन्ही के कारण वह लाया गया है, तो हम पहले उन खूबियो की, विशेषताओ की प्रशसा करें—उन्हे 'एप्रीशियेट करें तब अपनी नापसन्दगी प्रकट करें और वह भी इस तरह कि उपहार देनेवाले म नीरसता की नही, सरसता की ही भावना उपजे। इस स्थिति मे यदि सम्भव होगा ता वह उपहार बदला जायगा, पर यह सम्भव न हा, तो दूसरा मन-पसन्द उपहार शीघ्र ही मिलना निश्चित हो जायेगा।

यह तो हुई प्रसग की बात पर असली बात यही कि अपनी बातचीत को कभी आलाचना से आरम्भ न करा—बेढगी आलोचना कर पहले मित्र की पत्नी ने अपने पति की दान भावना को कुठित कर दिया, पर प्रशसा से आरम्भ कर और ढग की आलोचना कर दूसरे मित्र की पत्नी ने पति को अपना और गहरा प्रशसक बना लिया।

अब तक जो कुछ कहा उसे गाम्भीर्य रूप देना हा तो कहें—हमारी आलाचना रचनात्मक हो। रचनात्मक आलोचना क्या ? रचनात्मक आलाचना वह है जिसम प्रस्तुत की अर्थात् जो सामने है उसकी अपूर्णता का युक्तियुक्त बुद्धिगत और प्रामाणिक वणन हो और उसके स्थान म जो कुछ हम रचना रचाना चाहते हैं उसकी पूणता का युक्तियुक्त, बुद्धिसगत और व्यावहारिक विवरण हो।

श्री सम्पूर्णानन्द उन दिनों उत्तर प्रदेश के शिक्षामन्त्री थे। वह माध्यमिक उच्च शिक्षालयों के अध्यापकों के वार्षिक अधिवेशन का उदघाटन करने आये तो उन्हें एक अभिनन्दन पत्र दिया गया। इसमें अध्यापकों के साथ शिक्षा विभाग के व्यवहार की सयत भाषा में बड़ी आलोचना थी और उसके स्थान में नये व्यवहार की माँग करते हुए उसकी एक रूप रेखा भी थी।

श्री सम्पूर्णानन्द ने उस आलोचना और माँग के उत्तर में कहा, "मुझे शिक्षा के लिए जो धन मिलता है, मैं उसे आपके द्वारा चुनी पाँच आदमियों की कमेटी के हाथों में सौंपने को तैयार हूँ। वह कमेटी जिस तरह चाहे उस धन से पूरे विभाग का बजट बना दे। मैं वही बजट विधानसभा में पास करा दूँगा, यह विश्वास दिलाता हूँ। आपके ही द्वारा बनाये बजट में आपकी ये माँगें पूरी हो जायें, तो मुझे बेहद प्रसन्नता होगी।'

किसी ने यह निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया और आलोचना का वह महल अपने-आप ही धड़ाम से गिर पड़ा। स्पष्ट है कि वह आलोचना युक्ति-युक्त, बुद्धिसंगत और व्यावहारिक न थी।

श्री सम्पूर्णानन्द का ही एक और मार्मिक संस्मरण है। उन दिनों वह उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री थे। सब विरोधी दलों ने मिलकर उनके शासन के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया और विधानसभा में भी तूफानी आलोचना की।

उत्तर में श्री सम्पूर्णानन्द ने कहा, "हमें जो सूझा हम कर रहे हैं, आपके पास इससे अच्छी कोई योजना हो, तो हम विचार करने को तैयार हैं।"

प्रस्तुत के विरुद्ध सब थे, पर उसके सामने उससे श्रेष्ठ प्रस्तुत करने की शक्ति किसी में न थी। वही बात कि यह आलोचना रचनात्मक न थी। तब हम अपनी बात आलोचना से आरम्भ न करें, इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि हम रचनात्मक आलोचना करें, जैसी कि उच्च पदाधिकारी मित्र की पत्नी ने की—शैली मधुर, सुझाव व्यावहारिक।

शैली की मधुरता खोकर आलोचना विध्वंसात्मक हो जाती है। नैनीताल कॉलेज के एक छात्र ने एक फाउण्टेनपेन के लिए आत्महत्या कर

ली। वह पेन एक रुपया चार आने का था। बात यह थी कि उसका पेन कही खो गया तो वह अपने पिता का पेन कालेज ले गया। समय की बात, वह भी खो गया। घर आया तो आलोचना उस पर बरस पडी। पहले तो पिता ने उस लम्बे हाथा लिया और कहनी-अनकहनी सब कही। बाद मे माँ ने उसे लताडा। यह भी काफी न समझा गया तो भाई भावज बरसे। उसे निकम्मा दूसरो की कमाई पर गुलछर्रे उडानेवाला और न जाने क्या क्या कहा गया।

वह बिना खाना खाय ही सो गया, पर दूसरे दिन सुबह जब वह कॉलेज जाने के लिए खाना खाने बैठा तो फिर सब उससे लिपट गये और उसके व्यक्तित्व की ऐसी कडवी आलोचना की कि कॉलेज न जाकर उसने मकान के पिछले हिस्से म घुसकर आत्महत्या कर ली। इस तरह एक मामूली पेन के लिए एव होनहार जीवन का अन्त हो गया।

आलोचना के सम्बन्ध मे यह घटना बहुत मार्ग-दर्शक है। पहली भूल तो हुई कि बात का आरम्भ आलोचना से हुआ। यदि भोजन के बाद इतनी ही कडवी आलोचना होती तो वह सह जाता, पर घर म पर रखते ही उसे झकझोर दिया गया। रात म भोजन न करने से स्पष्ट है कि यह झकझोर गहरी थी, पर मूर्ख घरवालो न उस दूसरे दिन ठीक भोजन के समय फिर आलोचना के तीरो से बीधा।

दोनो बार उसकी आलोचना म एक के बाद एक घर के सब लोग शामिल हो गये और वह अकेला रह गया। यह सब मामूली पेन के लिए था। इस विचार ने कि घर म मेरा इतना भी मूल्य नही, उसे अपनी आँखो मे बेमोल कर दिया। अकेला और बमोल, मरने के सिवाय उसकी गति कहाँ थी!

आलोचना का जीवन मे स्थान है और रहेगा। क्रोध म कोई योजना नहीं होती इसलिए आलोचना कभी कडवी न हो, यह भी असम्भव है। फिर क्रोध न हो तो उसका भाई व्यग है, जो आलोचना को तीखी-पनी बना देता है। इस स्थिति म प्रश्न यह है कि आलोचना का सबसे सन्तुलित रूप क्या है?

भोजन म तीखी चीजें भी होती हैं और मीठी चीजें भी। तो पहले क्या खाएँ और अन्त म क्या? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है और इसका

सर्वोत्तम उत्तर यह है "मधुरेण समारम्भ्य मधुरेण समापयेत्"—मधुर ? आरम्भ और मधुर पर समाप्ति। बातचीत का भी आरम्भ सन्तुलित हो, आलोचना मध्य मे हो और अन्त ऐसा हो कि आलोचना के पनेपन को शमित कर हृदय को ग्रहणशील बना दे।

—बातचीत आलोचना से आरम्भ मत करो।

—सबके साथ मिलकर आलोचना मत करो।

—निरन्तर आलोचना मत करो।

—आलोचना से पहले और बाद मे सतुलित रहो।

—रचनात्मक आलोचना करो, जिसकी शली मधर और सुझाव व्यावहारिक हो।

ली। वह पेन एक रुपया चार आने का था। बात यह थी कि उसका पेन कहीं खो गया तो वह अपने पिता का पेन कॉलिज ले गया। समय की बात, वह भी खो गया। घर आया तो आलोचना उस पर बरस पड़ी। पहले तो पिता ने उसे लम्बे हाथों लिया और कहनी-अनकहनी सब कही। बाद में माँ ने उसे लताड़ा। यह भी काफी न समझा गया तो भाई भावज बरसे। उसे निकम्मा दूसरों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ानेवाला और न जाने क्या-क्या कहा गया।

वह बिना खाना खाये ही सो गया, पर दूसरे दिन सुबह जब वह कालेज जाने के लिए खाना खाने बैठा तो फिर सब उससे लिपट गये और उसके व्यक्तित्व की ऐसी कड़वी आलोचना की कि कालेज न जाकर उसने मकान के पिछले हिस्से में घुसकर आत्महत्या कर ली। इस तरह एक मामूली पेन के लिए एक होनहार जीवन का अन्त हो गया।

आलोचना के सम्बन्ध में यह घटना बहुत मार्ग दर्शक है। पहली भूल तो हुई कि बात का आरम्भ आलोचना से हुआ। यदि भोजन के बाद इतनी ही कड़वी आलोचना होती तो वह सह जाता पर घर में पर रखते ही उसे झकझोर दिया गया। रात में भोजन न करने से स्पष्ट है कि यह झकझोर गहरी थी पर मूर्ख घरवालों ने उसे दूसरे दिन ठीक भोजन के समय फिर आलोचना के तीरों से बींधा।

दोनों बार उसकी आलोचना में एक के बाद एक घर के सब लोग शामिल हो गये और वह अकेला रह गया। यह सब मामूली पेन के लिए था। इस विचार ने कि घर में मेरा इतना भी मूल्य नहीं उसे अपनी आँखों में बेमोल कर दिया। अकेला और बेमोल मरने के सिवाय उसकी गति कहाँ थी!

आलोचना का जीवन में स्थान है और रहेगा। क्रोध में कोई योजना नहीं होती, इसलिए आलोचना कभी कड़वी न हो, यह भी असम्भव है। फिर क्रोध न हो, तो उसका भाई व्यंग है जो आलोचना को तीखी-पनी बना देता है। इस स्थिति में प्रश्न यह है कि आलोचना का सबसे सन्तुलित रूप क्या है?

भोजन में तीखी चीजें भी होती हैं और मीठी चीजें भी। तो पहले क्या खाएँ और अन्त में क्या? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है और इसका

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1954)
... सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सर्वोत्तम उत्तर यह है "मधुरेण समारम्भ्य मधुरेण समापयेत्"—मधुर से आरम्भ और मधुर पर समाप्ति। बातचीत का भी आरम्भ सन्तुलित हो, आलोचना मध्य में हो और अन्त ऐसा हो कि आलोचना के पनेपन को शमित कर हृदय को ग्रहणशील बना दे।

—बातचीत आलोचना से आरम्भ मत करो।

—सबके साथ मिलकर आलोचना मत करो।

—निरन्तर आलोचना मत करो।

—आलोचना से पहले और बाद में सन्तुलित रहो।

—रचनात्मक आलोचना करो, जिसकी शैली मधुर और सुझाव व्यावहारिक हो।

जीना-मरना

• • •

देखने में जीती जागती साँस लेती देखती भालती, सूँघती सुनती, खाती-पीती और चलती फिरती बुढ़िया की देह, पर असल में हड्डियों के ढाँचे पर सूखी सुकड़ी, चिपकी चिपकी-सी खाल, आदमी क्या बस आदमी का कंकाल।

जंगल से काटे घास का गट्ठर सिर पर रखे शहर की ओर चली जा रही है यह बुढ़िया और चलती क्या जा रही है घिसट रही है। एक कदम उठाती है तो दूसरा नहीं उठता। थकान के बोझ से हर कदम मन-मन भर का हो रहा है। सिर पर घास का जितना बोझ है उससे दुगना बोझ परा का है। लगता है अब गिरी, अब टूट लकड़ी-से हाथ-पर।

तभी दिखाई दिया किसी टूटी हुई पुरानी दीवार का एक खण्डहर सा। तेनसिंह और हिलेरी को एवरेस्ट की चोटी पर के पास देखकर भी वैसा सुख न मिला होगा जैसा बुढ़िया को वह टूटी दीवार देखकर हुआ। दीवार के खण्डहर की ऊँचाई भी बुढ़िया के कद जितनी ही। अपनी बिखरती-सी हड्डियों को समेटकर बुढ़िया ने दीवार से सटकर जैसे तैसे अपनी काँपती गर्दन को साधकर वह गठरी उठा उस दीवार पर टिका दी पर इस सब में बुढ़िया के तन-मन पर इतना जोर पड़ा कि एक कराह की तरह उसके मुँह से निकला— हे भगवान मेरी मौत कहाँ है ?'

बुढ़िया चौंक पड़ी। उसके सामने सफ़ेद बुर्राक कपड़ों में लिपटी एक औरत खड़ी थी, मगर उसका चेहरा जाने कैसा-कैसा था, आँख-नाक कुछ थे भी कुछ नहीं भी। हड़बड़ायी आवाज में बुढ़िया ने पूछा—"तू कौन है, यहाँ

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रयाण (कविता संग्रह 1934)
मोतीनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

क्यों आई है ?" जवाब मिला—"मैं मौत हूँ। तू मुझे पुकार रही थी। इसलिए चली आयी।" बुढ़िया बोली—"यह घास की गठरी मेरे सिर पर रख दे। भारी है। मुझसे उठी नहीं इसलिए तुझे बुलाया था।" मौत ने हँसते हँसते बुढ़िया के सिर पर गठरी रख दी और न जाने किधर को ओझल हो गयी। बुढ़िया फिर धीरे धीरे उसी पगडण्डी पर चलने लगी।

बुढ़िया की जो तस्वीर हमारे सामने है उसमें सुख, सुविधा और सम्मान की एक भी रंगीन रेखा नहीं है और बुढ़िया का जीवन सिर्फ इस-लिए जीवन है कि वह साँस लेती है, पर एक बात साफ है कि बुढ़िया मुसीबतों के इस भँवर में भी मरना नहीं चाहती, जीना चाहती है। सचमुच कितनी प्यारी चीज़ है ज़िन्दगी ! कितनी गहरी प्यास है आदमी में जीने की !

इस प्यास की गहराई को सही सही समझने के लिए यह समझना जरूरी है कि आदमी जीते जी नहीं मरना चाहता, पर कमाल यह है कि वह डाक्टरों, हकीमों और वैद्यों द्वारा मर जाने की, मुर्दा हो जाने की घोषणा होने के बाद भी नहीं मरना चाहता। आदमी की यही चाह तो है जिसने स्वर्ग और नरक, जन्नत और दोज़ख नाम के आसमानी टापू बना रखे हैं। इनमें नरक में तकलीफें ही हैं पर स्वर्ग में तो वो मजे हैं, वो लुत्फ हैं, वो आनन्द है कि इस ज़िन्दगी में उनका सपना भी नहीं देखा जा सकता। इस सोचने में कितनी राहत है कि अरे, इस ज़िन्दगी में आराम नहीं मिला तो क्या स्वर्ग के मज़े तो हमारा इन्तज़ार कर ही रहे हैं। उस्ताद गालिब ने दो पंक्तियाँ लिखकर इस रस भरी सोच की सही तराज़ू तोल दी थी

"मुझको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन,
दिल के बहलाने को ग़ालिब ये ख़याल अच्छा है।"

दिल का बहलाना। हाँ जी, दिल का बहलाना मामूली नहीं बहुत बड़ी बात है। किसी माँ से पूछिए कि वह अपने लाडले इकलौते बेटे के दिल को बहलाने के लिए क्या-क्या करती है ! फिर उस माँ की ही तो बात नहीं, ये जो दरज़ी लोग रात दिन एक से एक सूट तैयार कर रहे हैं और यह जो हरेक महिला के सामने बज़ाज़ और उसके कारिन्दे एक से बढ़कर एक

साड़ी खोल-खोलकर फैलाते जा रहे हैं यह दिल बहलाने के सिवा और क्या है ?

और लो छोड़ो सूट और साड़ी की बात, सैंकड़ा जलूसों मे यह खबसूरत नारा गूजता है—"रोटी, कपड़ा और मकान, चाह रहा है हर इन्सान।" ठीक भी है रोटी-कपड़ा मकान की जरूरत नम्बर एक है, पर यह जो भाव आसमान तक पहुच जाने के बाद भी रात दिन सोने के ज़ेवर और इससे भी बढ़कर हीरे मोती पन्ने-लाल की ज्वेलरी धड़ाधड़ बन रही है यह दिल बहलाने के सिवा और क्या है ?

इस हालत म अगर आदमी ने अपना दिल बहलाने को, उसे तसल्ली देने को स्वर्ग और नरक, जन्नत और बहिश्त बना ही लिये, तो क्या बुरा किया ? ठीक है जी बुरा नहीं किया, भला किया, पर इस भले म भूल से बचने की बहुत ज़रूरत है क्योंकि खतरा यह है कि हम दिल बहलाते बहलाते दिल बहकाने न लगें ! बात मार्के की है, पर इसे स्पष्ट रूप मे समझने और समझाने की जरूरत है, क्योंकि कहा दिल का बहलाना और कहाँ दिल का बहकाना। दिल बहल गया तो होठों पर एक मुस्कराहट बिखर गयी, पर दिल बहक गया तो गय काम से।

एक था लोभी। वह अच्छा खाता पीता आदमी था। दो मंजिली हवेली थी अच्छा चलता रोजगार था बक म काफी रुपया जमा था, पर उसे सोना जमा करने की धुन थी। जैसे कवि को हमेशा कविता के भाव ही सूझते हैं उसे हमेशा सोने की बातें सूझती थीं, यहाँ तक कि उसे सपने भी सोने के ही आते थे।

एक दिन जगल म उसे एक ऋषि मिल गये। वह लोभी उनके पैरों म गिर गया और उनकी वन्दना करने लगा। ऋषि उसकी भक्ति म प्रसन्न हो गये और बोले, 'बोल तू क्या चाहता है ?"

लोभी ने कहा, "महाराज, मैं यह चाहता हूँ कि मैं जिस चीज़ को भी छुऊँ, वह सोना हो जाय।'

ऋषि ने कहा 'वह सोना थोड़ी देर म तेरे जीवन का बोझ हो जायेगा। तू शान्त मन से सोच ले और कोई दूसरी चीज माँग, जिससे तेरा दिल बहले, तुझे शान्ति मिले।'

गिडगिडाकर लोभी ने कहा, "महाराज, दुनिया की और किसी चीज से मेरा मन नही बहल सकता। मैं चाहता हूँ कि इस इतने बडे ससार मे सबसे ज्यादा सोना मेरे पास हो। बस ऐसा होने पर ही मेरे मन को शान्ति मिलेगी।"

ऋषि ने सूय की तरफ हाथ उठाकर कहा, "जा ऐसा ही होगा, और अब से तू जिस चीज का छू देगा, वही सोना हो जायेगी।"

लोभी दौडा दौडा अपने घर पहुँचा। उसकी पत्नी पूजा से उठकर तुलसी के वक्ष पर जल चढा रही थी। लोभी जोश मे था। उसने दाहिने हाथ से तुलसी को छू दिया। हे राम, हे राम। हरे पत्ते ही नही, काली-सी जडें भी पीली होकर धूप म झमझमा उठी। श्रीमती जी भौंचक, पर श्रीमान्‌जी ऐसे आनन्द विभोर कि नन्चे मे गुन्च, 'देखती क्या है, अब तेरे पास हर चीज सोने की होगी और मैं आज से तेरा नाम स्वणलता रख दूगा।"

आज का चमत्कार श्रीमतीजी के सामने था, कल के जीते-जागते सपने दिमाग मे उफन उठे थ। उल्लास ने उन्हें बकाबू कर दिया और उन्होंने अपने पति का अपनी भुजाओ म भर लिया। स्वाभाविक था कि पति की भुजाएँ भी काम करती। श्रीमतीजी अब पति की भुजाओ मे भरी हुई थी। दो की एकता ही अद्वत है और अद्वत से बडी जीवन मे कोई उपलब्धि नही। पर यह क्या, पति महाराज मे प्राण सक्ट मे क्योकि उनकी देह छूते ही पत्नी सोने की हो गयी और अचल स्वण भुजाओ मे वह इस तरह फँस गये, जसे अजगर की कुण्डली म लोमडी फँस जाती है कि टस से मस न हो सके।

पल भर मे ही सारी स्थिति लोभी की समझ मे आ गयी। ये वे भुजाएँ थी जो उगली से छून ही रोमाचित हो जाती थी या जिन्हें गुदगुदाते ही खिल खिल हँसी हरसिंगार के फूलो की तरह बिखर पडती थी। सचाई यह है कि ये चम्पा की भुजाएँ ही न थी, ये तो स्वणलता के स्वणबाहु थे, जिनके ढीले पडने की कोई राह नही थी। विवश हो सुनार बुलाये। श्रीमतीजी की भुजायें छेनियो से काटी गयीं। पतिदेव मुक्त हो गये और स्वणलता पत्नी को एक तख्त पर लुढका दिया गया, जैसे रामलीला का मेघनाद हो। हाँ, रामलीला का मुस्टड मेघनाद, पर बात यही पूरी नहीं होती। स्वणसेठ

भोजन करने बठे। घर भर के सब बतन तो सोने के हो ही चुके थे, मोने के थाल मे परसी रोटी, सब्जियाँ, रायते और मुरब्बे भी छूते ही सोने के हो गये, जिन्ह देखा तो जा सकता है, पर न खाया जा सकता है, न निगला जा सकता है।

अब आया आपकी समझ मे दिल को बहलाने और दिल को बहकाने का फक ? इस रोशनी मे कोइ स्वग और जन्नत की अमरता के ख्याली पुलावो का दावत उडाय तो मजे ही मजे और मौज ही मौज, पर सचमुच किसी को अगर अमरता मिल जाये तो उसकी हालत उस स्वणसेठ स भी बदतर हो जाये।

क्या ? अगर किसी को जीते जी ही अमरता मिल जाये और स्वण या जन्नत क नाम पर दिल बहलाने की जरूरत ही न रहे तो उसकी हालत स्वणसेठ स भी बदतर क्या न हो उसके तो फिर मज ही मजे हैं। वह स्वर्णसेठ की तरह भूखा थोडे ही मरेगा ? उसकी पत्नी क मधुर आलिंगन अजगर की कुडली थोडे ही हो जायेंगे। उसे न वैद्य जी से मतलब, न डाक्टर साहब से, हर साल यार दोस्तो के साथ मज से जन्मदिन मनाओ और लानत भेजो बरसी और श्राद्ध पर। जब जी चाहे किसी रिश्तेदार के यहाँ चले जाओ और चार दिन उसके साथ रिश्तेदारी की खातिरदारी के लुत्फ उठाओ, फिर आसपास के बढिया स्थान देखकर घर आ जाओ। रिश्तेदार अपने अपने नगरो म गव के साथ अपने परिचितो स यह कहकर परिचय करायेंगे, मिलायेंगे कि हमारे यह बन्धु अमर पुरुष हैं और अपने नगर के नर-नारी यह कहकर गौरव अनुभव करेंगे कि हमारा नगर कितना महान् है, जिसम जरा-मरण से मुक्त एक मानव का निवास है जो सारे ससार मे अपनी तरह का अकेला मत्युजय महामानव है। उसकी दशा उस लोभी स्वणसेठ जैसी या उससे भी बदतर क्यो हो जायेगी ?'

सचमुच आपने अमर पुरुष का शब्दचित्र तो बहुत शानदार खीचा, पर बात वही उस्ताद ग़ालिब वाली है कि दिल का बहलाना और बात है और दिल का बहकाना और बात। लीजिए बात को लम्बी करने से क्या प्रयोजन मैं आपको एक अमर पुरुष की आत्मकथा सुनाता हू। आप भी जानते हैं कि आत्मकथा काल्पनिक है, घडी हुई है, पर कुछ दर के लिए आप

यह मान लें कि वह अमर पुरुष मैं ही हूँ और आपको यह अपनी ही अमरता की कथा सुना रहा हूँ।

"मैं अमर पुरुष हूँ। मेरे कमरे मे पचासो कलेण्डर टँगे हैं, पर मुझे यह भी पता नही कि इनमे से इस साल का कौन सा कैलेण्डर है और किस साल का कौन सा कलेण्डर है। अब साल का मेरे जीवन मे कोई सम्बन्ध ही नहीं और साल के आने या जाने से मेरा कुछ बनता बिगडता ही नही, तो मैं साल पर क्या ध्यान दू ? बस व मेरे लिए तो कागज हैं जो पास पडोस के नौजवान टाँग जाते हैं। मैं उसके कागज औरो की तरह हर महीने नही फाडता, फाडूँ भी क्यो ? मेरे लिए जब साल का ही कुछ अर्थ नही रहा, तो महीने का क्या अर्थ होगा। सचाई यह है कि न मेरा ध्यान कभी साल पर जाता है, न कभी महीने पर और न दिन पर। मेरे लिए तो हर समय एक-सा ही है, क्योंकि मेरे जीवन पर उसका कुछ असर ही नही पडता।

'हालत यह है कि मैं आपको अपनी अमरता की कहानी सुनाने तो बैठ गया पर मैं यह नही बता सकता कि वह कब की बात है जब मेरी लम्बे दिनो की तपस्या के बाद हनुमान जी ने मुझे अमरता का वरदान दिया। वसे ही आजकल मुझे हर आदमी से घृणा है पर सबसे कडवी घृणा उस संन्यासी से है जिसने मुझे इस रास्ते पर लगाया। हो गये होंगे इस बात को 100-150 साल, शायद इससे भी ज्यादा क्योंकि न सन-सम्वत की बात मुझे याद है न उनमे मेरा अब कोई वास्ता ही रहा है। हाँ यह याद है कि तब मेरा कुनबा भरा पूरा था, शहर भरा-पूरा था। सबसे जान-पहचान थी, मिलना-जुलना जाने कितने शहरो मे था। मेरे रिश्तेदार थे मेरी पत्नी थी और अब ठीक तो याद नही, और भी दो चार जगह लगाव थे। हँसी-खुशी मे रात दिन बीत जाते थे। समय हवा के घोडे पर सवार था। कब आता था, कब चला जाता था, कुछ पता ही न लगता था, अब तो वह पहाड की तरह खडा हो गया है।

"धीरे धीरे रिश्तेदार मरते गये और सबो मे सम्पर्क टूटते गये। कुनबे और शहर मे भी अपनी उमर के और अपनी आँखो के सामने पले हुए लोग मरते गये और मरते क्या गये खतम हो गये। अब हालत यह है कि इस शहर मे बसे भीड की भीड आदमियो म एक भी एसा नहीं, जो मुझे न

पहचानता हो, पर उनमे एक भी आदमी ऐसा नही, जिसे मैं पहचानता हूँ या जिसका मैं नाम जानना हूँ। नाम की बात दूर है मुझे इसके चेहरे से उसके चेहरे मे भी फर्क नही लगता। कभी कभी तो मैं आँख फाडकर देखता हूँ और मुझे ऐसा लगता है कि यह बिना चेहरो के आदमियो का शहर है।

"इतने बडे शहर मे मेरे साथ किसी की भी सहानुभूति-हमदर्दी नही है। मैं यहाँ इस तरह स रह रहा हूँ जसे मैं आदमी की सूरत म भूत हूँ और सच यह है कि मैं भूत के सिवा और हूँ ही क्या ? मुझे यो साधारणतया अब किसी की याद नही आती पर आखिर आदमी हूँ जब भी कोई याद आता है तो वह जीता जागता आदमी नही, जाने कितने साल पहले मर चुका आदमी होता है। मतलब यह कि मेरी यादा का बाग एक ऐसा बाग है जिसके हर पेड का हर पत्ता एक मुर्दा है।

'मेरे पडौस मे रोज डाकिया आता है और किसी न किसी का आवाज देता है। मेरे घर वह कभी नही आता। मैंने भी कभी उसकी सूरत नहीं देखी बस आवाज से ही पहचानता हू मैं उसे। सब जानत हैं कि मुये न किसी का विवाह करना है न जसूठन। इसलिए बाजे गाजे की आवाज से कही शामियाना या मडप देखकर मैं समझ लेता हूँ कि यहाँ कोई शादी है पर मुझे कभी कोई निमन्त्रण नही भेजता, न देखकर ही बठन को कहता है।

'मेरी जमीना पर लाग जाने कब से खेती करत हैं मेरी हवेलिया म लोग बसे हुए हैं। अब व मालिक हैं उन जमीनो और मकानो के पर मुझ मे उनकी सिर्फ़ इतनी ही दिलचस्पी है कि मैं मर जाऊँ, तो उन्ह इस याद का बोझ न उठाना पडे कि आखिर ये जमीनें और य मकान कभी न कभी थे तो मरे ही। मुझम इतनी गहरी दिलचस्पी मेर पडोसियो की है। वे सोचत हैं कि मैं मर जाऊ तो मरी हवली भी व आपस मे बाँट लें, पर इन सबसे गहरी चाह तो मेरी है कि मैं मर जाऊँ और गहरी क्या, मरने के सिवा मेरी और चाह ही नहीं, पर मर कसे जाऊँ, वह कौन-सा उपाय है जो मरन के लिए नहीं किया मैंने ? पर मरूँ कैसे, यह अमरता का राक्षस जो मुझे चिपटा हुआ है।"

उस अंधेरे का कवि हूं (कविता संग्रह 1931)
परचम (कविता संग्रह 1934)
...सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

अब कहो, आप समझे या नहीं कि अगर किसी मनुष्य को अमरता मिल जाये, तो क्या हो ? अरे भाई आपके अमर पुरुष की हालत उस स्वर्ण पुरुष से भी खराब हो जाये। सच यह है कि कुदरत ने जन्म के साथ मरण का जोड़ा जोड़कर हमें कितना बड़ा उपहार दिया, हमारा कितना उपकार किया इसको हम नहीं समझते। इसे समझा था संस्कृत के उस दिव्यद्रष्टा कवि ने जिसने कहा था 'धन्या नरा ये मृता"—वे मनुष्य धन्य हैं जो मर गये, और इस उपहार को समझा था विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ने जिसने अपने मरने से सिर्फ दो घण्टे पहिले कविता लिखी थी जिसका शीर्षक था—मृत्युमित्र।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि,
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।

गीता में कृष्ण ने जीवन-मरण के जोड़े का एक ही श्लोक में यह रूपक देकर तो कमाल का ही काम किया है—जैसे मनुष्य पुराने कपड़े उतारकर नये धारण करता है, वैसे ही नश्वर देह के भीतर रहने वाली अनश्वर आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये शरीर में चली जाती है।

अब पूछे कोई इन अमरता के लोभियों से कि भाई जीवन तो अमर है ही, तुम उसका सुख भोगो, इस देह की अमरता के दलदली मोह में पड़कर दिल को बहलाने-बहकाने के चक्कर में न पड़ो। क्योंकि यह चक्कर दुनिया की सबसे बड़ी मूर्खता है।

जीवन यदि मन्दिर है तो मृत्यु उसे शोभित करने वाला स्वर्णकलश है। मनुष्य के जीवन की सार्थकता ही यह है कि वह आदमी की तरह जीना तो जाने ही, आदमी की तरह मरने की कला भी जान ले।

व्यक्तित्व

• • •

बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों की बात है।

मेरे गरीब कुटुम्ब के एक नवयुवक ने अपनी ही खूबियों से थानेदार का पद पा लिया। स्वतन्त्र भारत में सुनकर लगता है कि भला थानेदार का भी क्या पद, पर उन दिनों और एक गरीब घर में तो यह मिनिस्टरी ही थी।

चारों ओर खूब चर्चा हुई मेरे चाचा मधुसूदन दास की और बार बार मेरे कानों में एक वाक्य पड़ा 'भाई मधुसूदन ने बहुत उन्नति की है।'

हाँ, की है और इस तरह मेरे बाल मन की धारणा बनी कि पढ़ लिखकर ऊँचा पद पा लेना ही मनुष्य के उन्नति उत्थान की कसौटी है—जो जितना बड़ा पद पा ले, वह उतना ही उठा ऊँचा, उन्नत और बड़ा आदमी।

वर्षों तक मेरी यह धारणा पुष्ट होती रही और मैं अपनी बाल भावुकता में कोई ऊँचा पद पाने के खयाली पुलाव पकाता रहा।

वर्षों बाद मेरे नगर में स्वामी कृष्णानन्द पधारे। उनके पैर ही इतने सुन्दर थे कि परियाँ अपना मुँह देख सकें, फिर मुस्कान तो ऐसी कि मोती बिखरने की उपमा भी बिखरी बिखरी लगे और प्रवचन तो यों कि नास्तिकों में भी एक बार धर्म की कामना जाग-जाग आये। वह जनता के मनमानस पर छा गये और बार-बार मेरे कानों में एक वाक्य पड़ा 'भाई, स्वामीजी बहुत बड़े महात्मा हैं। उन्होंने बहुत उन्नति की है।'

हाँ की है और इस तरह मेरे नवयुवा मन की तरल भावुकता में नयी धारणा बनी कि मनुष्य के उन्नति-उत्थान की कसौटी है—तप, त्याग और

वैराग्य। पर जैसे-जैसे विचार पकते गये मैं समझता गया कि पद हो या वैराग्य, वह मनुष्य के उन्नति-उत्थान की कसौटी नही है। निश्चय ही पद से मनुष्य की सामाजिक प्रतिष्ठा बढती है और त्याग से आत्मिक विकास होता है, पर ये दोनो ही साधन हैं, कसौटी नही।

फिर कसौटी क्या है? यह प्रश्न मेरे मन मे बार-बार उठता उभरता रहा और मेरी आयु बढती रही। यहाँ तक कि मैं ब्याहने के लायक दो बेटियो का बाप हो गया।

अब मुझे उनके लिए वरो की तलाश थी। कई मित्रो से कहा, "कोई अच्छा-सा लडका बताओ।"

एक मित्र ने पूछा, "आपके लिए जामाता के चुनाव की कसौटी क्या है?" कुछ न-कुछ तो उत्तर दिया ही पर वह मेरे लिए भी अधूरा था।

अब उन्नति उत्थान की कसौटी भूलकर मैं जामाता की एक नयी कसौटी खोजने-सोचने लगा। महीनो सोचकर और कसौटियो की सैकडो सीढियाँ चढ उतरकर मैं जहाँ आ टिका, वह कसौटी यह थी कि माता पिता या अन्य बन्धु बान्धवो के द्वारा उसे आज जो सुख साधन प्राप्त हैं किसी कारण-वश उनके अचानक छिन जाने पर भी जो युवक धडाम से गिरे नही जीवन के पथ पर खडा-बढता रहे, वह जामाता बनाने के योग्य है।

इसका क्या अर्थ है? अर्थ तो स्पष्ट ही है, पर क्या फलितार्थ यही नही कि उन्नति उस विकास का नाम है, जो स्वयं उसका अपना हो और जिसे कोई पुरुष या परिस्थिति उससे छीन न सके!

मैंने इस कसौटी पर खरे उतरे दो तरुणो से अपनी बेटियाँ ब्याहीं और गंगा नहा गया, पर एक दिन अचानक मेरे मन में विचार उठा कि कन्या के लिए वर के चुनाव की जो कसौटी मैंने बनाई थी क्या मनुष्य के उत्थान की वही कसौटी नही है?

लम्बे ऊहापोह और चिन्तन के बाद मैंने अपने से कहा—' मनुष्य के उन्नति उत्थान की कसौटी सचमुच यही है कि उसका उत्थान उसका अपना उत्थान हो और यह इस सीमा तक अपना हो कि कोई भी शक्ति और परिस्थिति उसे छीन न सके।"

इस कसौटी पर मैं बहुतो को कसता रहा, पर 1947 वाले हिन्दुस्तान-

पाकिस्तान के खूनी बँटवारे मे यह कसौटी ही एक ऐसी कसौटी पर कसी गयी कि बस क्या कहूँ आपसे और सौ फीसदी खरी उतरी।

लाहौर साम्प्रदायिकता की ज्वाला म जल उठा और जान लेकर भागने के सिवाय बहुता के लिए कोई चारा न रहा। भागे तो यो हजारो-लाखा, पर यहाँ तीन की ही बात मुझे कहनी है। एक थे बहुत बडे मठाधीश, दूसरे बहुत बडे व्यापारी और तीसरे हिन्दी के एक साधनहीन कवि। तीनो से भारत के तीन नगरो मे मैं मिला।

मठाधीश बोले, पण्डितजी वहाँ कितनी बडी बिल्डिंग थी हमारे मठ की। भण्डारे मे 50 100 आदमी प्रतिदिन भोजन पाते थे, पर अब यहाँ दूसरो की शरण लिये पडे हैं और वे बेचारे दया करके जो कुछ पत्तल पर रख देते हैं खा लेते हैं—पेट का डेरा तो भरना ही है।"

व्यापारी बोले—"आपने तो देखी थी हमारी कोठी। शीशे की तरह चमकते फर्श थे कितने कमरे थे और कैसा व्यापार था! कई सौ रुपये का बिल तो टेलीफोन का ही बनता था। अब यहाँ एक रिश्तेदार की बैठक मे पडे हैं और उनकी ही दया पर निर्भर हैं। अक्सर जी चाहता है कि आत्महत्या कर लूँ, पर यह सोचकर रुक जाता हूँ कि इन बच्चो का भाग्य तो फूट ही गया, मुझसे लग जी तो रहे हैं।

मठाधीशजी की आँखें डबडबा आई थी और व्यापारी बन्धु तो बह ही पडे थे पर सहानुभूति म चिन्तित मेरे उतरे चेहरे को देखकर कविजी उछलकर बोले थे, अरे दादा मारो गोली उन कम्बख्त कहानियो को, लो नया गीत सुनो, यहाँ आकर यही पहला है, पर है मस्त।"

सुन-देखकर मैंने सोचा था—उत्थान इन तीनो का ही हुआ मठाधीश का भी व्यापारी का भी, कवि का भी, पर मठाधीश और व्यापारी का उत्थान अपना नहीं था, परिस्थितियो का था, परिस्थितियो ने उसे छीन लिया पर कवि का उत्थान उसका अपना था इसीलिए उसे परिस्थितियाँ छीन न पाई। उल्टे उनकी रगड से वह और प्रखर हो उठा, प्रशस्त हो गया। मठाधीश और व्यापारी का नाम क्या कीजिएगा पूछकर, हाँ यह कवि थे—श्री देवराज दिनेश औघड और मस्त।

भारत की राजधानी म उस दिन देखा—लोकसभा के सामने तीन

सज्जन सिर से सिर मिलाये खडे थे—गुटरघू, गुटरघू। किसी ने बताया तीनो अपने-अपने राज्य के भूतपूव मुख्यमन्त्री हैं। 1947 म बिना सूचना दिये हमारे आँगन मे स्वतन्त्रता का रथ आ खडा हुआ और लौह पुरुष सरदार पटेल की गिडगिडी सुन राजमुकुट लुढ्के, तो स्थान-स्थान म कुछ कुरसियाँ बिछी।

सिद्धान्त है कि कोई कुरसी खाली नही रहती। हमारे देश की एक लोककथा है कि दुलारी बुढिया का बेटा निखटटू था। खाता पीता, मौज करता, पर कमाने के नाम पर गुम। एक दिन भावज न ताना मारा—"लाला, दोनो जून चुपडी मिलती है, तभी य नखरे हैं, जिस दिन हाथ से कमाओगे पता चलेगा।"

चोट कलेजे पर बैठ गयी और निखटटू रोजगार के लिए घर से निकल पडा। चलते चलते भावज ने सुई चुभाई—"लाला, हाथी पर बैठकर आइयो।" बिंधा छिदा निखटटू चल पडा। चलमुचल चलमचल वह एक नगर म पहुँचा। बडी चहल-पहल थी वहाँ।

पूछा, तो जाना कि यहाँ का राजा मर गया है और बेटा कोई है नही, एक बेटी है, इसलिए अब एक कबूतर उडाया जायगा। उडत उडते वह जिसके सिर पर बैठ जायगा उससे ही राजा की बटी शादी कर लगी और वह राजगद्दी पर बैठेगा।

काम तो कुछ था हो नही, निखटटू भी एक चौराहे पर खडा तमाशा देखने लगा। कबूतर उडा, मँडराया, तारा हुआ, और गुचकी मार, अरे साहब, निखटटू के सिर पर आ बैठा। फिर क्या था, निखटटू राजा हो गया और एक दिन हाथी पर बैठकर गाजे-बाजे के साथ अपने गाँव मे आया। माँ न बलैया ली, भावज ने आगे बढकर आरती उतारी।

हमारे देश मे भी राजा न रहे, तो कुरसियाँ खाली हुइ, और खाली उन्हें रहना नही था तो नेता की नजर का कबूतर जिनके सिर आ बठा वे उन कुरसियो पर सुशोभित हुए। अदली और सेक्रेटरी अब उनके आगे-पीछे फिरने लगे और क्या कहूँ कि क्या चमक आई उन पर!

इन चमकते चादो मे कुछ तो वे थे, जिन्ह कुरसियो को चमकाने के लिए कुरसियों पर बैठाया गया था और कुछ वे थे, जो कुरसियो की चमक को

ही अपनी चमक मान बैठे थे, पर ज्यों ही चमकदार आदमी मिले, नेता की नजर का कबूतर इनके सिर से उड़ गया और ये बेचारे खरामा-खरामा घूमते नजर आये।

और उसी राजधानी में यह कौन है, जो चला आ रहा है यों मचमचाता कि स्वर्ग जैसे इसकी मुट्ठी में आज ही आया हो। चेहरे पर ऐसी चमक जो विजय के क्षणों में फूटती है और गति में ऐसी गमक जो लाटरी आने पर आती है। देखते ही जी चाहता है कि देखते रहें। कौन है यह?

यह भी एक भूतपूर्व मुख्यमंत्री है। अपनी शक्ति से यह उस कुरसी पर बैठा था और अपनी ही शक्ति से यह हट गया। हटते ही खिलाड़ी की तरह छलांग मार यह प्रेस गैलरी में आ कूदा और अट्टहास के साथ बोला, 'लो भाइयो हम फिर अपनी बिरादरी में आ गये।'

उन तीन बेचारों का नाम पूछकर क्या कीजिएगा, पर पत्रकार से मुख्यमंत्री और मुख्यमंत्री से फिर पत्रकार हो जाने वाले इन महाशय का नाम है—श्री जयनारायण व्यास, राजस्थान की राजनीति के स्तम्भ।

वही बात कि उन तीन का उत्थान परिस्थितियों का दान था, परिस्थितियों के साथ चला गया और चौथे का उत्थान उसका अपना उत्थान था कि पद के जाने पर भी बना रहा। इसी अटल उत्थान का नाम है व्यक्तित्व।

व्यक्तित्व का निर्माण ही मनुष्य का वास्तविक उत्थान है। यह उत्थान जिसे कोई दे नहीं सकता, तो जिसे कोई छीन भी नहीं सकता—न कोई पुरुष न कोई परिस्थिति।

क्या आप इस कसौटी पर अपने उत्थान का स्वर्ण-कुन्दन कसने को तैयार हैं?

एक हल्की बात

• • •

उस दिन साहू शान्तिप्रसाद जी के साथ मोटर में कहीं जा रहा था। बातों के प्रसंग में रमा रानी ने किसी साधु की चर्चा की। तो बोले—"आदमी बहुत होशियार हैं। मैं हमेशा उनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करता हूँ।"

साहूजी का स्वभाव दूध मिश्री से बना है। वह व्यंग भी करें, तो वह तीखा नहीं होता और किसी पर नाराज भी हों, तो उनकी नाराजी अपनी मिठास नहीं खोती। फिर भी उनके द्वारा एक साधु की प्रशंसा होशियारी के माध्यम से मुझे कुछ अजीब-सी लगी। मैंने अपना भाव एक प्रश्न में समाया—"साधुजी होशियार आदमी हैं भाई साहब?"

उत्तर में एक संस्मरण उन्होंने सुनाया—"एक धर्मोत्सव के सिलसिले में उनके साथ सम्पर्क में कुछ दिन रहने का अवसर मिला। एक दिन आप ही-आप बोले—'मैं सोना बनाना जानता हूँ। आप चाहें, तो बनवा दूँगा।' बस उस दिन से मैं उन्हें बहुत होशियार आदमी मानने लगा।"

बिना कहे भी स्पष्ट है कि एक हल्की बात कहकर साधुजी ने साहूजी की दृष्टि में अपने तप, चरित्र सेवा का सम्मान खो दिया और वह केवल एक होशियार आदमी रह गये।

साधुजी की बात सोचते-सोचते मुझे स्वर्गीय मुखिया सुचेतसिंह याद आ गये। उनका गाँव रणखण्डी अब तो उत्तर प्रदेश के सर्वोत्तम ग्रामों में है, पर 1928 में इस सर्वोत्तमता का शिलान्यास ही हुआ था—ग्राम की संस्कृत पाठशाला के प्रथम वार्षिकोत्सव के रूप में। यह उत्सव गुरुकुलोत्सव के ढंग पर मनाया गया और दूर-दूर के ग्रामों से लोग भाषण सुनने आये। तीन

दिन खूब धूम रही। उत्सव शान और शांति से समाप्त हो गया, तो रात म मुखिया जी के द्वार पर सब प्रमुख आ जुटे और उत्सव की चर्चा होती रही पर विचित्र बात कि सबका ध्यान इस बात पर केंद्रित था कि दान मे आय रुपये आशा से कम मिले।

मुखियाजी सुनते रहे-सुनते रहे, तब बोले, "या बात राजाओ के सोचने की नही है। मेरे पूछने पर बोले—"उत्सव से गाँव की इज्जत बढी या घटी, जो लोग बाहर से आये, उनकी मेहमानदारी ठीक हुई या नहीं, उन आने वाला ने यह सोचा या नही कि भाई रणखडी म जो हुआ, वह हमारे गाँव म नही हो सकता था, राजाओ के सोचने की ये बातें हैं।" बाद म धीरे स उन्होंने कहा था—'चन्द की बात हल्की बात है।"

मुखियाजी की बात सुनकर उस दिन सोचा-सीखा कि आदमी को हमेशा हल्की बात से बचना चाहिए और अपन मित्र की बात सुनकर सोचा सीखा कि एक हल्की बात, एक हल्का व्यवहार आदमी के पूरे जीवन की कमाई को समाप्त कर दने के लिए काफी है।

भारत स्वतन्त्र हुआ, तो राष्ट्र के नये-नये उत्तरदायित्वो के लिए नय नये आदमियो की आवश्यकता हुई। सरदार पटेल ने एक राजकुमार को दिल्ली बुलाया। वह उन्ह एक राज्य का मुख्यमत्री या केन्द्र म राज्यमत्री बनाना चाहत थे। यह राजकुमार कई विदेशी भाषाओ के विद्वान् थे और इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी थीं। राजकुमार आय तो अटची म अपनी पुस्तकें भी लत आय, और जिस कमरे म उन्ह सरदार श्री से मिलना था, उसकी मेज पर उन्होंने व पुस्तकें इस तरह सजा दी कि क्रमश उनका परिचय द सकें।

सरदार आय, तो उनकी पहली निगाह पुस्तको पर पडी। तभी राजकुमार ने कहा—"ये सब मेरी ही लिखी हुई हैं और देश विदेश के विद्वानो ने इनकी बहुत प्रशसा की है।'

सरदार ने अपनी सान डोरे वाली आँखो को जरा खींचकर अपने शुद्ध जमे कण्ठ से कहा 'आप एक अच्छे काम मे लगे हुए हैं इसी में लगे रहें।' और बिना उनकी तरफ देखे वह लौट गये। स्पष्ट है कि सरदार उनके काम म परिचित थ तभी तो उन्होंने उन्हें बुलाया था। इस स्थिति में अपनी

पुस्तकों को सरदार श्री की मेज पर इस तरह सजाना एक हल्की बात थी, जिसने सरन्दार के अहकार को बिफरा दिया और राजकुमार के भविष्य की भ्रूणहत्या कर दी। मैंने बहुत बार सोचा कि यदि राजकुमार के मुह से उस वाक्य की जगह निकलता—"शास्त्र का वचन है कि गुरुजनो के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए इसलिए तुलसीदल के रूप म अपनी ये पुस्तकें साथ लेता आया हूँ।" तो उसी क्षण उनके उज्ज्वल भविष्य का शिलान्यास हो जाना।

हल्की बात मे दम नही होता वजन नही होता, पर उसम यह शक्ति होती है कि अपना उपयोग करने वाले का दम-खम ढीला कर दे, उसे हल्का बना दे।

अपने बचपन की बात मुझे याद है। मेरे मुहल्ले मे दो धनी आदमी रहते थे। दोनो के घर मे एक साथ बेटी का विवाह हुआ। दोना के ही घर मे काफी मिठाई बच गयी। उनमे से एक ने उस मिठाई का उपयोग इस प्रकार किया कि नम्बर एक की मिठाई तो मुहल्ले-पडोस म बाँट दी—नम्बर दो की स्कूलो के बच्चो को खिला दी और तीन नम्बर की टूटन चूरा टोकरे मे भरकर हरिजनो के मुहल्ले म भेज दी कि सब बाँटकर खा लें। इसके विरुद्ध दूसरे धनी ने बची मिठाई को बेच दिया। स्वाभाविक ही था कि उसे गरीबो ने खरीदा और थोडा थोडा खरीदा। कई दिन उसके घर भीड रही।

अब समाज म पहले की तो बेहद प्रशसा हुई पर दूसरे का भरपूर निन्दा मिली। कजूस तो उसे सभी ने कहा, पर नीच कहने मे भी लोग नही चूके। उस दिन तो हद ही हो गयी कि हमारी गली म किसी ने आवाज लगायी—"बढिया मिठाई लो!" गली के लोगो ने अपनी-अपनी खिडकियो से झाँका, पूछा, तो पता चला कि यह बेचने वाला भी उसी धनी के यहाँ से खरीदकर लाया है और अब गली-गली बेच रहा है। खिडकियो मे खूब निन्दा बरसी, पर उसका क्लाइमेक्स यह था—"इससे तो अच्छा था कि साला अपनी बेटी को ही बेच देता।' किसी ने इसका भाष्य किया—"हाँ, ठीक है, तब इज्जत घर मे बैठकर बिकती, अब गली-गली बिकती फिर रही है।'

पिताजी सुनकर गम्भीर हो गये थे, और तब उन्होंने कहा था—"मूरख

ने हजारों रुपये विवाह में खर्च किये, पर 100 200 रुपये के लिए सारे शहर की आँखों में हल्का हो गया।" थोड़ी देर बाद बोले—"बेटा, पाँच रुपये में वाह-वाह और पाँच रुपये में थू-थू।' मैंने इसका अर्थ पूछा, तो बोले—"दो आदमी सोच विचार कर किसी काम में 100 100 रुपये खर्च करने का फैसला करते हैं। अब एक तो उन 100 में 5 रुपये और बढ़ा देता है, पर दूसरा काट छाँट कर पाँच रुपये बचा लेता है। पहले को वाह वाह मिल जाती है दूसरे को थू-थू।'

एक उदाहरण देकर उन्होंने अपनी बात समझाई—दो आदमियों ने किसी विद्वान् को एक-एक दिन अपने घर भोजन कराने का निश्चय किया और उसमें एक-एक रुपया खर्च करने का निर्णय किया। अब एक ने भोजन में एक रुपया तो खर्च किया ही, चलते समय दो आने देकर उन्हें इक्के टम-टम में घर तक पहुँचा दिया, पर दूसरे ने पान की इकन्नी बचा ली और इस तरह एक को दो आने में वाह-वाह और दूसरे को एक आने में थू-थू मिल गयी।'

सचाई यह है कि यह आने, दो आने या 100 200 रुपये की बात नहीं है, यह तो हल्की बात-की-बात है। वीर राजपूत अपनी पत्नी के प्रेम में रसलीन था कि युद्ध का निमन्त्रण आ पहुँचा। एक तरफ प्रेम एक तरफ धर्म, वीर पत्नी ने धर्म का पक्ष लिया और धूमधाम से तिलक देकर वीर को विदा किया। वीर चल पड़ा, पर मोह का जाल न टूटा। राह से पत्नी के पास प्रेम का सन्देश भेजा। पत्नी ने अपना सिर काटकर पति को भेजा और कहला दिया, "लो अब तो मैं तुम्हारे ही पास हूँ—आन से लड़ो।" यह है हल्की बात और भारी बात—एक साथ।

पाण्डवों का सभा मण्डप देखने दुर्योधन आया, तो एक जगह पानी में घुस गया। शिल्प की यह विशेषता थी कि पानी भी फर्श दिखाई देता था। द्रौपदी ने व्यंग किया—"अन्धे (धृतराष्ट्र) का पुत्र भी अन्धा ही हुआ।" यह एक हल्की बात ही थी। पहले तो सन्यासी, फिर अपने घर आये हुए व्यक्ति—उसका मान करना उचित है या अपमान? संसार जानता है—द्रौपदी की इस हल्की बात में बवण्डर में कौरव वंश ही नष्ट नहीं हुए हजारों सालों के लिए देश की रीढ़ ही टूट गयी।

एक वाक्य नहीं, कभी-कभी एक शब्द ही बात को हल्की कर देता है।

[illegible]

उस दिन श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन से बातें हो रही थी, और भी अनेक मित्र बैठे थे। महू के स्वग मन्दिर का प्रसग आ गया तो मैंने कहा—"विष्णु की मूर्ति के लिए जो पत्थर आया, वह इतना भारी था कि रेन म नही उतरा। बाद मे एक इजीनियर सबसे बडी क्रेन लेकर गया और तब वह पत्थर उतरा।"

साहूजी धीरे स बोले—"बस क्रेन ही काफी है, 'सबसे बडी' की जरूरत नही।" हम सब हस पडे, पर मैंने बाद म सोचा—सचमुच एक व्यथ विशेषण किसी गम्भीर बात को भी हल्की कर देता है और वाक्य या शब्द ही नहीं, उच्चारण का ढग और हमारी भाव भगिमा तक बात को वजनदार या हल्की बनाने म समय हैं।

हम हल्की बातो मे बचें और बात को हल्की करने वाले भावो, शब्दो और सकेतो स बचें। हल्की बात पल भर म भारी आदमी को हल्का कर देती है, तो भारी बात हल्के क्षणा म वजन दे देती है। पराजित पोरस, विजेता सिकन्दर के सामने उपस्थित किया गया तो गव स सिकन्दर ने कहा—"बता तेरे साथ कसा व्यवहार करू ?"

पूरे आत्मविश्वास के साथ पोरस ने कहा—"जैसा कि राजा राजाओ के साथ किया करत हैं।' और सचमुच इस एक ही वाक्य ने पोरस को पराजय के हल्के वातावरण से निकालकर इतिहास म सदा के लिए सम्मान के सिंहासन पर बैठा दिया।

आरम्भ और अन्त

• • •

बहुत दिनों की बात है। एक सामाजिक संस्था—नगर सेवा समिति—के सभापति का चुनाव था। सेवा समिति बहुत लोकप्रिय थी और उसके सभापति समाज में अच्छी निगाह से देखे जाते थे—समाज के नेताओं में गिने जाते थे। ज़िले का कलक्टर भी उन्हें आदर से अपने पास बैठाता था।

उनका नाम था, रायबहादुर अनोखेलाल राजवंशी। वह सेवा समिति के सभापति पद को अपनी बपौती मानते थे, क्योंकि बिना विरोध के दस-बारह साल से सभापति चुने जा रहे थे पर उस साल जाने क्या बात हुई कि चुनाव में तीन दूसरे आदमी भी उनके मुकाबले पर खड़े हो गये और एक जोश भरी रस्साकशी आरम्भ हो गयी।

इन तीन विरोधी उम्मीदवारों में दो रायबहादुर की टक्कर के थे, पर एक नौजवान ऐसा भी था, जिसके जीतने की सम्भावना दूर-पार भी न थी, फिर भी वह दौड़ धूप कर रहा था। एक दिन मेरे मित्र जगू भाई मिले। वह भी रायबहादुर के लिए भाग दौड़ कर रहे थे। उस तीसरे उम्मीदवार की बात चली तो बोले, 'जी हाँ उस बेचारे को बचपन से बिल्ले लगाने का शौक है अब किस्मत की बात है कि लगे न लगे।

वह चले गये और मैं सोचता रहा कि यह बिल्ला लगाने की बात खूब कही उन्होंने। आदमी बिल्ला लगाकर लोगों की निगाह में चमकना चाहता है नेता बनना चाहता है पर *क्या सचमुच बिल्ला इतनी बड़ी चीज़ है कि* जिसकी छाती पर लग जाय, वही नेता हो उठे।

यह प्रश्न मुझे और आपको गहराई में उतरने का निमन्त्रण देता है, पर

मैं जानता हूँ कि आप इस समय गहराई में उतरने के मूड मे नही हैं और एक हल्की फुल्की बातचीत ही सुनना चाहते हैं।

"आपने कस जानी हमारे मन की बात ?" अच्छा यह पूछ रहे हैं आप! आपका प्रश्न उचित है और उसका उत्तर देने को तयार हूँ कि मैंने जादू से जान ली आपके मन की बात।

अरे, आप हँस रहे हैं। क्यो ? अच्छा इसलिए कि यह जादू की बात गप्प है लेकिन गप्प यह नही, हाँ मसखरी जरूर है। आपके प्रश्न का सही उत्तर यह है कि मन की बात मन सुन समझ लेना है ता आपके मन की बात मेरे मन ने सुन समझ ली और इस तरह मैंने जान लिया कि आप इस समय कोई गम्भीर विवेचना नही, हल्की फुल्की बात ही सुनना चाहते है।

तो आइए, फिर सेवा समिति क चुनाव की बात कर लें। दूसरे दिन फिर जगू भाई मिले, तो बोले 'लो वह हार गया भाई साहब पर गनीमत है, कि उसे अपने सिवाय किसी का वोट ही नही मिला।'

इसम गनीमत क्या है, यह तो बहुत बुरी बात है।'

"ना, बुरी नही यह बहुत अच्छी बात है क्योकि कमन्द का शुरू म ही टूट जाना अच्छा होता है। तब कमन्द तो टूटती है पर चोट कम लगती है। लेकिन ऊपर जाकर वह टूट तो वह तो टूटती ही है हड्डी पसली भी ले बठती है जस लाला छुट्टनलाल का हाल हुआ।"

"क्या हाल हुआ उनका ?'

"हाल! हाल क्या होगा बहाल हो गया। 2000 रुपय बचारा ने भाग दौड मे खच किये और 10 वोटो स रायबहादुर क मुकाबले हार गये। अब रात दिन दिमागी उधेडबुन म फॅस ख्याल का डिब्ब म और डिब्बे को ख्याले मे बरत रहते हैं कि यह करता तो उनका वोट मिल जाता और वह करता तो उनका।'

जगू भाई चले गय, तो मैं उनकी बात सोचता रहा। तभी मुझे याद आ गये उस्ताद अकबर। पद ऊचा, उम्र बडी, दूर तक नाम, हर तरह बडे, पर दिल के रेंगे रेंगे म बालको जसी चुलबुली मसखरियां। उनके पडोस म रहते थे एक बूढे मियाँ साहब। बटे पोतो स भरा घर माल-दौलत स भरी तिजोरियाँ, चार आदमियों म आवभगत, पर दिल सूना, क्योकि अपनी

जमात मे नेता बनने की धुन अधूरी।

इसके लिए जरूरी कि अंग्रेज गवर्नर से हाथ मिलाने का मौका मिले, उनके साथ वह चाय पी लें पर इसके लिए जरूरी कि वह कौंसिल के मेम्बर चुने जायें। उन्होंने दुआ माँगी—या खुदा, तूने जिन्दगी में सब कुछ दिया, बुढ़ापे में यह आखिरी मुराद पूरी कर और तब उन्होंने अपने दोस्तो से बात चीत की। दोस्तों ने शतरंज की तरह वोटो का हिसाब सामने फैलाया जोड देखे, तोड़ देखे, भाड़ देखे और जीत को शर्तिया बताया। बूढे मियाँ साहब का दिमाग सपनों से भर उठा। जिनमे मालाओ से भरे गले के नजारे थ, जलूसो के नजारे थे गवर्नर के साथ बठने-उठने के नजारे थे, कि नेता गीरी के नजारे ही नजारे थ। मियाँ साहब फूलकर कुप्पा हो गये और चुनाव के मोर्चे पर जा जमे।

खूब भाग दौड हुई। हर इलाके से उम्मीदो भरी रिपोर्ट मिली। चुनाव के दिन इन्तजाम भी बढ़िया रहा—दावत भी गाडियाँ भी। शाम को सब एक मत थे कि बूढे मियाँ जीत गये हैं और सचमुच वह खुद भी कौंसिल के मेम्बर होकर ही अपने पलंग पर सोए, पर तीसरे दिन वोटो की गिनती हुई। कुल सात वोटो ने नाव डुबा दी, वह गुम्बद के कंगूरे से धरती पर आ गिरे और कचहरी से कोठी इस तरह आये, जैसे वह न हो उनकी लाश हो।

उनका दिमाग दिल सुन्न हो गया और वह नहीं चाहते थे कि कोई उनके पास आय, उनसे बोले, पर हमदर्दी के नाम पर उनके घाव को उधेडने वाले बराबर आ-जा रहे थे। ऊबकर कोठी की छत पर जा बैठे और कह दिया कि आने वाला से कह दिया जाये कि वह घर पर नहीं हैं।

समय की बात है कि सबकी आँखो से ओझल जब मियाँ साहब अपनी छत पर बैठे थ उस्ताद अकबर ने अपनी छत से उन्हें देखा और एक पर्चे पर दो लाइनें लिखकर उन्हें भेज दीं। पर्चा मियाँ साहब तक पहुँचा और उन्होंने पढ़ा तो सुनकर छछून्दर हो गये। उसमें यह शेर लिखा था

> कौंसिल में अगर पुर्सिश न हुई
>
> मग्मूम न तुम ऐ यार रहो
>
> अल्लाह बुलाने वाला है
>
> मरने के लिए तैयार रहो!''

[illegible]
[illegible] (कविता संग्रह [illegible])
[illegible] (कविता संग्रह [illegible])
[illegible]

सचमुच आदमी जब नेता बनते-बनते रह जाता है तो आदमी की हालत मरने के लायक ही हो जाती है और आप सहमत होंगे जगू भाई की इस बात में कि नेता बनने की यह कमन्द जितने अधिक ऊँचे जाकर टूटती है, आदमी को उतना ही अधिक बड़ा धमाका सहना पड़ता है।

कभी कभी यह धमाका इतने अदभुत रूप में होता है कि जिस पर वह होता है, वह तो अधमरा हो ही जाता है, पर दूसरे लोग एक तिलिस्मी घटना की तरह उसे देखते रह जाते हैं। आपने सुनी होगी वह दो वोट वाली बात ! जी हाँ, जी हाँ वही पत्नी और बेटे की बात। इतनी अदभुत बात कि उपन्यास और सिनेमा की घटनाओं के जोड़-तोड़ भी मात मानें।

आपको नहीं मालूम ? अच्छा लीजिए मैं सुनाता हूँ। हमारे प्रजातन्त्री देश में एक सज्जन पालियामेंट का चुनाव लड़ने को खड़े हुए। अपने इलाके में उनका काफी मान था और एम० पी० होकर वह अपने नेतत्व पर राष्ट्रीय मुहर लगवा लेना चाहते थे। उन्होंने खूब धुआँधार प्रचार किया भाग दौड़ की और चुनाव के दिन भी उनके कैम्प में काफी भीड़ रही। ये दिमाग के जरा तेज थे और अपनी पत्नी तथा पुत्र से लड़े हुए थे। आपस में बनती न थी इसलिए चुनाव के कामों में भी इन्होंने उनसे बात न की। फिर भी पत्नी पत्नी ही होती है वह लाख लड़े, अपने पति का भला चाहती है।

कोई चार बजे शाम को उसने अपने बेटे से कहा—'भैया, तेरे बाबूजी ने हमारी बात नहीं पूछी, फिर भी चल हम दोनों उन्हें वोट दे आयें।" और माँ-बेटा पोलिंग पर पहुँचे। समय की बात बाबूजी भी उस समय उसी पोलिंग पर खड़े थे। जीत उनके दिमाग में भरी थी सो देखते ही इन दोनों पर बरस पड़े— 'अब आये हैं मुझ पर एहसान का टोकरा रखने जैसे मैं इन दोनों के वोट से ही नेता बन जाऊँगा। जाओ मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है।"

खुले आम हुई अपमान की इस गरम बारिश में वे दोनों ऐसे बहे कि उनके विरोधी के बक्से में अपने वोट डाल आये और हे राम, हे राम, जब चौथे दिन वोटों की गिनती हुई तो उन्हीं दो वोटों से उनके विरोधी ने उन्हें धारा थाने चित्त दे मारा। वह नेता बनते-बनते रह गये थे। भला जब वह अपनी पत्नी और पुत्र पर गरज रहे थे तो उन्हें क्या पता था कि वह अपने हाथों

जमात म नना वनने की धुन अधूरी।

इसके लिए जरूरी कि अंग्रेज गवनर से हाथ मिलाने का मौका मिल, उनके साथ वह चाय पी लें पर इसके लिए जरूरी कि वह कौंसिल के मेम्बर चुने जायें। उन्होंने दुआ मांगी—या मौला तू जिन्दगी म मरे कुछ ख्वा बुढ़ापे म यह आखिरी मुराद पूरी कर और तब उन्होंने अपने दोस्तों म बात चीत की। दोस्तों ने शतरंज की तरह वोटों का हिसाब सामने फैलाया ज देख तोड देख माड देख और जीत को यकीनी बताया। बूढ़े मियाँ साहब का दिमाग सपनों स भर उठा। जिनमें मानाओ स भर गले के नजारे थ, जलूसों के नजारे थ गवनर के साथ बठन उठन के नजारे थे, वह कि नेता गीरी के नजारे ही नजारे थ। मियाँ साहब फूलकर कुप्पा हो गय और चुनाव के मोर्चे पर जा जम।

खूब भाग दौड हुई। हर इलाके से उम्मीदों भरी रिपोर्ट मिली। चुनाव के दिन इन्तजाम भी बढ़िया रहा—दावत भी गाडियाँ भी। शाम को सब एक मत थे कि बूढे मियाँ जीत गय हैं और सचमुच वह खुद भी कौंसिल के मेम्बर होकर ही अपने पलंग पर सोए पर तीसरे दिन वोटों की गिनती हुई। कुल सात वोटों न नाव डुबा दी, वह गुम्बद के कगूरे से धरती पर आ गिरे और कचहरी स कोठी इस तरह आय जसे वह न हो उनकी लाश हो।

उनका दिमाग दिन सुन्न हो गया और वह नहीं चाहते थे कि कोई उनके पास आय उनसे बोल, पर हमदर्दी के नाम पर उनके घाव को उधेडने वाले बराबर आ-जा रह थे। ऊबकर कोठी की छत पर जा बठे और कह दिया कि आने वाला स कह दिया जाये कि वह घर पर नहीं हैं।

समय की बात है कि सबकी आँखों से ओझल जब मियाँ साहब अपनी छत पर बठे थे उस्ताद अकबर न अपनी छत से उन्हें देखा और एक पर्चे पर दो लाइनें लिखकर उन्हें भेज दीं। पर्चा मियाँ साहब तक पहुँचा और उन्होंने पढा तो भुनकर छछूँदर हो गय। उसमे यह शेर लिखा था

'कौंसिल म अगर पुशिस न हुई
मगमूम न तुम ए यार रहो
अल्लाह बुलाने वाला है
मरने के लिए तयार रहो।'

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रधान (कविता सग्रह 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सचमुच आदमी जब नेता बनते बनते रह जाता है तो आदमी की हालत मरने के लायक ही हो जाती है और आप सहमत होंगे जगू भाई की इस बात में कि नेता बनने की यह कमन्द जितने अधिक ऊँचे जाकर टूटती है, आदमी को उतना ही अधिक बड़ा धमाका सहना पड़ता है।

कभी कभी यह धमाका इतने अदभुत रूप में होता है कि जिस पर वह होता है, वह तो अधमरा हो ही जाता है, पर दूसरे लोग एक तिलिस्मी घटना की तरह उसे देखते रह जाते हैं। आपने सुनी होगी वह दो वोट वाली बात ! जी हाँ जी हाँ वही पत्नी और बेटे की बात। इतनी अदभुत बात कि उपन्यास और सिनेमा की घटनाओं के जोड़-तोड़ भी मात मानें।

आपको नहीं मालूम ? अच्छा लीजिए मैं सुनाता हूँ। हमारे प्रजातंत्री देश में एक सज्जन पार्लियामेंट का चुनाव लड़ने को खड़े हुए। अपने इलाके में उनका काफी मान था और एम० पी० होकर वह अपने मतत्व पर राष्ट्रीय मुहर लगवा लेना चाहते थे। उन्होंने खूब धुआँधार प्रचार किया भाग दौड़ की और चुनाव के दिन भी उनके कैम्प में काफी भीड़ रही। य दिमाग के जरा तेज थे और अपनी पत्नी तथा पुत्र से लड़े हुए थे। आपस में बनती न थी, इसलिए चुनाव के कामों में भी इन्होंने उनसे बात न की। फिर भी पत्नी पत्नी ही होती है, वह लाख लड़े, अपने पति का भला चाहती है।

कोई चार बजे शाम को उसने अपने बेटे से कहा—'भया, तेरे बाबूजी ने हमारी बात नहीं पूछी, फिर भी चल हम दोनों उन्हें वोट दे आयें।' और माँ-बेटा पोलिंग पर पहुँचे। समय की बात बाबूजी भी उस समय उसी पोलिंग पर खड़े थे। जो न उनके दिमाग में भरी थी, सो देखते ही इन दोनों पर बरस पड़े—'अब आये हैं मुझ पर एहसान का टोकरा रखने जैसे मैं इन दोनों के वोट से ही नेता बन जाऊँगा। जाओ मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है।"

खुले आम हुई अपमान की इस गरम बारिश में वे दोनों ऐसे बह कि उनके विरोधी के बक्से में अपने वोट डाल आये और हे राम, हे राम जब चौथे दिन वोटों की गिनती हुई तो उन्हीं दो वोटों से उनके विरोधी ने उन्हें चारों खाने चित्त दे मारा। वह नेता बनते-बनते रह गये थे। भला जब वह अपनी पत्नी और पुत्र पर गरज रहे थे तो उन्हें क्या पता था कि वह अपने हाथों

अपने नेतत्व की पसलियाँ तोड रहे है।

चुनावो व इतिहास म इस तरह का दूसरा ममस्पर्शी सस्मरण मिलना मुश्किल है। जी हाँ, मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि उस परित्यक्ता पत्नी का सस्मरण भी मजेदार है। उन्हे बडा घमण्ड था कि चुनाव मे मेरा मुकावला कोइ नही कर सकता। उन्ह यह भी भरोसा था कि चुनाव के बाद वह मत्री हो जाएँगे और अपने राज्य के नेताओ की पक्ति म जा बठेंगे, पर ठीक समय उनकी परित्यक्ता पत्नी उनक मुकावल चुनाव म खडी हो गयी और उसन चारो ओर एक पोस्टर चिपकवाया जिसम मोटे-मोट अक्षरो मे लिखा था "वोटर भाइयो जो आदमी अपनी पत्नी से किय वादो मे बेवफा निकला क्या वह आपक प्रति वफादार रह सकता है ?"

और आपको तो मालूम ही है कि इस पोस्टर ने उन्हे ऐसा हराया, ऐसा छकाया कि वचारे जमानत तक से हाथ धो बैठे। वही जगू भाई की बात कि नेता बनने की उनकी कमन्द एकदम मुडेर क पास जा टूटी और धमाक के साथ वचारे लोटत नजर आय।

तो क्या मतलब इन सब बातो का ? इन सब बातो का मतलब यही कि जीवन म मसला नेतत्व का हो या व्यापार धन्धे का, उसम असफलता का झटका आना मामूली बात है पर यह झटका आरम्भ म ही आये तो अच्छा है जसा कि जगू भाई ने कहा था।

आरम्भ म असफलता मिलन से तो आदमी का मन टूट जाता है। फिर आरम्भ मे आदमी के पास पूरे साधन भी नही होते हिम्मत भी कच्ची होती है। उस समय सफलता मिल तो मन बढ जाता है और आग चल कर आने वाले असफलता के झटके को झेलन की भी ताकत आ जाती है। इस हालत मे आपकी यह बात कि असफलता का झटका आरम्भ मे ही आ जाय तो अच्छा है, बडी अजीब बात है।"

आपकी बात म काफी जान है यह मैं मानता हूँ पर आप बात को ऊपर ऊपर से न छुएँ और उसकी तह म उतरें, तो उस सचाई को पा लेंगे जो जगू भाई की बात मे है। वह सचाइ यह है कि सफलता के लिए नम्बर एक आवश्यकता है विवेक की। विवेक एक लालटेन है जिसकी रोशनी मे हम अपनी राह को साफ साफ देख सकते हैं–किधर चलना है, किधर नही, किधर

खाई-खड्डा है, किधर सभलल। फिर यह भी कि कितना चलना है, किनके साथ चलना है, कब कहा रुकना है। आरम्भ मे आदमी स्वप्नदर्शी होता है। स्वप्न जीवन मे आवश्यक है, पर स्वप्न की पुत्री है लालसा और वह विवेक को दुत्कारती है, जिसम सम्भव असम्भव का भेद नान नष्ट हा जाता है और इससे गुड गोबर म भेद नही रहता। आरम्भ की सफलता स्वप्न को विशाल बना देती है, लालसा को सुरसा का मुह, बस फिर कल्पना ही यथाथ दीखने लगनी है और आदमी अपनी ताकत तोले विना ऐसे बीहड वन म घुस जाता है कि कही का नही रहता।

एक बात इससे भी गहरी है जिस पर आपन शायद ध्यान नहीं दिया। वह यह कि आरम्भ की असफलता आदमी को तराजू पर तोल देती है और वह या तो चादर की लम्बाई देखकर पर फैलाना सीख लेता है या तराजू के दायें पलडे का बोझ आँककर बायें पर बाट रखना।

फिर उठने उठन इस पर भी तो ध्यान दीजिए कि आरम्भ की असफलता को सफलता मे बदलने के लिए आदमी एक नही अनक प्रयत्न कर सकता है, पर अन्त की असफलता तो एसा जहर है जिसकी दवा ही नही। और लो छोडो इन सब बाता को सिफ इस बात पर ध्यान दा कि आरम्भ की असफलता स्थायी हो तब भी आदमी जसे का तसा रह जाना है पर अन्त की असफलता स तो फिर वैसा भी नही रहता।

तो अब समझे आप हमारे जगू भाई की बात ?

न इधर न उधर

• • •

महाभारत का युद्ध आरम्भ हो रहा था। हो क्या रहा था, हो ही गया था।

फिर वह युद्ध न था गृह-युद्ध था। आज के मित्र-सम्बन्धियों का दल शत्रुओं के रूप में आमने-सामने होना था। सबका युद्ध का निमन्त्रण दोनों ओर से जा चुका था। कुछ इधर आ रहे थे, कुछ उधर छावनियाँ पड़ गयी थीं छावनियाँ भर रही थीं।

सहसा खबर आयी कि शल्य पाण्डवों की तरफ आ ही रहे थे कि दुर्योधन ने मार्ग में दो पड़ाव आगे बढ़कर उन्हें अपने साथ ले लिया। शल्य बहुत अच्छे सारथी थे और कृष्ण उन्हें पाण्डवों के साथ चाहते थे, पर अब क्या हो? हो ही क्या सकता था? पर कृष्ण जल्दी से हार मानने वाले न थे-"वह वहीं रहें पर हमारा भी कुछ काम करें।'

और कृष्ण ने पाण्डवों को पढ़ाया। वे जाकर शल्य से मिले और बताया कि वे न्याय पर हैं, दुर्योधन अन्याय पर। शल्य ने उनकी बात मानी, उन्हें सहानुभूति दी पर वह वचन बद्ध हो चुके थे, विवश थे। तब उनसे कहा गया आप अपना वचन भंग न करें दुर्योधन के ही साथ रहें, और शान से कर्ण के सारथी का स्वीकृत कार्य निबाहें पर जब-जब कर्ण निश्चित स्वर में अपनी विजय की निश्चित बात कहे—युद्ध में अपने को अजेय बताए—आप एक वाक्य कह दें—"हाँ कर्ण, युद्ध में तुम्हारा मुकाबला करने का बल किसी में नहीं है, पर अर्जुन से मुझे डर लगता है। तुम सावधान रहना।"

शल्य ने यह बात मान ली और ऐसा ही किया भी। विशेषज्ञों का मत है कि शल्य द्वारा बार-बार कहे इस एक वाक्य से ही कर्ण की पराजय हुई।

1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अग्रधान (कविता संग्रह 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

असल मे यह एक मनोवैज्ञानिक रहस्य है कि शल्य के वाक्य से कर्ण की अजेय दृढता के भवन मे दुविधा की दरार पड गयी, उसके मन की असहायता मे संशय की दीमक लग गयी और इस प्रकार कर्ण मार-मार के दाव से मार-बचाव के दाव पर आ गये। उसकी आधी शक्ति मारने म और आधी अपने बचाव मे लग गयी, उसकी एकाग्रता खण्डित हो गयी। उसके आत्म विश्वास रूपी वट वृक्ष की जड हिल गयी और हिली जड का पेड संघर्ष म कब तक ठहरेगा, उसे गिरना था, वह गिर गया।

मुझे कुश्ती देखने का शौक है—शायद मेरी शारीरिक निर्बलता की ही यह मानसिक प्रतिक्रिया हो। एक बार मैं एक बडा दंगल देखने गया। कई अच्छे पट्ठे उसम शामिल हुए थे। कई जोडियाँ बहुत शानदार थी। मित्र भी साथ थे। दंगल आरम्भ हुआ। पट्ठे अखाडे म उतरे दोनो ने एक-दूसरे को आँका तौला, सलामी हुई, नारे लगे—या अली, जय बजरंगबली और यह पहला पहला झपट्टा एक का दूसरे पर कि एक बार दोनो ही हिले गिरते-गिरते बचे और एक-दूसरे की तराजू पर तुल गये। झटका दोनो ने एक-सा खाया पर एक ने सोचा—'अब, कहाँ तक बचेगा, अबकी बार तुझे तोडकर रख दूगा।' दूसरे ने सोचा—'कम्बख्त लोहा है, मुझे जरा सावधान रहना चाहिए।

मैंने अपने कल्पना यंत्र से दोनो की बातें सुनी और अपने मित्रो से कहा—'इस कुश्ती म यह (सावधान रहने वाला) नहीं जीतेगा।' इसी तरह जोडियाँ आती रही, मैं भविष्यवाणी करता रहा और वह सच होती रही। दंगल समाप्त हुआ, हम सब एक जगह चाय पीने लगे। तभी एक मित्र ने विस्मय से पूछा, "भाई साहब, कुश्ती के बारे म आप सौ फीसदी सही भविष्यवाणी किस तरह करते हैं यह बताइए।'

यह प्रश्न औरो के मन मे भी था, इसलिए मैंने कहा कि मैं जादू स जान लेता हूँ यह बात। तो कई मित्रो के मुह से एक साथ निकला, "जादू म ? आप जादू जानते हैं ?" थोडी देर मैंने उनसे मसखरी की और तब बताया उन्हे अपना जादू—"कुश्ती म वह जीतता है जिसे अपनी जीत का पूरा अखण्ड विश्वास होता है क्योकि ऐसा आदमी विरोधी पर पूरी ताकत से टूटता है। इसके विरुद्ध जिसका विश्वास अखण्ड नही होता वह विरोधी पर

खाऊँगा।" 25 प्याज उसके सामने रख दिय गय, पर तीसरे प्याज म ही उसका सिर झल से भर गया और पांचवें प्याज़ तक ता आंख-नाक स पानी बहने लगा।

विह्वल होकर बेचारे न हाथ जोड, 'सरकार, मैं प्याज नही खा सकता, आप जूते ही लगवा दें।

राजा के आदेश से सिपाही जूता ले आया और लगे पडने, पर तीसरे पर मुह भर्राया, पाचवें पर पुटपुटी टसटस करन लगी। विह्वल होकर बेचारे ने हाथ जोडे, "सरकार मैं जूत नही सह सकता, प्याज ही खा लूगा।

बस इसी तरह वह अपना निणय वदलता रहा और उसन 25 प्याज तो खाये ही, 20 जूते भी उसे खाने पड। क्या? इसलिए कि दुविधा के कारण वह सही निणय नही कर पाया। कहा तो मैंन कि दुविधा मनुष्य की सकल्प-शक्ति का कैंसर है।

मीठे बोल के लिए भाषा म एक मुहावरा ह कि उसक मुह स फूल झरत हैं पर जवाहरलाल नेहरू के व फूल मीठे बोल तो हात ही थ, अक्सर काम के बोल हो जाते थे।

ऐसा ही वाल हैं यह—समस्याओ का मुकाबला मजबूत दिल और सच्चे आशावाद स किया जाना चाहिए।

मैं इस वाक्य को उल्टा कर देना चाहता हूँ—सच्चे आशावाद और मजबूत दिल से समस्याओ का मुकाबला किया जाना चाहिए।

सच्चे आशावाद स मजबूत दिल बनता है मजबूत दिल स सच्चा आशावाद नही। सच्ची आशा क्या? जिस आशा मे यह दुविधा हो कि वह पूरी होगी या नही वह झूठी आशा है और आशा की यह दुविधा ही दिल की कमजोरी है। इसलिए हम दुविधा से वचें, तो हमारी आशा सच्ची होगी और तभी हम समस्याओ का ठीक-ठीक मुकाबला कर सकेंगे।

जवाहरलाल नेहरू ने अपन बोल को गीता के तत्त्वज्ञान से जोडा तो उसकी मार्मिक व्याख्या ही कर दी "गीता ने जो यह उपदेश दिया है कि हमें परिणामो की चिन्ता किये बिना ही मजबूत हृदय से काय करत रहना चाहिए तो आखिर उसमे कुछ तत्त्व तो है ही।"

हम परिणामो की चिन्ता क्यो न करें? इसलिए कि यह चिन्ता धीर-

धीरे दुविधा का रूप धारण कर लेती है, दुविधा से दिल कमजोर हो जाता है और कमजोर दिल से कोई काम पूरा हो ही नही सकता—दुविधा में दोनों गय माया मिली न राम।

हम परिणामों की चिन्ता मे क्ये बचें ? इस आवश्यक प्रश्न का उत्तर गीता ने ही दिया है—"न हि कल्याणकृत् कश्चित दुर्गति तात, गच्छति।" कल्याणकारी कर्म करनेवाला आदमी कभी असफल नही होता, उसकी कभी दुर्गति नही होती।

तो चिन्ता की, सोचने की, यह बात ही नहीं है कि हम सफल होंगे या नही सोचना तो यह है कि हमारा कार्य कल्याणकारी हो, शुभ हो, रचनात्मक हो। वेद की भाषा मे—"तन्मे मन शिव सकल्पमस्तु"—मेरा सकल्प सदा कल्याणकारी हो, क्योंकि सकल्प शिव हो, कल्याणकारी हो तो फिर और सोचने की कोई बात ही नही है—साफ साफ यह है कि फिर मन मे दुविधा के उपजने का अवसर ही नही है और जिसका सम्भावना ही नही तो उसका होना सम्भव कहाँ ?

दुविधा मन म न आये, न उपजे, यह असम्भव है। वह उपजेगी और हमारे सामने आयगी, पर हमारे व्यक्तित्व की चरित्र की कसौटी यह है कि हम सामने देखकर भी उसे स्वीकार न करें और अपन काम मे जुटे रह, कदम-कदम आगे बढते रह। नीतिकार ने इस कसौटी का व्याकरण ही चार पक्तियो मे रख दिया है

> प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीच
> प्रारभ्य विघ्न विहता विरमन्ति मध्या
> विघ्न पुन पुनरपि प्रतिहन्यमाना
> प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति।

किसी काय को आरम्भ करने का विचार करते ही दुविधा आ खडी होती है— अरे भाई यह काम कहाँ सफल हो सकता है, यह दिक्कत है वह परेशानी है—ना ना, इस झमेले मे मत पडो और आदमी उस काय को करने का इरादा छोड देता है। नीतिकार की कसौटी कहती है यह निम्न श्रेणी का—थडक्लास आदमी है मध्यम श्रेणी का—सकण्ड क्लास आदमी है वह, जो आने वाली परेशानियो के चक्कर में न पडें, उनसे न डरे और

काय आरम्भ कर दे, पर आरम्भ होने के बाद की राह भी तो सरल नही है—आज यह अभाव तो कल वह दिक्कत और कह कि रोज एक न एक अड़चन। वह किसे सुलझाय, किसे निपटाय, आखिर एक दिन दुविधा जीत जाती है, वह हार जाता है और काय को बीच मे रोक देता है।

इस प्रकार निम्न और मध्यम श्रेणी के व्यक्तित्व का, चरित्र का, मनुष्य का स्वरूप बताकर कसौटी कहती है कि उत्तम श्रेणी का–फस्ट क्लास–मनुष्य वह है, जो राह मे आनेवाली दिक्कता-परेशानियो से घबराता नही, दुविधा म पडता नही, रुकता नहीं, उन्हे सुलझाता निपटाता आगे बढता रहता है, जब तक कि मजिल नही पा लेता, सफल नही हो जाता।

"इस तरह पर पार की हैं मजिलें,
हम गिरे, गिर कर उठे, उठकर चले।"

शल्य जमे नादान दोस्ता की सलाह के झरोखे से आये या निराशावादी मित्रो की समझदारी के द्वार से या फिर प्याज और जूते के द्वन्द्व मे उपजी निणय की कमजोरी से दुविधा सकल्प की गहराई और इरादे की बुलदी को तहस-नहस करनेवाली दलदल है। उसम फँसा आदमी दिमाग़ी भूलभुलयाँ म घूमता भटकता रहता है—इधर या उधर, उधर या इधर और परिणाम होता है न इधर न उधर।

अपना बोझ उतार रे भैया

• • •

अंग्रेजी के विश्वविख्यात लेखक श्री स्टीवेंसन बस मे बैठ एक पुस्तक पढते जा रहे थे। उनका स्थान आया, तो वह उतर गये। उनके सामने की सीट पर एक दूसरे नागरिक बैठे थे। वह जानते थे कि यह स्टीवेंसन हैं। उन्होंने देखा कि स्टीवेंसन अपनी पुस्तक बस म ही भूल गये हैं। पुस्तक उन्होंने उठा ली।

पुस्तक एकदम नयी थी और काफ़ी मूल्य की थी। उनमे नागरिकता का भाव जागा, वह पुस्तक लेकर बस से उतर गये और टक्सी लेकर उनके घर गये, कहा—'मिस्टर स्टीवेंसन, यह लीजिए अपनी पुस्तक आप इसे बस मे भूल आये थ। मैंने इसे उठा लिया और सोचा, इसे आपको दे आऊँ और इस बहाने आपसे परिचय का सौभाग्य भी प्राप्त कर लू।"

स्टीवेंसन ने प्रसन्नता से कहा, 'आइये, इस घर म आपका स्वागत है, पर पुस्तक मैं बस मे भूलकर नहीं आया था जान-बूझकर छोड आया था, जैसा कि मैं हमेशा ही जहाँ पुस्तक पूरी होती है छोड देता हूँ—वह जगह बस हो, पार्क हो या ट्रेन हो।

आश्चर्य से नागरिक ने पूछा, "इतनी अच्छी और नयी पुस्तक आप जानबूझकर क्या छोड आये और हमेशा छोड देते हैं ?'

सरलता से स्टीवेंसन बोले मेरे मित्र, जीवन पर पहले ही बहुत-से बोझ लदे हैं इन पुस्तको का बोझ उस पर और कहाँ लादू ?"

स्टीवेंसन का यह संस्मरण क्या है ? 1930 के स्वतन्त्रता-आन्दोलन की बात है। मैं एक दिन जेल की बैरक म पडा सो रहा था। एक आवाज

1700)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
धरधान (कविता संग्रह 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सुनकर मैं जाग पड़ा। उतरती रात थी। कोई पहरेदार बाहर गा रहा था, "अपना बोझ उतार रे भैया"। गीत की पंक्तियों मे आगे कहा गया था कि "क्रोध, ईर्ष्या, घृणा और लिप्सा मनुष्य की आत्मा पर लदे बोझ हैं, इन्हें उतार फेंक," तो स्टीवेंसन का संस्मरण भी कहता है कि अपना बोझ उतार रे भैया और पहरेदार का गीत भी यही कहता है कि अपना बोझ उतार रे भैया।

विज्ञान में बोझ को उतारने के यन्त्र का नाम है क्रेन और धर्म में यानी जीवन मे बोझ को उतारने के मन्त्र का नाम है क्षमा।

क्रोध आता है, उतर जाता है। वह कोई स्थायी चीज नहीं है। वह तो भावना का उफान है। ईर्ष्या और घृणा उसे द्वेष का रूप देकर स्थायी करने का प्रयत्न करते हैं। क्षमा उस क्रोध को ईर्ष्या और घृणा के हत्थे चढ़ने से बचाकर शान्त कर देनेवाला जल का छींटा है।

क्रोध को पी जाना, अपने स्वभाव की प्रसन्नता को उसका शिकार न होने देना जीवन की श्रेष्ठ कला है। प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के एक तेजस्वी साथी के रूप में मैं आदर भरा प्यार करता था, पर एक शासक के रूप में उनका आलोचक था। मेरा सौभाग्य यह था कि वह मेरी प्रत्येक आलोचना को स्वयं पढ़ते थे। कभी-कभी तो उस आलोचना पर हँस पड़ते थे, पर कई बार ऐसा भी हुआ कि बहुत भभके भड़के और कई बार ऐसा भी हुआ कि खूब तड़पे, पर भभक हो, भड़क हो या तड़प हो, अन्त सबका यही होता था कि अपने हाथ से दान देते थे, कन्धे थपथपाकर विदा देते थे। ऐसा एक बार भी नहीं हुआ कि हम लोग अप्रसन्नता के वातावरण मे एक-दूसरे से पृथक हुए हों।

मैं अक्सर सोचता था कि पण्डितजी कितने श्रेष्ठ हैं जो अपने क्रोध को कभी आग नहीं बनने देते और उसे सदा फुलझड़ी ही बनाकर छोड़ते हैं। एक बार मेरे मन मे आया था कि पण्डितजी उस महिला की तरह हैं, जो मैला बुरका ओढ़कर मंच पर आये, पर नाटकीय ढंग से पल भर में बुरका उतार फेंके और स्वस्थ, सुन्दर, सौम्य, सुरभित व्यक्तित्व बन दर्शकों के सामने उपस्थित हो।

यह क्षमा का सौन्दर्य है और क्षमा है हृदय-पट की सफ़ाई, स्वच्छता।

है, पर प्रतिहिंसा का अभाव स्वयं हिंसा को जजर कर देता है। इस प्रकार क्षमा अहिंसा की बेल का सर्वोत्तम पुष्प है।

मेरे जीवन का सर्वोत्तम भाग एक राष्ट्रीय सस्था के द्वारा सेवा करने में बीता है। यह सस्था एक ऐसे मनुष्य के मकान म किरायेदार है, जिसके लिए पैसा ही परमात्मा है। सस्था के बाहर की सावजनिक जमीन पर मैंने एक बार चारदीवारी बना दी, जिससे कायकर्त्ताओ को धूप और छोटी-सी फुलवारी मिल सके। मेरे पास के किरायेदार मुझसे पहले अपने हिस्से में सामने ऐसी ही चारदीवारी बना चुके थे। मेरी चारदीवारी का एक भाग मकान मालिक ने अपने नौकरो से गिरवा दिया, जिससे उस तरफ की फुलवारी भी खराब हो गयी।

यह मेरा अपमान था। अपमान म शान्त रहना मेरी मनोवत्ति बन गयी है, पर मेरे लिए यह माया के मद स उन्मत्त एक धन-पशु द्वारा एक राष्ट्रीय सस्था का अपमान था। मैं प्रतिहिंसा से भर उठा, पर मुझे इतना विवेक रहा कि जवाब मुझे पशु की नही मनुष्य की भाषा म ही देना है।

मैंने एक साइन बोड बनवाया, "एक धन पशु के धन-गव का ताण्डव यहाँ देखिए। समय 4 30 बजे शाम प्रतिदिन।' और अपने पुत्र से कहा कि आज मैं बाहर जा रहा हूँ कल शाम तक लौटूगा। यह साइनबोड परसो बाहर दीवार पर लग जाये और शाम को 4 30 बजे प्रतिदिन लाउडस्पीकर तैयार मिले। मेरी योजना थी कि प्रतिदिन राह चलतो की भीड जोडकर विरोधी का लोकलाज के तारकोल मे डुबोऊँगा—यह तो था ही कि मेरा शब्द मकान-मालिक के घर मे भी गूँजेगा।

मैं बाहर चला गया, पर मैंने अनुभव किया कि मेरा रोम रोम हर क्षण उफन रहा है। मेरे मन की शान्ति भग हो गयी, क्योंकि मुझे हर क्षण लगता कि मैं लाउडस्पीकर पर उसकी धज्जियाँ उडा रहा हू। सचाई यह है कि मेरे भावी भाषण मेरे ही काना मे गूजते रहते और मुझे ही झझोडते रहते।

दूसरे दिन रात मे मैं लौट आया और तीसरे दिन सुबह सोकर उठा, तो मेरे पुत्र ने याद दिलाया कि आज आपका जन्मदिन है। मैं स्नान कर अपने पूजा-कक्ष मे आया, तो भीतर प्रश्न था कि जन्मदिन कसे मनाऊँ? प्राथना करते-करते मेरे भीतर अठखेलियाँ करता मेरे साधुमना पिता का रक्त जोत

गया और एक अद्भुत प्रेरणा से मेरा रोम रोम पुलकित हो गया।

कपड़े पहनते ही मैं अपने मकान-मालिक के घर जा पहुँचा। वह मुझे देखकर चौंके, पर मैंने कहा, "आज मेरा जन्मदिन है। सोचा, इसे लड़ाई से नहीं, प्यार से मनाना चाहिए, इसलिए आपके पास आया हूँ।" उन्होंने खुशी-खुशी मुझे चाय पिलाई और मैं सदा की तरह शान्त भाव से अपने लेखन-कक्ष में जाकर लिखने लगा।

उस दिन मैंने लिखा "अपना बोझ उतार रे भैया का असली अर्थ क्या है और विरोधी-अपराधी को बिना माँग क्षमा देकर मन का बोझ किस तरह हल्का होता है, कितना हल्का होता है, यह मैंने आज जाना।"

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

काचन और काँच

• • •

उत्तर प्रदेश का एक नगर, उसका एक समृद्ध परिवार, उसके दो भाई। बाप मरा, तो बँटवारे की बात आयी। महीनो हो गये लिस्टें बनते-बनाते, पर ऐसी लिस्ट न बन पायी, जिस पर दोना हस्ताक्षर कर सकें।

"यह माँ के गले का हार तू कैसे ले लेगा ? माँ की हार्दिक इच्छा इसे मेरी भावी पत्नी को देने की थी। तुझसे तो उसकी कभी बनी ही नही।"

"वह सबसे ऊपर का कमरा तुझे दे दू, तो क्या मैं घुटकर मर जाऊँ ? तेरे पास पश्चिम की तरफ का बरामदा तो है।"

"गवनमेट गाडन के पास की जमीन का बँटवारे से क्या सम्बन्ध, वह तो पिताजी ने ली ही मेरे लिए थी ?"

'ठीक है, वह जमीन तू ले ले, पर दूकान पर दाँत मत गडा। उसमे तूने कभी काम नही किया। मैंने खून पसीना एक कर उसे बनाया है। सारा बाजार यह बात जानता है।"

बस यो ही कथोपकथन चलते रहे और दोनो भाई किसी एक जगह न आ सके। अन्त मे बात पचा पर आयी और जसे-तैसे पच चुन गये। पच जो कह दे, सो माय। पचो ने दोनो को हवेली से बाहर किया और द्वार पर पाँच ताले लगा दिये, उन दोनो भाइया ने भी अपने ताले लगा दिये—यों द्वार पर सात ताले—कल होगा बँटवारा।

दोनो भाई निश्चिन्त कि अब कोई अकेले भीतर नही जा सकता, पर वे भी तो इसी समाज के सदस्य हैं, जो द्वार से कभी घर मे प्रवेश नहीं करते, यानी चोर महाराज। रात म वे जाने किधर से उतर गये भीतर और

आराम से सब मालमता लेकर प्रस्थान कर गये।

दूसरे दिन आये पच, खुले ताले, खुला द्वार और घुसे भीतर ये साला, पर बाँटें क्या ? बँटवायें क्या ? खडी है खाली हवेली, पडे हैं खाट-खटाल अनबोले। पचो न कहा, ' लाओ तुम्हारे कमरे तो बाँट दें, जिससे तुम दोनो शान्ति से रह सको।

बडे भाइ के भीतर एक दीपक सा जल उठा, "मुझे क्या करन हैं—कमरे। मैं तो अब बम्बई चला जाऊँगा और वही चार पैसे की कर खाऊँगा। तू अपना घर बसा, आराम स रह।"

जले दीप स दीप, छाटा बोला "दूकान मेरी नही, आपकी है। आज से आप ही उसपर बठें। मैं घर बनाकर बैठूँ और आप ढाबो मे रोटी खाते फिरें, मुझे तो नरक म भी जगह न मिलेगी, भाई साहब !'

बडे भाई का दिल भर आया, तो छोटे की आँखें छलक पडी—दोनो एक-दूसरे से लिपट गय। पच भौंचक्के, तो पडोसी अवाक।

पर सुख द्रोही एक पडोसी न व्यग स कहा, 'यह भरत मिलाप का नाटक पहले ही कर लत तो क्या हज था।'

सहृदय पच न कहा, "भूले भटके का सही रास्ते पर आ जाना और भी बडी बात है। अब यह भरत मिलाप का नाटक नही, राम भरत का मिलाप ही है।'

घटना अपन मे सुदर है और दो सिद्धात सूत्र हमे देती है—

1 हम प्राय किही छोटी छोटी चीजो के लिए अत्यत महत्त्वपूण चीजो का नाश करत रहत है।

2 यदि हमम सुमति जाग्रत हो तो बुरी स बुरी घडियो मे भी और कम से कम म भी हम शान्त, सुखी और सतुष्ट हो सकते हैं।

● ●

बँटवारे की ही एक घटना और है। दो भाइयो मे बटवारा हुआ। जमीन-जायदाद बँट गयी, हवेलिया बट गयी, सामान बँट गया, बच गया एक पत्थर का खरल। उनके पिता उस खरल म अपनी दवाई घुटवाया करते थे। बडे भाई ने कहा, ' यह खरल पिताजी को बहुत प्रिय था। उनकी निशानी के रूप म इसे मैं अपने पास रखूगा। छोटे भाई ने कहा, "तुम तो हमेशा

1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरधान (कविता सग्रह 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

पिताजी से लडते झगडते रहे, पर आज दुनिया को दिखाने के लिए उनकी निशानी रखना चाहते हो। वाह जी वाह, यह खरल मैं तुम्हे कैसे दे सकता हूँ!"

बडे भाई ने कहा, "आज तो तू बडा श्रवणकुमार बन रहा है पर वह दिन भूल गया, जब पिताजी को बीमार छोड, तू अपनी नयी दुल्हन के साथ हरिद्वार चला गया था।"

बस दोनो यो ही एक-दूसरे को कहते सुनते रहे और खरल का मामला उलझता चला गया। नगर के वैद्यराज एक दिन दोनो के पास आकर बोले, "जब जमीन, जायदाद, मकान, सामान सब का बँटवारा हो गया है तो आप एक खरल के लिए क्या बात बढाते हैं? इस खरल को मेरे औषधालय मे रख दीजिए। वहाँ यह सुरक्षित रहेगा और आप दोनो के काम आयगा।" बात सदभावना की थी, पर किसी के गले न उतरी और दोनो मुकद्दमे मे उलझ गये।

मुकदमा चलता रहा लुटाई होती रही, घर का धन गया, जमीन-हवेली बिकी, सामान बिका—दोनो कगाल हो गये, और जिस दिन मुकदमा हाई-कोर्ट मे पेश हुआ, दोनो म से किसी के पास भी वकील खडा करने को पैसा नही था। दोनो खुद जा खडे हुए—ढीली चाल, बुरा हाल। जज ने फसला दिया—'खरल पिता की सम्पत्ति है और इस पर दोनो का समान अधिकार है इसलिए इसे तोडकर आधा-आधा दोनो को दे दिया जाये।"

ये दोनों बर्बाद हो गये और वह खरल, वह भी बर्बाद हो गया। उनके पास सब कुछ था, पर उनमे से कोई बिना उस खरल के रहने को तयार नही हुआ, अब उनके पास कुछ नही था, पर वे दोनो बिना उस खरल के रहने को तयार थे। यही बात है कि हम प्राय कितनी छोटी छोटी चीजो के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चीजो का नाश करते रहते हैं।

• •

एक देशव्यापी चुनाव की बात है। एक राजनतिक दल मे मेम्बरी के उम्मीदवारो की बाढ आ गयी। सीट एक तो उम्मीदवार चार—दो से कम तो कहीं भी नही। बडो ने कहा—"जो योग्य और ईमानदार है उसे सीट देंगे।' बस फिर क्या था, हर एक दूसरे को बेईमान सिद्ध करने म जुट पडा

और कोई 20 आलमारी भरा ऐसा बीभत्स साहित्य तैयार हुआ कि नरक का दरोगा भी कान छूकर बैठ गया।

एक बड़े नेता के पास मैं बैठा था। वह निर्णायक शक्ति थे। उनके उम्मीदवार उनके पास आते, उनके पैर पकड़ते, खुशामद करते और रो पड़ते, पर सीट एक, उम्मीदवार अनेक, तो निश्चय ही अनेकों को निराश होना था। मैंने पूछा, "बुजुर्गवार, ये ना उमीदे क्या करेंगे, इनकी बेचनी तो क्लाइमेक्स पर है?"

बहुत गम्भीर होकर वह बोले, "कुछ तो विरोधियों से मिलकर खड़े होंगे और कुछ गुपचुप चोट मारेंगे, पर मुझे फिक्र उनका नहीं है। मुझे तो फिक्र यह है कि इनमें से 10 15 जरूर आत्महत्या कर लेंगे और विरोधी लोग उनकी लाशों को नचाकर नफरत की जो आग जनता में फैलायेंगे, उसे झेलना मुश्किल हो जाएगा।'

सुनकर मैं सुन्न हो गया, पर बाद में देखा कि एक भी ना उमीदे ने जहर नहीं खाया और एक भी लाश नहीं नाची। प्रश्न यह है कि जब ये लोग बिना मेम्बरी के जी सकते थे, तो पहले ही ये क्यों शान्त न हो गये, और एक छोटी बात के लिए महत्त्वपूर्ण वस्तु का नाश क्या करते रहे?

● ●

एक लोकोक्ति है—धेले की गुड़िया, टका लहँगा सिलाई का। अब तो धेले का सिक्का देश में समाप्त हो गया पर जब वह था, तो उसका मोल था आधा पैसा, तो आधे पैसे की गुड़िया के लिए लहँगे की सिलाई दो पैसे लगाने का क्या अर्थ? फिर सिलाई ही इतनी है तो लहँगे का कपड़ा और चुनरी की लागत क्या होगी? मतलब यह कि यह अनुपात ठीक नहीं है।

एक दूसरी लोकोक्ति है—जसी तेरी नाचकूद, वसी मेरी वारफेर। जब कोई स्त्री नाचती है, तो दूसरी स्त्रियाँ उसके सिर से चवन्नी अठन्नी रुपया घुमाकर किसी गरीब को देती हैं। इसे वारफेर कहा जाता है।

एक नयी बहू नाची तो सास ने उत्सुकता से देखा पर बहू के नाच का सिर न पर। दूसरी बहुएँ रंग व्यंग से मुस्कराइं, तो सास भीतर ही भीतर कुनमुना उठी और उसने एक खोटा पैसा वारफेर कर नायन को दे दिया। भिन्नाकर बहू ने कहा, "खोटे पसे की वारफेर माँ जी?" जलभुनकर

1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
... सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सास बोली, "जैसी तेरी नाचकूद (नृत्य नही, नाचनुमा कूद) वैसी मेरी धारफेर।"

ठीक तो है, साधारण काम के बदले कोई असाधारण फल क्यो चाहे, सौ रुपये के मकान मे पाँच सौ रुपये की सजावट कौन करेगा ? ठीक वस्तु का ठीक मूल्य देना ही तो वास्तविक बुद्धिमत्ता है। ठीक वस्तु का ठीक मूल्य चाहना ही तो सच्ची व्यावहारिकता है। इन दोनो की कसौटी है यह कि हम समय पर परख पायें कि क्या हमे देना है और क्या हम लेना है ! दूसरे शब्दो मे हम अपने जीवन व्यवहार म द ले कर, तत्त्व ज्ञान को साधकर चले चलें।

लोककथा म यह तत्त्वज्ञान यो सुरक्षित है—एक था जाट। वह अपनी पत्नी के साथ गगा स्नान करने हरिद्वार गया। वह आनन्द स स्नान कर गगा तट पर खडा हुआ ही था कि एक ब्राह्मण आ पहुँचा और अपन स्वभाव के अनुसार बोला, "कुछ दक्षिणा दो यजमान।"

जाट अपनी मस्ती म था। उस यह बुरा लगा, पर कहे भी क्या ! धर्म की बात जो ठहरी। जरा सोचकर उसने कहा, "तू कसा ब्राह्मण है रे, कि यजमान के माथे पर विना चन्दन लगाये ही दक्षिणा माँगता है !"

ब्राह्मण धम के धागे मे उलझ गया, पर चातुय ने उस सहारा दिया कि उसने गगा के रेत का माथे पर तिलक लगाकर यह श्लोक पढा—

गगा जी का घाट है
अवसर सुभग महान
गगा जी की रेणुका
तू चन्दन करके जान !'

जाट अब निरुत्तर, पर उसने सोचा—यह ब्राह्मण तो बडा चलता-पुर्जा निकला कि अच्छा हाथ मार गया। इसे जरूर सबक मिलना चाहिए। उसने इधर उधर देखा तो एक छोटी-सी मेढकी किनारे पर तर रही थी। जाट ने उसे जल्दी से उठाकर ब्राह्मण के हाथ पर रख दिया और यह श्लोक पढ़ा

गगा जी का घाट है,
अवसर सुभग महान्

गगा जी की मेढकी

तू गऊ करवे मान।

ठीक है जैसी तेरी नाच-कूद वसी मरी वारफेर—जसा तेरा चन्दन, वसी मरी दक्षिणा। ब्राह्मण देने म कृपण तो लने म उदार, पर उसे अपना मुह तव दिखाई दिया, जव जाट यजमान न हँसकर उसके नहले पर दहला मार दिया। जा हाल ब्राह्मण का था, वही हम सवका है कि काम करत हैं कुमति के और फल चाहत हैं सुमति के—बटोरत हैं कूडा और चाहते हैं यह कि हमारा घर सग्रहालय की तरह सवके लिए दशनीय हा।

• •

फोड मोटर कम्पनी का मालिक एक मामूली आदमी की हैसियत से उठा और ससार का एक सबस बडा धनपति हा गया। या कह कि उसन अपना सारा जीवन धन कमान मे लगाया। दुनिया की दृष्टि मे वह विश्व का एक सफलतम मनुष्य है पर जब उससे पत्रकार ने पूछा कि आपके जीवन म अब तो कोइ अभाव नही है तो अत्यन्त दुखी होकर उसने कहा—"सिवाय धन के मेरे पास और है ही क्या सब अभाव ही अभाव है।"

पत्रकार को भौचक्का देखकर बूढे फोड ने कहा, "मैं धन कमाने में लगा रहा और मैंने अपना कोई मित्र नही बनाया। बिना मित्र के मेरा बुढापा सूना है नीरस है, बोझ है। यह बाझ इतना भारी है कि मैं अपना सारा धन देकर भी कुछ सच्चे मित्र लेना चाहता हू, पर मुझे अब पता चला है कि जिस धन के पाछे मैंने अपना सारा जीवन लगा दिया, वह इतना नगण्य और तुच्छ है कि मेरे चारा ओर खुशामदियो की भीड तो वह जोड सकता है, पर एक भी सच्चा मित्र मुझे नही दे सकता।"

अन्त म बहुत ही दुखी होकर फोड ने कहा, 'मैं कितना मूख हूँ, कि जीवन के अत्यन्त सुखदायी तत्त्वो को भूलकर उस धन के सग्रह मे लगा रहा, जो बाजार से कुछ मामूली उपयोग की चीजो को खरीद सकने के सिवाय और किसी भी काम का नही।

क्या मतलब हुआ इस सवका यही कि ससार का महान बुद्धिमान औरमहान उद्योगपति हेनरी फोड भी उन भाइयो की तरह ही था, जो एक नगण्य खरल के पीछे अपना सब कुछ गवा बठे।

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरघान (कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

• •

खुरासान का राजकुमार सुबह अपने राजभवन से शत्रु का परास्त करने क लिए युद्धभूमि की ओर चला, तो ऊटा के एक लम्बे काफिले पर उसका सामान लदा था।

दोपहर की लडाइ म वह हार गया और शत्रु उसका सब सामान लूट ले गये। अपने बावर्ची से शाम को उसन कहा, "बहुत भूख लगी है, कुछ खिला।"

गाश्त का एक टुकडा उसके पास था। इधर-उधर से लकड़ी बटोरकर उसने आग जलाई और मिट्टी की हडिया म उसे पकना रख वह चला गया कि शायद आसपास कोई खाने की चीज मिल जाए। तभी आया एक कुत्ता और वह उस हडिया को अपने मुह मे दबाकर चल दिया। राजकुमार ने यह देखा, तो दुख की इन घडियो मे भी उसे जोर से हँसी आ गयी और कुत्ते से वह हडिया छुडाते हुए उसने कहा—"वाह सुबह मेरे लिए इतना सामान जरूरी था कि उसे ढाने के लिए बीसो ऊँटो की जरूरत थी, पर शाम को मुझे सिर्फ एक ंडिया की ही जरूरत है, जिसे एक मामूली कुत्ता अपने मुह म दबाकर ले जा सकता है।"

दुर्योधन ने पाँच गाँव नही दिये पर पूरा साम्राज्य, पूरा वंश और स्वय अपना जीवन दे दिया। वही बात है कि हम प्राय कितनी छोटी छोटी चीजा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चीजो का नाश करते रहते हैं। कुमति के कारण हम उन्हें अपने लिए अनिवाय मान बैठते हैं, उसके बिना हम अपना जीना ही असम्भव दीखता रहता है, पर हममें सुमति जाग्रत हो, तो बुरी स बुरी घडियो म भी, कम से कम म भी हम शान्त, सुखी और सन्तुष्ट हो सकते हैं, और इसी तरह झूठी मगतृष्णाओ से बच सकते हैं जिनके कारण हम काचन छोड काँच क पीछे भागना पडता है।

"हाँ, जहाँपनाह। आपके न्याय मे हमारा विश्वास है पर हम यह भेद नही समझे कि जब अपराध एक है तो दण्ड मे जमीन-आसमान का अतर क्यो है?" सबकी जिज्ञासा एक के मुह से प्रकट हुई। बादशाह ने कहा, "उन चारो के पीछे एक एक गुप्तचर लगा दो, जो देखें कि यहाँ से जाकर किसने क्या किया। जो खबरें आयें बताना, तब तुमसे बात करेंगे।'

दूसरे दिन अकबर बादशाह अपने सिंहासन पर बैठे तो चारो गुप्तचरों ने अपनी-अपनी रिपोट उनके सामने पेश की। एक ने कहा, 'जहाँ-पनाह, जिस आपने यह कहकर भेज दिया था कि यह काम तुम्हारे सम्मान के लायक नही है उसने विष का पान कर आत्महत्या कर ली।"

जिसे बादशाह ने चार गालियाँ देकर छोड दिया था, उसके बारे मे दूसरे गुप्तचर ने कहा, "वह अपना सामान लेकर शहर से चला गया है।"

तीसरे अपराधी के सिर पर चार जूते पडे थे। तीसरे गुप्तचर ने बताया कि दरबार से जाने के बाद वह घर से नहीं निकला, अपना कमरा बन्द किये पडा है।

"अब चौथे अपराधी की खबर सुनाओ,' बादशाह ने कहा तो गुप्त-चर ने रिपोट दी—"उसका मुह काला कर, गधे पर चढा जब सिपाही ले चले तो हुजूर सैकडो आदमी साथ हो लिये। कोई उसे गाली देता था, कोई उस पर कूडा फेंकता था और कोई उस पर थूकता था। लानत मलामत तो सभी कर रहे थे। तभी आवाज देकर उसने कहा, 'घर जा और मेरे नहाने के लिए पानी भर ला। थोडी-सी गालियाँ बाकी रह गयी हैं। उनमे इन दुष्टो को घुमाकर अभी लाता हूँ, चिन्ता न करना।'"

अकबर बादशाह की कहानी पूरी हो गयी, पर कहने-सुनने को बहुत कुछ छोड गयी। उस बहुत कुछ का सार यही तो है कि प्रतिक्रिया जीवन की एक उत्तम कसौटी है। एक पर मामूली शब्दो का भी यह प्रभाव पडा कि उसका जीवन ही जीने लायक न रहा। दूसरे को चार गालियो ने मुँह दिखाने लायक नहीं रखा। तीसरा चार धौल खाकर हतप्रभ हो गया, पर चौथा काले मुह से गधे पर जुलूस निकलवाकर भी अप्रभावित रहा। मानो प्रभावित होने वाली आत्मा उसके भीतर थी ही नही। दूसरे शब्दो मे प्रति-क्रिया के प्रभाव ने चारो को तराजू पर तोल दिया और उनका जीवन स्तर

हमारे सामने साफ-साफ उजागर हो गया।

कौन है जिसने बुढापे से अस्त व्यस्त मनुष्य नही देखे? कौन है जिसने बीमारियो से परेशान मनुष्य नही देखे और कौन है जिसने मनुष्यों की शव यात्राएँ नही देखी मत्यु को अपनी आँखो से नही देखा। इस विराट ससार मे ऐसा कोई नही है। बुढापा, बीमारी और मरण स्वाभाविक हैं साधारण हैं ससार में, पर बुद्ध ने पहली बार ही उन्हे देखा तो क्या प्रतिक्रिया हुई उन पर? वह मरणशील राजपुरुष से अमर महामानव हो गये। एक राज्य के अस्थायी उत्तराधिकारी से विश्व मानस राज्य के स्थायी सम्राट हो गय। प्रतिक्रिया ही तो है जिसने बुद्ध को बुद्ध बनाया!

महाभारत म अपने आत्मीयो को सामने देखकर अर्जुन पर क्या प्रतिक्रिया हुई! महाबली क्षत्रिय शिरोमणि अर्जुन को अपना के खून मे सनी विजय से भीख माँगकर जीवन निर्वाह करना श्रेष्ठ लगा, पर उसी परिस्थिति की कृष्ण पर क्या प्रतिक्रिया हुई? उन्होने उसे अनार्य, अस्वर्ग्य और अकीर्तिकर कहकर धिक्कारा। इसी प्रतिक्रिया ने अर्जुन को सखा से शिष्य और कृष्ण को महापुरुष से ईश्वरावतार बना दिया।

• •

ठाकुर मलखानसिंह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्य चुने गये, तो मेरा भी उनसे परिचय हुआ। एक दिन बातो बातो म बोले, ' मैं रात मे किसी गली से गुजर रहा होऊँ और किसी मकान मे ग्रामोफोन पर कोई सुन्दर गीत बज रहा हो, तो पैर आप ही आप रुक जाते हैं। मैं दीवार से लगकर सगीत सुनने लगता हूँ। मुझे आश्चय होता है कि लोग आते-जाते रहते हैं, पर इस गीत की तरफ किसी का ध्यान नही जाता।

चौंककर मैंने मलखानसिंह की तरफ देखा था तो मुझे एक कला रसिक सामने दिखायी दिया था। बाद मे मैंने उन्हे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के शिक्षा विभागाध्यक्ष के रूप म, देवबद म्यूनिसिपल बोर्ड के चेयरमन के रूप मे, वकील के रूप मे, किसान के रूप मे और दानी के रूप मे देखा। पर उनका कला रसिक रूप कभी मेरी आँखो से ओझल नही हुआ। वह सचमुच राजनीति के कूडाघर से निकलकर जीवन कला के रसिक सिद्ध हुए। यह क्या

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अग्रयान (कविता सग्रह 1984)
... सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

है? प्रतिक्रिया की कसौटी पर खिंची एक कनक रेखा ही तो है!

हमारे देश की एक लोककथा है। चौधरी चन्दनसिंह को किसी एक रिश्तेदार की विरासत में धन मिल गया तो उसने अपने कच्चे मकान को पक्का बना लिया। इस परिवर्तन में उसने यह गजब किया कि एक पतनाला अपने पड़ोसी के चौक में निकाल दिया। जिसके आँगन में दूसरे के घर का गंदा पानी बहता रहे, वह कैसे चैन से बैठ सकता है! उसने पंचायत की। पंचों ने माना कि यह चौधरी चन्दनसिंह का अन्याय है और निर्णय दिया कि वह तुरन्त पतनाला बन्द कर दें। चौधरी बोले, "पंचों की राय मेरे सिर माथे पर पतनाला यहीं रहेगा जी।"

इस लोककथा के साथ ही रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक संस्मरण है। आरम्भ में ही उन्हें इतनी प्रसिद्धि मिली कि दस उनके दोस्त हुए तो सौ दुश्मन भी हो गये। कलम से उन्होंने रवीन्द्रनाथ को खूब काटा पर इससे काम न चला तो कमाल कर दिया। एक दिन रवीन्द्रनाथ अपने कमरे में बैठे काम कर रहे थे। खिड़की से कूद कर एक मुस्टंडा उनकी मेज़ के पास आ खड़ा हुआ। लम्बा चौड़ा आदमी, हाथ में नंगा तेज़ छुरा।

रवीन्द्रनाथ ने आँख उठा ली। मृत्यु सामने खड़ी थी, पर न भय, न घबराहट। शांत भाव से पूछा, "क्या चाहते हो?" उद्धत उत्तर मिला, "तुम्हारी हत्या करूँगा। मरने के लिए तैयार हो जाओ। मैं इसके लिए बाध्य हूँ।"

रवीन्द्रनाथ मृत्यु के जबड़े के दबाव में, पर पूर्ण शान्त, "मैं बहुत जरूरी पत्र लिख रहा हूँ। कोई एक घंटा लगेगा इसमें। तुम तब आना, मैं तैयार मिलूँगा।" और वे निश्चिन्त हो पत्र लिखने लगे। लपलपाता छुरा लिये मुस्टंडा खड़ा रहा, पर रवीन्द्रनाथ एकाग्रभाव से पत्र लिखते रहे। उन्होंने न सिर उठाया न इधर-उधर ताका, न कलम रोकी—वही मोती-से अक्षर कागज पर उतरते रहे। मुस्टंडा थोड़ी देर खड़ा देखता रहा। फिर वह खिड़की से छलाँग लगाकर चला गया।

चौधरी चन्दनसिंह, रवीन्द्रनाथ और हत्यारा प्रतिक्रिया के शब्द-चित्र हो गये हैं। पंचों के न्याय निर्णय की चौधरी चन्दनसिंह पर क्या प्रतिक्रिया हुई? रवीन्द्रनाथ की हत्यारे पर क्या प्रतिक्रिया हुई? इन प्रतिक्रियाओं में

क्या तीनो के व्यक्तित्व की पूरी झाँकी नही मिलती ?
प्रतिक्रिया ही व्यक्तित्व है, व्यक्तित्व की कसौटी है।

• •

मेरी एक लघु कथा है तीन दृष्टियाँ। यह प्रतिक्रिया की बडी ही साफ तस्वीर पश करती है—

चपू गोकुल और वशी एक महोत्सव म गय।
वहाँ तब तक कोई न आया था। व आग की कुरसियों पर बैठ गये।
दशक आन गय बठते गय पडाल भर गया।
उत्सव आरम्भ हुआ सयोजक ने सबका स्वागत किया।
तब आये एक महानुभाव अपनी चमचमाती मोटर म। उत्सव की बहती धारा रुक गयी। उनकी आवभगत म सयोजक और दूसरे अनेक लग गये। वह पडाल म यो आय कि जस जुलूस हो।
सयोजक ने आगे बढकर 'उठो' क उदघोष मे आँखो की वक्रता का झटका-सा देकर उठा दिया चपू गोकुल और वशी को। अब उन कुरसियो पर बठ वह महानुभाव, उनकी पत्नी पुत्र।
चपू गोकुल और वशी एक तरफ खड ताकते रहे। तभी उन महानुभाव ने 1,111/ रुपय का चेक सयोजक को दिया। माइक पर इसकी घोषणा हुई और पडाल तालिया से गूजा।
ओह यह बात है।' चपू, गोकुल, वशी ने एक साथ सोचा, एक साथ कहा।
चपू ने सोचा— मेरे भाग्य म कुरसी होती तो मैं उन महानुभाव के घर जन्म न लेता।
गोकुल ने सोचा— लाख धुपट रचने पडें, मैं धनपति बनूगा।
वशी ने सोचा— सिक्के के गज से आदमी को नापने वाली इस समाज व्यवस्था के विरुद्ध मैं विद्रोह करूँगा और तीनो अपने-अपने घर लौट गय।
चपू गोकुल, वशी तीना साथी हैं तीना साथ उत्सव म गये, तीना साथ कुरसिया पर बठे, तीनो साथ ही कुरसियो से उठाये गये पर अपमान

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
रनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

की तीना पर एक ही प्रतिक्रिया नही हुई। प्रतिक्रिया न चपू का दीन, गोकुल को धूत और वशी को विद्रोही के रूप मे प्रस्तुत कर दिया।

जिस पर प्रतिक्रिया न हो, वह निर्जीव है। लोक शब्दावली मे वह चिकना घडा है और आधुनिकता उसे 'वाटरप्रूफ' के वजन पर 'शेमप्रूफ' कहती है। प्रतिक्रिया का स्वरूप जीवन की कसौटी है—जसा जीवन वैसी प्रतिक्रिया या जैसी प्रतिक्रिया वैसा जीवन। गाधी जी की हत्या पर श्री एल्बट डयूली ने अमरीका के एक पत्र म लिखा, 'ससार अणुबमा की होड के द्वारा सवनाश की ओर दौडा जा रहा है और उसके बचने की कोई आशा नही दीखती, पर गाधी जी के बलिदान की ससार पर जो श्रद्धापूण प्रतिक्रिया हुई उससे लगता है कि उसके लिए अभी कुछ आशा बाकी है।"

स्पार्टा का राजा एक आगतुक से बात कर रहा था और उसके पास ही खेल रही थी उसकी छोटी लडकी। वह आदमी राजा को इस बात के लिए तयार कर रहा था कि वह अपने पडोसी राजा को गद्दी से गिराकर उसे राजा बनने म मदद दे। इसके बदले म वह राजा को बहुत अधिक धन देने को तयार हो गया, पर उसी समय वह लडकी राजा की उगली पकड-कर खीचने लगी, "चलो यहाँ से अभी चलो।"

लडकी की घबराहट देखकर राजा ने पूछा, "क्या बात है बेटी?" लडकी का उत्तर था, 'यह आदमी बहुत गदा है। मुझे इससे बहुत डर लगता है।" उस आदमी का व्यक्तित्व सुदर था। वह शानदार कपडे पहने हुए था। राजा पर लडकी की बात की ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि उसने उस आदमी की मदद करने से इन्कार कर दिया। बाद मे पता चला कि वह धूत था।

यह क्या बात हुई? यह बात हुई कि स्वस्थ-स्वच्छ मन पर स्वस्थ-स्वच्छ प्रतिक्रिया। मैं अकसर एक दृश्य देखता हूँ। एक छोटा-सा गधा, उसकी कमर पर रखा बडा-सा बोरा कूडे से बेहद भरा हुआ। गधेवाला उसे छडी मारकर हाँकता है, तो वह लपकता है और थोडा-थोडा कूडा सडक पर गिराता जाता है।

मैं उसे देखता हूँ और सोचता हूँ—हम उस सडक की तरह न हो कि जो चाहे हम पर गदी प्रतिक्रिया का कूडा बिखेर जाय। हम स्थिर, सतुलित और स्वानुशासित हो।

यो या ज्यो का त्यो

• • •

9 अगस्त 1942, सुबह 9 बजे मैं अपनी मेज पर आया ही था कि पुलिस अधिकारियो के लाल साफा की दमक और काले बूटो की धमक से मेरा कमरा लकझक हो उठा। गिरफ्तारी साफ थी, फिर भी पूछा, 'कहिये क्या बात है ?'

कुछ लोग आ गये है, कुछ आ रहे है, इस बार सब एक साथ हैं—कोई कभी कोई कही नही। पुलिस अधिकारी ने बताया तो अग्रेज राजनीति का पूरा नक्शा समझ मे आ गया कि काग्रेस को एकदम एकसाथ इस तरह दबोच लो कि भारत छोडो प्रस्ताव का एक भी शब्द सजीव न रहे। एक बार मन हिरहिराया कि क्या सब तयारियाँ बेकार गयी पर तभी एक विचार मन मे आया कि दमन से क्रातिया असफल हुआ करती, तो हम कृष्णलीला नही, कसलीला का त्योहार मनाया करते।

बस, मेरा मन ताजगी और उत्साह से भर गया और मैं जेल के लिए अपना सामान सँजोने लगा, पर तभी मुझे दिखाई दी उन मित्र की आँखें, जो एक महीने से बीमार थे। मैं उन्हे उनके नगर के अस्पताल से उठाकर लाया था। घर न द्वार भाई न बधु सगा न नाती शरीर मे रोग जसे भारत मे अगरेज और पास इकन्नी नही—एकदम फक्कड। उनकी आखो के खामोश बोल थे— मेरा क्या होगा, भाई साहब ?

कुछ महीने पहले ही मेरी पत्नी की मत्यु हुई थी मैं जेल जा रहा था

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
., सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सम्पादित मासिक 'मनोरजन', 'ब्राह्मण सवस्व', 'विश्वनान' और 'साप्ता-
हिक विकास' विश्वास' भी जब मुझे दिखाई न दिये, तब मैं घबराया—
"यहाँ 4 5 और अखबारा के अक रख थ, वे सब कहाँ हैं भाई ?"
बहुत सादगी से मर मेहमान बोल, 'वह तो दिया आपस कि जो काम
की चीजें थी वे सब ढग से सजा दी हैं और रद्दी छाँट दी है।'
"रद्दी नही व बहुत काम की चीजें थी यार," मैंने जरा उभरकर
कहा, तो पूरी गहराई से बोले उन पुरान अखबारा मे ऐसी क्या खास
बात थी, जो नयो म नही है ?
हर बात कहने की ही नही होती, कुछ बातें बिना कहे समझने की भी
होती है। वसे ही यह बात थी कि व सब पत्र भी रद्दी म जा चुके। मैं चुप-
चाप अपन बिस्तर पर लेट गया। वह मरी सुस्ती दूर करने को एक प्याला
चाय ले आये। मैंन पहला घूट भरा ही था कि उन्होंने स्वाथ परमाथ
की मिलवा चटनी मुझे दी, जिसस मेरा बुद्धि विभ्रम रोग पूरी तरह दूर
हो जाये। बोल आप तो जेल मे थे और अखिलेश से बार-बार पसे
माँगना मुझ अच्छा नही लगा। लडाई के कारण रद्दी बहुत महँगी हो रही
है तो धीरे धीरे मैंन सब रद्दी निकाल दी और कमरे की सफाई भी कर
दी।
यह तो हुआ स्वाथ और यह लीजिए परमाथ 'भाई साहब, घर की
स्वच्छता-सुदरता के लिए काम की चीजो का सजोकर रखना जितना
जरूरी है रद्दी चीजो का निकालना भी उतना ही जरूरी है।
और यह पडा मुझ पर बम— पुरानी चिट्ठियो के कूडे को घर मे भर
रखना कौन-सी अक्लमदी है भाइ साहब ?
'तुमने मेरी पुरानी चिट्ठियाँ तो नहीं फेंक दी ?" मेर रोम रोम मे एक
चीख सी निकल पडी पर उसकी ओर बिना ध्यान दिये ही उन्होंने अपना
उपदेश दिया रोज एक थला भर चिट्ठियाँ आती हैं वे ही आपसे नही पढी
जाती। मैं कूदकर उठा और चिट्ठिया के लिफाफे खोजने लगा, पर जिसका
अस्तित्व ही नही, उसकी खोज से लाभ।
मुझे लगा कि धरती घूम रही है, पर धरती घूमे-न घूमे, मुझे तो अभी
घूमना था। उन्हे साथ लेकर मैं उस हलवाई की दूकान पर गया, जिसके

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्र 1981)
परघान (कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

हाथ उन्होंने रद्दी बेची थी "लाला जी, मैं उस रद्दी का देखना चाहता हूँ उसमें कुछ काम के कागज थे।"

'बाबू जी, वह तो बहुत दिन की बात है। रद्दी आती है, खच होती रहती है।" हलवाई का उत्तर पूर्ण था। फिर भी जिसका ऊँट खो जाता है, मशहूर है कि वह घडे में हाथ डालकर देखता है। मैंने पूछा, 'लाला जी, उसमें कुछ पत्र थे, उनका आपने क्या किया ?" हलवाई ने आश्चर्य से मेरी तरफ देखा—' किसी में लड्डू लपेट दिया, किसी में पडा, और क्या करता बाबू जी !"

इन पत्रों में गाधी जी के पत्र थे जवाहरलाल नेहरू के पत्र थे और अनेक वयोवृद्ध साहित्यकारों के पत्र थे, पर अब वे सब पुडिया बन चुके थे। सच यह है कि मेरे मित्र ने मेरे कमरे की सफाई नहीं की थी मेरा खजाना साफ कर दिया था, पर अब क्या हो सकता था! मैं अपने मित्र को गालियाँ दू, तो पत्र तो लौट नहीं सकते थे, उनके साथ मैं अपनी मित्रता खो सकता था। यह मैंने उचित न समझा और चुप रह गया।

वर्षों बाद उस दिन यह बात भाई परमेष्ठीदास जैन के सामने स्मृति के कोष में हो उठा उछल गयी, तो बोले 'मेरा भी एक ऐसा सस्मरण है पर उसका स्वरूप इससे भिन्न है। तब मैं सूरत में था। राष्ट्रीय आदोलन में मैं और मेरी पत्नी जेल गये, तो मेरे मित्र श्री साकेरचद सरैया आकर हमारा सामान अपने घर उठा ले गये। इस सामान में कई सौ पुस्तकें थीं, पुराने मासिक पत्र थे चिट्ठियाँ थीं कपडे-लत्ते थे। उन्होंने अजिल्द पुस्तकों की जिल्द बँधाई और तब सब पर नम्बर की चिट लगा दी। पुराने पत्रों को महीने-सप्ताह के हिसाब से लगाकर उन्होंने उनकी भी जिल्द बँधाई और उन पर नाम-नम्बर की चिट लगा दी। एक एक आदमी की चिट्ठियाँ पहले उन्होंने अलग-अलग छाँटी, फिर उन्हें समय के क्रम से तारीखवार लगाकर अलग-अलग लिफाफों में रखकर उनका नाम लिख दिया। इस प्रकार जेल जाते समय सामान का जो अस्त-व्यस्त ढेर मैं छोड गया था यह एक व्यवस्थित-सग्रहालय के रूप में मुझे लौटने पर मिला।"

भाई परमेष्ठीदास का सस्मरण सुना, तो मन में विचार आया कि मेरे मित्र ने भी मेरे घर की सफाई की थी, पर दोनों में कितना अतर है कि एक

की सफाई स नाश हो गया और दूसर की सफाई से निर्माण। मुझे लगा कि सफाई की यह बात पूरे जीवन का एक सूत्र अपने म समोये हुए है। उस सूत्र का धुधला सा भाव मेरे मन मे घूमता रहा पर वह ऐसी भाषा न पा सका कि मैं उसे कह सुन सकू।

गभ जसे पाच महीने पलकर आत्मा ग्रहण करता है, कुछ वसा ही यानी उसस उल्टा हाल भाव का है। वह सूक्ष्म होकर ज म लेता है। इस सूक्ष्मता मे शब्द नही, सकेत होते है। यह सूक्ष्मता चितन का रस पीकर पलती रहती है और इस प्रकार कभी कभी धीरे धीरे और कभी जल्द ही शब्दो की देह पा जाती है।

मेरा भाव-सूत्र भी पल पनप ही रहा था कि फूलच द ने पूछा "बाबू जी, कोठरी मे झाड़ू लगा दू ?" फूलच द 14 15 साल का किशोर है और प्रेस मे काम करता है। अपनी कोठरी मे अक्सर मैं खुद सफाई करता हूँ, पर किसी कारण से खुद न कर सकू तो फूलच द से करवा लेता हूँ। विशेष बात यह है कि फूलच द सुलभ न हो तो कोठरी को बिना सफाई के छोड देता हूँ पर किसी और स सफाई नहा कराता।

फूलच द ने पूछा ता हा", कह दी और बाहर जा बठा। कोइ एक घण्टा बाद लौटा तो कोठरी म दिर हो रही थी हर जगह साफ, हर चीज व्यवस्थित। मैंने सब चीजो पर जाच पडताल की-सी नजर डाली। सब चीजे अपनी-अपनी जगह पर थी। फूलच द की यही तो खास बात है कि हर चीज का ज्या का-त्यो रखने मे सौ फीसदी सावधान रहता है।

ज्या का-त्यो एक मीठी घण्टी-सी मेरे भीतर बजी घी का एक दिया सा मेरे भीतर जगमगाया और मेरा वह भाव-सूत्र शब्दो की सु दर देह पा गया, *यो की या या ज्यो का त्या !* मुझे इतनी खुशी हुई कि मैंने मन ही-मन कइ बार इसे दोहराया—या की या या ज्या का त्या और सोचने लगा कि श्री सरया ने जो कुछ किया था, उसका रूप है या को या और फूलच द जो कुछ करता है उसका रूप है ज्यो का त्यो।

या को यो क्या ? जो कुछ यो—ऐसा है उसे या ऐसा यानी पहले से अच्छा कर देना सफाई नम्बर एक है और ज्या का त्यो रहने देना सफाई नम्बर दो है। इसके विरुद्ध मेरे मित्र ने जो कुछ किया, वह सफाई नहीं,

ताप के ताए हुए दिन (कविता सग्रह 1980)
शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)

९, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सफाया है। तो सफ़ाई का रूप है स्थान को स्थान की व्यवस्था—सटिंग को पहले से स्वच्छ सुंदर और सार्थक बनाना, कम से कम यह कि उसकी स्वच्छता, सुंदरता और सार्थकता को वर्तमान से नीचे न गिरने देना।

भाव की इस पूर्णता से चिंतन को जो चैतन्य मिला वह गहरे-गहरे उतर चला और तब उपजा भाव में स भाव कि सफाई का जो सिद्धांत है, वही जीवन का मूलमंत्र है। हम अपना जीवन यों जियें कि हमारे जीवन से हमारा परिवार समाज हमारा देश पहले से श्रेष्ठ हो सुंदर हो उच्च हो, पूर्ण हो कम-से-कम यह कि हमारे जीवन से हमारा परिवार हमारा नगर, हमारा देश और हमारा समाज पहले से नीचा न हो ज्यों का त्यों रहे।

अतीत में किसी ने ऋषि से पूछा था "श्रेष्ठ पिता कौन है?"

ऋषि ने उत्तर दिया—"पुत्रादिच्छेत पराजयम्।"

वह पिता श्रेष्ठ है जो अपने पुत्र से पराजय की कामना करे, जो चाहे कि मेरा पुत्र मुझसे हर बात में श्रेष्ठ हो, आगे हो। बाजार में एक मामूली पान मुफ्त नहीं मिलता, तो प्रकृति हम मनुष्य का महान् जीवन बिना मूल्य कैसे दे सकती है? जीवन का मूल्य है यही कि हम अपने पिता से श्रेष्ठ बनें। हमारा जीवन हमारे परिवार को पहले से ऊँचा उठाने वाला हो, हम अपने युग से आगे बढ़ें—हमारा जीवन राष्ट्र का युग को प्रगति देने वाला हो। परिस्थितियों के कारण यह सम्भव न हो तो यह तो करें ही कि हमारे जीवन से हमारा परिवार, हमारा राष्ट्र नीचे न गिरे, पीछे न मुड़े।

सही तस्वीर

• • •

मेरे पाठक मित्र श्री सत्यनारायण मनी का एक मार्मिक पत्र आया है। उनकी एक निजी समस्या है और वह उसका समाधान चाहते हैं, पर उनकी समस्या उनकी होकर भी बहुता की है, इसलिए सार्वजनिक विवेचन चाहती है। तो पहले हम पत्र पढ़ें—

दुर्भाग्य से मेरी एक आख खराब है। यह बचपन म ही खराब हो गयी थी। यह पूरी तरह खुलता है, पर इसम से दिखाई नही देता। इसका रग कुछ सफेद है, पर दूर से यह पता नही चलता है कि यह खराब है। मैंने इस साल द्वितीय श्रेणी मे हायर सेकण्डरी पास किया है। स्वभाव से मैं मिलनसार हूँ और भले घरो मे मेरा आना जाना मित्रता भी है। इस प्रकार मैं हीनभाव से किसी हद तक अपने को बचा सका हूँ, पर कभी कभी जब कोई अपमानजनक घटना घट जाती है तो मेरे मन का ठेस पहुँचती है, मुझम हीन भावना पदा हो जाती है कि मेरे लिए ससार-समाज म इज्जत की जिंदगी सम्भव नही है—मैं सदा इसी तरह लाछित होता रहूगा, क्योकि मैं आखिर काना जो हूँ।

'निराशा और मायूसी म डूब रहने के बाद मै फिर अपने मन को उदबोधन देता हूँ जानता हूँ कि ससार मे सब लोग एक ही जसे नही हैं चोट पहुँचाने वाले है तो मरहम लगाने वाले भी हैं। मुझे भी उन्नति के साधन मिलेंगे मैं भी समाज मे प्रतिष्ठा का स्थान पा सकूगा। इस आत्म बोधन से मन को बल मिलता है और मैं फिर पूरे मन से पढने म जुट जाता हूँ।

साए ्दिन (५। मग्रह 1980)
(कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरघान (कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"प्रसन्नता की इस साफ़-सुथरी सड़क पर चलते हुए फिर लांछन की कोई ठोकर लग जाती है और मैं सोचने लगता हूँ कि मेरी महत्त्वाकांक्षा तो मृगमरीचिका है, मैं भला कैसे उन्नति कर सकता हूँ? इसी उतार चढ़ाव के कारण मैं प्रथम श्रेणी पाने से रह गया। नहीं तो भौतिकीशास्त्र, रसायनशास्त्र और गणित मेरे एच्छिक विषय थे और इनमें मेरी भरपूर तयारी थी।

"आप अनेक लेखों में मानवीय समस्याओं का चिन्तन और विश्लेषण करते रहे हैं और मैं आदर से उन्हें पढ़ता रहा हूँ। इसी नाते आपसे पूछता हूँ कि क्या मैं समाज का सम्भ्रान्त सदस्य बन सकता हूँ और मुझे अपने प्रयत्न जारी रखने चाहिए या फिर उपयोगी होने पर भी सारी दुनिया से अलग थलग पड़ा रहूँ, क्योंकि मेरी एक आंख खराब है मैं काना हूँ?"

यह उनकी और बहुतों की ही नहीं, असल में हमारे समाज की समस्या है और हमारे बिगड़े राष्ट्रीय चरित्र के एक कँटीले पहलू को उघाड़कर सामने रखती है। वह पहलू है दोष दर्शन, दोष में रुचि दोष में दिलचस्पी, गुण की अपेक्षा दोष को महत्त्व देने की हीनवृत्ति। यह मक्खी की वृत्ति है—'व्रण का करती खोज मक्खियाँ दिव्य बदन में।'

इस वृत्ति का सबसे कुरूप चित्र है यह कि दोष-कल्मष हमारे लिए अधिक विश्वसनीय है अपेक्षाकृत गुण-पुण्य के। एक बार प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने पत्रकारों से हँसी हँसी में कहा, "एक स्त्री ईमानदारी, त्याग और निष्ठा के साथ जन्म भर अपने घर की सेवा करती है बच्चों का पालन-पोषण करती है तो कोई उसकी तरफ ध्यान नहीं देता पर वह अपने पड़ोसी के साथ भाग जाती है तो उसी दिन अखबार की खबर बन जाती है।"

इसी भ्रष्टता की एक और बात कि जगन्नाथ रहमान से कहता है कि बख्शी चरित्रहीन है तो रहमान उसका झट विश्वास कर लेता है और दूसरा से बख्शी की चरित्रहीनता का बखान करते हुए वह सुप्रीम कोर्ट की नजीर की तरह कहता है—'अरे भाई, जब बख्शी का पुराना दोस्त जगन्नाथ यह सब कहता है तो फिर जाँच-पड़ताल की बात ही क्या है।" मतलब यह है कि रहमान के लिए जगन्नाथ अत्यन्त विश्वसनीय आदमी है, पर यही जगन्नाथ यदि रहमान से कहता कि लोग खामख्वाह बकते हैं, मैं

खूब जानता हू बख्शी चरित्रहीन नही है तो रहमान सबसे कहता, "अरे भाई जगन्नाथ बख्शी का पुराना दोस्त है। वह उसके एबा पर पर्दा नही डालेगा, तो क्या तुम डालोगे ?" मतलब यह कि रहमान के लिए जगन्नाथ एकदम अविश्वसनीय आदमी है। कितनी विचित्र बात है कि जगन्नाथ एक है और रहमान भी एक ही पर रहमान के लिए और सच यह कि दूसरो के लिए जगन्नाथ विश्वसनीय है यदि निन्दा करे, दोषो को समथन दे और अविश्वसनीय है यदि प्रशसा करे, गुणा को समथन दे।

दोष दशन की यह मुख्यता व्यक्ति और समाज दाना के लिए हानिकारक है क्याकि इससे दाषो को प्रोत्साहन मिलता है दोष पनपते है। सबसे बडा दोष यह पनपता है कि गुणन्शन की वत्ति क्षीण हो जाती है।

एक वेश्या न तीन चार वष वश्यावत्ति करन के बाद एक सुधारक युवक से विवाह कर लिया। उसके घर पुत्र जन्मा। जब वह बडा हुआ और पढने के लिए स्कूल गया, तो सब लडके उसे 'कचोका' (वेश्या पुत्र) कहकर चिढान लगे। उसने कई स्कूल बदले, पर सभी जगह उस यह उपनाम मिल गया। दुखी होकर उसन एक दिन कुएँ मे कूदकर आत्महत्या कर ली। जीवन की कसी विडम्बना है कि उस नारा का तीन चार वष का वश्या जीवन सबको याद रहा पर 15 16 वष का पत्नीत्व और मातत्व किसी को नही। वही बात कि दोष-दशन की वत्ति ने गुण-दशन की वत्ति को क्षीण कर दिया। इस वत्ति का फल है कि भाई सत्यनारायण की अध्ययनशीलता महत्त्वाकांक्षा और अध्यवसाय पर किसी का ध्यान नही जाता सब उनकी उस खराब आख पर आख जमाय रहते है जिसक खराब होने म उनका कोई दोष नही।

ता यह है समस्या। अब हम उसका समाधान खाजें। समाधान की पहली सीढी है—ज्ञान कि हम तथ्या को भीतर तक पूरी तरह समझें। हमारे पूरे व्यक्तित्व की उपेक्षा कर जब हमारी एक साधारण कमी पर ही कोई अपना ध्यान केन्द्रित करता है, तो हमारे मन का वातावरण एक ऐसे परदे मे घिर जाता है कि हमारे गुणो, हमारी विशेषताओ की रोशनी उस तक नही पहुँच पाती। इसी का नाम है 'इनफीरियोरिटि कम्प्लेक्स' यानी हीनताबोध। हम अपनी ही नजरो मे हीन हो जाते है और सोचने लगते हैं

के बीते हुए दिन (कविता सग्रह 1980)
(कविता सग्रह 1980)
का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
मरघान (कविता सग्रह 1984)

अजी, हम भला कैसे उन्नति कर सकते हैं!

साफ है कि हीनताबोध बुरी चीज है, जीवन का घात करने वाला जहर है, पर विचित्र बात है कि जीवन का अनुभवपूर्ण विवेचन कहता है कि वह बुरी चीज नहीं है। तब नया प्रश्न क्या वह अच्छी चीज है और उसका उत्तर—नहीं वह अच्छी चीज नहीं है। एक मथमरी-सी मालूम होती है कि वह बुरी चीज नहीं है अच्छी चीज भी नहीं है तो फिर वह क्या खाक पत्थर है?

प्रश्न म हल्की चुझलाहट है पर उत्तर उसे सन्तुलन देगा—जहर जीवन का घातक है, आत्महत्या का मुख्य साधन,पर चतुर चिकित्सक उससे ही अनक रोगो की चिकित्सा करता है। प्रश्न बनता है—जहर जीवन का घातक है या रक्षक? उत्तर बनेगा वह घातक भी है रक्षक भी है। नासमझी म यहाँ भी चुझलाहट आयगी—यह क्या वाहियात पहेली है? समझदारी का समाधान है—न यह वाहियात है न पहेली बात सिर्फ इतनी है कि कोई भी चीज अपना एक ही रूप नहीं रखती—यह भी है, वह भी है और यह हो नहीं है, वह ही नहीं है यानी चीज के सदुपयोग और दुरुपयोग पर ही उसका सुफल-कुफल निर्भर करता है।

मेरे पिता अत्यन्त साधारण कर्मकाण्डी पण्डित थ—मामूली पूजा-पाठ करने वाले, पर उनके चरित्र मे ऐसे ऊँचे मानवीय तत्व थे कि मेरे मन में उनके लिए देवता जसा आदर रहा। इसके विरुद्ध मरे चारो आर कुछ ऐसे आदमी थे, चरित्र-हीनता ही जिनका चरित्र थी पर मैं देखता था कि समाज मे मेरे चरित्रवान् पिता नगण्य हैं और व चरित्रहीन अग्रगण्य। इसी से मेरे मन मे 'इनफीरियोरिटि कम्प्लेक्स' (हीनताबोध) पदा होता था। इस हीनताबोध म जाने कितने झटके मैंने खाय। तब उपजा सकल्प —मैं अपने जीवन का ऐसा निर्माण करूँगा कि मरे पिता समाज म पूजित हो और इस तरह यह हीनताबोध मेरे लिए रचनात्मक हो गया—विध्वंसात्मक नहीं रहा।

कुछ दिन हुए श्री जवाहरलाल नेहरू का एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पढ़ा था, जिसमें लेखक ने हीनताबोध को ही उनके व्यक्तित्व का निर्माण तत्त्व बताया। नेहरू जी एक महान् पुरुष पण्डित मोतीलाल नेहरू के पुत्र

थ। ऐश्वय के वातावरण मे, जहाँ सब उन्हे सलामी दें, उनका पालन-पोषण हुआ, पर घर मे अंग्रेज गवनर के आने पर और स्वय इग्लैण्ड जाने पर उन्होने अपने पिता की और अपनी ही नही अपनी पूरी भारतीय जाति की हीनता अनुभव की। हीनता के इसी बाध न उन्हें उभारा और वे एक महान् नता बन गये।

वह विवेचन और यह सस्मरण क्या कहत है? यही कि हीनताबोध बुरा भी है, अच्छा भी है। कमजोर मानस का आदमी हीनताबोध से पिस जाता है और मान बठता है कि वह आज कुछ नही है और वह कल भी कुछ नही हागा, कभी कुछ नही। कुछ बनने की जब आशा ही नही, तो प्रयत्न की बेल कहाँ पनप और जब बेल ही नही तो उस पर सफलता के फूल कहाँ खिलें? इसके विरुद्ध शक्तिशाली मानस के लिए वह एक आह्वान है चलेंज है, पुकार है कि आज हीन है तो कल महान् होगा जो आज हँसत हैं, बनाते है ताने मारत है कल आदर देंगे सिर झुकायेंगे, प्रशसा करेंगे।

तो जब समाज के लोग हमारे अनक गुणो की उपेक्षा कर एक कमी पर, कमजोरी पर ध्यान देते है कह हम हीनता क गडढे मे धकेलने है ता क्या उपाय है जो हमे गिरने से बचाय? अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है यह और सच ता यह है कि यही कुजी है इस विषय की। मेरा उत्तर है कि हम उस गडढ म गिरने स दढतापूवक इकार कर दें।

यह कस? यह इस तरह कि हम एक के या अनेक के कहने पर अपनी उस कमी को कमजोरी को जानत मानत हुए भी अपन को हीन अनुभव न करें न मानें। इसके लिए आत्म निरीक्षण आवश्यक है। हरेक आदमी मे कुछ कमिया ह कुछ खूबिया। हम ईमानदारी से देखें कि हममे कितनी कमियाँ है और कितनी खूबिया। यदि खूबियाँ अधिक है तो हम उन पर निगाह रखें और कमियो को कम करने के प्रयत्न म लग जायें। इस तरह कमिया कम होती जायेंगी और खूबिया बढती रहगी।

साथ ही हम इस पर भी ध्यान दें कि जो हमारी हसी उडाते हैं, क्या उनम कोई कमी नही है? हमारी हँसी उडान से यह तो साफ ही है कि उनमे और कमी हो न हो असहिष्णुता और छिछोरापन तो है ही। तब हम उस आदमी के हसी व्यग से क्यो प्रभावित हो, जिसम हमारी ही तरह

तीप क ताए हुए दिन (कविता सग्रह 1980)
शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
मरघान (कविता सग्रह 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कमियाँ-कमजोरियाँ है ।

मैं उस दिन गाधी पार्क की फुलवारी मे बैठा था । पास की सडक पर एक अधा इधर से आया और एक उधर से और ठीक मेरे सामने दोनो एक-दूसरे से टकरा गये । एक उनमे गरम स्वभाव का था । तो झुंझलाकर दूसरे से बोला, "क्या बे अधे ! देखकर नही चला जाता !" दूसरा भी अपनी सहज बुद्धि से जान गया कि वह गुर्राने वाला भी अधा है और मीठी मुस्कराहट बखेरता सा बोला—"ओ हो कमलनयन जी आप हैं !" सुनकर, मैं जोर से हँसा तो वे दोनो भी हँस पडे। यह चरित्र की बलिष्ठता, मजबूती है कि वह अधा दूसरे के द्वारा अपनी कमी का बखान सुनकर भी नहीं झेंपा और अपने विरोधी की कमी खोलकर रख दी ।

तो किसी के द्वारा मजाक उडाए जाने पर हम अपने को हीन न मान बैठें, झेंप न जायें । यह पहला मन्त्र है हीनताबोध से बचने का और यह मन्त्र सिद्ध होता है अपने दूसरे गुणो के चिन्तन से, अपनी कमी को दूर करने के सकल्प से और सामने वाले को अपने ही जैसा अनुभव करने से ।

दूसरा मन्त्र है स्वय घोषणाय । मेरा जन्म एक पुराणपथी कस्बे— देवबन्द मे हुआ । 1925-26 मे वहाँ का सामाजिक जीवन एकदम रूढियो से जकडा हुआ था । उस काल मे वहाँ एक घटना हुई जिससे कस्बे मे हल-चल मच गयी कि मोची का बेटा फक्कड हरपत्त राय स्कूल मे पढने के लिए गया । जब वह क्लास मे घुसा तो सब लडके खडे हो गये, "हम चमार के साथ पढें !" हेड मास्टर सुधारवादी थे । उन्होने इस पर सबको तयार कर लिया कि फक्कड सबसे पीछे, लगभग दरवाजे मे, कुर्सी पर नहीं स्टूल पर बैठेगा ।

फक्कड सबसे अच्छे नम्बर लेकर आठवी मे पास हुआ, तो फकीरचन्द हो गया और बहुतो के घर आने जाने लगा । फकीरचन्द ने शान से मैट्रिक परीक्षा पास की और सार्वजनिक जीवन मे पैर रखा । कही मीटिंग होती तो फकीरचन्द्र सबके बीच है । 1930 के स्वतन्त्रता आन्दोलन ने जमाने को करवट दे दी थी और चमार को चमार कहना प्रगति विरोधी समझा जाने लगा था पर हृदयो मे झिझक थी, व्यवहार मे समानता न थी । फकीरचन्द को झटके खाने पडते थे और हीनताबोध का शिकार होना पडता था ।

कमजोर आदमी पिछड जाता इन परिस्थितियो मे, पर फकीरचद सबल थे। उन्होंने स्वय घोषणा के शस्त्र से उस हीनताबोध के टुकडे कर दिये। उनका उदाहरण दूसरो के लिए उपयोगी होगा। जब वह अपनी बात कहने को उठते, तो कुछ बडे बडी खिची आँखो से उनको तरफ देखते —'भला यह क्या बोलेगा" कि फकीरचन्द अपनी बात शुरू करते, "आपने पण्डितो, बाबुओं और लालाओ की बात सुन ली, मौलवी साहब भी कह चुके, अब एक चमार को बात सुनिये। "

कहते-कहते उनके स्वस्थ सुदर चेहरे पर आत्मविश्वास के रस मे मुस्कराहट बरस पडती कि सब उसमे भीगकर इस तरह हँस पडते कि खिची आँखें अपने-आप मुलायम पड जाती। जब उनकी बात मान ली जाती, तो फकीरचन्द कहते, "कभी-कभी चमार का तुक्का भी बैठ जाता है साहब।" और न मानी जाती तो रिमार्क कसते, "कट गयी तो क्या, आखिर थी तो चमार की ही बात।" और इस तरह स्वय घोषणा के द्वारा आगे बढते हुए बाबू फकीरचन्द जाटव म्यूनिसिपल कमिश्नर एव कान्ट्रैक्टर, सबके साथ दूध चीनी हो गये।

आत्म विश्वास पैदा करने का तीसरा मन्त्र है—अच्छे उदाहरणो का चिन्तन। एक आख खराब है लोग काना कहकर चिढाते हैं तो हम झेंपें क्या, जबकि हमारे सामने हैं सिख राज्य के सस्थापक राजा रणजीतसिंह और सफल सेनापति एव प्रशासक लार्ड वेवल।

एक पैर खराब है लोग लँगडा कहकर चिढाते हैं तो क्या हुआ! तैमूर लग भी तो लगडा था जिसने आधी दुनिया को रौंद डाला और हिन्दी के सफल कथाकार श्री राजेन्द्र यादव ने तो बसाखी के सहारे चलते ही पूरी शिक्षा और शोहरत पा ली।

कानो मे खराबी है लोग बहरा कहकर चिढाते हैं, तो हीनताबोध क्या हमे घेरे? सफल एडवोकेट, बाद मे उत्तर प्रदेश के न्यायमन्त्री, केन्द्र के रक्षा मन्त्री, तब बगाल के गवनर और बाद मे मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री डा० कैलाशनाथ काटजू भी तो बहरे थे।

फिर आठ विकारो से ग्रस्त अष्टावक्र ऋषि माने गये और फालिज का बुरी तरह शिकार रूजवेल्ट अमरीका का युग प्रवतक राष्ट्रपति हुआ कि

नहीं, एक नहीं चार बार लगातार !

जीवन की, व्यक्तित्व की सबसे बड़ी हीनता यह है कि हम दूसरों के कहने से ही अपने को हीन मान लें। लोककथा है कि एक महाशय की पत्नी अपने मैके गयी। एक दिन यार लोगों ने रोता-सा मुंह बनाकर उनसे कहा कि खबर आयी है कि तुम्हारी पत्नी रांड हो गयी।

सुनते ही महाशय जी रोने लगे और रोते रोते ससुराल पहुंचे। उनकी बात सुनकर उनकी ही तरह समझदार उनकी पत्नी ने भी मान लिया कि वह रांड हो गई है। दोनों का फूत्कार सुनकर पास-पड़ोस के लोग आये और उन्हें लाख समझाया पर वह अपनी बात पर अटल रहे। उनका कहना था "जब इतने आदमियों ने यह बात कही है तो गलत कैसे हो सकती है?'

ठीक है वे दोनों आत्महीन थे, पर जो लोग दूसरों के इशारों, तानों और कटूक्तियों को सुनकर अपने को हीन मान लेते हैं वे क्या हैं?

जीवन की, व्यक्तित्व की बलिष्ठता और विशिष्टता ही यह है कि हम दूसरों के हांके न हंकें और अपनी राह पर पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहें।

बैठक और ड्राइगरूम

• • •

जी हाँ, मैं दो घोडो पर एक साथ सवार हूँ, पर गिर नही सकता, जसे वह गिर गये थे ।

"वह कौन ?"

वह, वह, वह जो दो घोडा पर सवार थे और धडाम से गिर गये थे और वह वह जिन्हे आप भी जानते है और मैं भी जानता हूँ और वह, वह जिनकी बात आप इस तरह पूछ रहे हैं, जैसे जानना ता दूर, उनका नाम भी कभी आपने न सुना हो। अजी, वह जो एक देश के बडे चुनाव मे अपने राज्य की विधान सभा म एक साथ दो सीटा पर धूमधाम से चुनाव लड रहे थे। बडा जोर बाध रखा था भाई ने, पर उनके एक विरोधी को सूझी मसखरी तो एक पोस्टर छपवा दिया।

' हा, पोस्टर तो चुनावा मे छपन ही ह।'

जी हा, ठीक है आपकी बात कि पोस्टर ता चुनावा म छपत ही है पर यह पोस्टर नही था ऐटमबम था।

"वाह मेरे शेर अभी कह रहे थे कि एक पोस्टर छपवा दिया, अभी बदल गये कि वह पोस्टर नही ऐटमबम था। मालूम होता है तुम आजकल कोई नयी अलिफ-लला लिख रहे हो।'

जी न मैं अलिफ-लैला लिख रहा हूँ, न लला मजनू। मैं तो एक सादी बात कह रहा हूँ, पर मालूम होता है आपने बचपन मे किसी शास्त्री पण्डित का जूठा पानी पिया था, इसलिए आपको बाल की खाल निकालना आ गया है।

शङ्ख (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता सग्रह 1984)

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"खैर भाई, तुमने यह जूठा पानी हमें खूब पिलाया। इसके लिए धन्यवाद, क्योंकि जूठा पानी भी पिलाया तो शास्त्री पण्डित का पिलाया। तुम्हारा क्या, तुम सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के सरम्भ का बघना ही मुह से लगा देते तो मैं क्या कर लेता, पर हाँ, जूठे पानी से मुह शुद्ध करने के बाद अब वह पोस्टर और एटमबम की पहेली तो सुलझाओ।"

पहेली, पहेली तो आप बना रहे हैं। मेरी बात तो साफ है कि उन्होंने जो पोस्टर छपाया, उसने एटमबम का-सा काम किया। लीजिए, उसे अमरूद की तरह समझाता हूँ आपको। वह दो सीटों पर एक साथ चुनाव लड रहे थे तो पोस्टर में उनके एक विरोधी ने दो घोडों की तस्वीर बनायी और दिखाया कि दोनों की लगाम पकडे वह नीचे जमीन पर औंधे पडे हैं। उनका मतलब था कि दो घोडों के सवार की यही हालत होनी है।

यह तो ठीक मालूम नहीं कि दूसरी सीट पर क्या हुआ, उस पोस्टर वाली सीट पर वह पूरी तरह हार गये और इसकी खूब चर्चा हुई। अब एक बात बताऊँ आपको ! मैं भी आज दो घोडों पर सवार हूँ, पर मेरा पर न इसकी कमर से फिसल सकता है न उसकी यानी मेरा वह हाल नहीं हो सकता, जो उन बेचारों का हुआ ! सुनकर आपको शायद हँसी आये कि ये दोनों घोडे पास-पास नहीं खडे। अजी, छोडिये पास-पास की बात, आस-पास भी नहीं और आसपास क्या, यों समझिये कि एक घोडा खडा है 19वीं सदी में और दूसरा 20वीं सदी में और मैं उन पर एक साथ जमा हूँ और वह इस तरह कि जब चाहूँ इसकी पसलियों में एड मार दूँ और जब चाहूँ उसकी।

'क्या कहने, क्या कहने तुम्हारे। अभी तक तो पोस्टर और ऐटमबम की ही बूझ में उलझा रहे थे, अब उससे निकले, तो घोडों का गोरख धन्धा खोल दिया। मेरी राय मानो तो भया, सब काम छोडकर पहेली-पजल-गोरख धन्धे का कारबार कर लो। सच मानो, चार दिन में चाँदी की दीवार उठती नजर आयगी और यह पिचका पेट देखते-देखते ऐसा हो जायगा कि डेस्क की तरह उस पर रखकर अपना हिसाब लिखा करना।

खैर साहब, मैं पहेली-पजल-गोरख धन्धे का कारबार करूँ, न करूँ और चाँदी की दीवार उठा दूँ न उठा दूँ और मेरा पेट पिचका रहे या डेस्क

की तरह बही रखने लायक हो जाए, पर मैंने आपसे कोई मसखरी मजाक की बात नही की। मैंने तो एक सच्चाई ही आपके सामने रखी है। लीजिए अ से अमरूद की तरह वह बात तो आपको बता ही चुका, अब आ से आम की तरह यह बात भी आपको बताता हूँ। घोटो की बात तो एक कहने की बात है। न कोई चुनाव है न पोस्टर, न घाडे गली-कूचो म उडती तितली है वह तो उडते उडते कभी किसी के और कभी किसी के कधो पर बैठ गयी और यह बैठी तो वह उड भी गयी पर कहने की बात ता यह है कि आज मेरे दिमाग म पुराने जमाने की बैठक और नये जमाने के ड्राइगरूम एक साथ घूम रहे हैं। वैसे बैठक भी ड्राइगरूम है और ड्राइगरूम भी बठक पर जीवन धारा की यह कितनी विचित्र बात है कि बठक है बीते युग की निशानी प्रतीक और डाइगरूम है नये युग की निशानी। इससे भी आगे बढकर बठक है हिन्दुस्तान की सही जिन्दगी की तस्वीर, जिसम न तकल्लुफ न तौर तरीके, न बनावट, न मिलावट। कहूँ कि जहा आदमी अपने ऊपर लादे बनावटी और नकली जिन्दगी के लबादे उतारकर आदमी से आदमी की तरह मिलता है अपनी असली सूरत म। इसके विरुद्ध ड्राइग रूम है हिन्दुस्तान की उस जिन्दगी की तस्वीर, जो उसकी अपनी नही है, जो उसकी खरीदी नही है उधार ली हुई है और ली हुई भी क्या है दूसरा की दी हुई है। इसलिए हमारी जिन्दगी का एक पबन्द, जसे मागे हुए कपडे कि लाख भडकदार हो फिटिंग मे कही न कही कमी रह ही जाती है।

चौधरी नानकसिंह का नाम तो आपने सुना ही है और नाम क्या सुनते आप तो उनस दो चार बार मिले भी होगे। आप तो इधर बराबर घर से बाहर ही रहे इसलिए शायद न भी जानते हो उन्हे अभी तीन चार साल हुए 96 साल की उम्र म बचारे भगवान का प्यारे हो गये। उनकी बठक कस्बे-भर की बठक थी। शाम को अपने कामो स निपटकर 20 30 आदमी रोज इकट्ठे हो जाते थ। लोग थके आते ताजे लौटते भारी आते हल्के जाते, उलझे आते सुलझे लौटते, जीवन की रसायनशाला थी चौधरी नानकसिंह की बठक।

मैं वहाँ पर बरसो गया हू और मेरी स्मृति मे वहाँ के सकडो दृश्य भरे पडे हैं। लीजिए एक नमूना आप भी देखिये। उस दिन बूढे मियाँ

नाद (सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
धरधान (कविता सग्रह 1984)
गोरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

5

सलीम साहब आये, तो सबने उन्हें आदाब किया। वह सब भाइयों को सलाम कहकर नानकसिंह के पास ही तख्त पर जा बैठे। तकिया नानकसिंह की तरफ था, तो उन्होंने मियां साहब से कहा—वहाँ नहीं, इधर आ जाओ। मतलब यह था कि आप उम्र में बड़े हैं, इसलिए सिरहाने की तरफ़ चढ़िये। मियाँ साहब बोले—"अरे भाई, दिल में जगह हो, तो सब जगह बराबर है।" चौधरी नानकसिंह ने तकिया उठाकर उनकी कमर के सहारे लगा दिया और बातें करने लगे।

तभी आ गये पण्डित बलदेव जी। मियाँ साहब ने पूछा— अरे भाई कहाँ थे, कई दिन में दिखाई दिये आज?' पण्डित जी बोले, मियाँ साहब, जगदलपुर गया था आपकी बेटी का रिश्ता करने पर अजीब बड़े आदमी से पाला पड़ा है कि न बैठने देता है न उठने देता है।"

'जगदलपुर में ऐसा बड़ा आदमी कौन है?' पण्डित कुन्दन लाल ने उचककर पूछा तो बलदेव जी बोले "अजी क्या बताऊँ आपको, पण्डित शम्भूनाथ के छोटे लड़के में रिश्ते की बात चल रही है। लड़के को लड़की पसन्द है, दान-दहेज की कोई बात नहीं, यहाँ भी भगवान् की दया है, वहाँ भी सब कुछ है, पर जाने कैसी आदत बनाई है भगवान् ने पण्डित शम्भूनाथ की कि एक-न-एक हिचर मिचर लगाये ही रहते हैं।"

चौधरी नानकसिंह बोले—"लो, समझ लो कि उनकी हिचर मिचर बन्द हो गयी। मेरे उनके बहुत पुराने ताल्लुकात हैं। मैं उन्हें कल लिख दूंगा कि लड़की पण्डित बलदेवदास की नहीं, मेरी है और बात पक्की करा दूंगा। तुमने पहले क्या नहीं कहा था मुझसे? जैसी तुम्हारी बेटी वैसी मेरी।"

बेटी के रिश्ते की बात निपटी तो बात बारातों पर जा जमी कि पहले बारातों में दोनों समधी किस तरह एक-दूसरे का नीचा दिखाने की कोशिश किया करते थे और किस-किस तरह के चलेंज दिया करते थे। सबने अपने अपने संस्मरण सुनाये और संस्मरण क्या थे समझिये कि पुराने युग की विवाह पद्धति का सिनेमा हो खुल गया।

पण्डित भोलानाथ का यह संस्मरण मास्टरपीस रहा कि लाला हरनामसिंह के यहाँ बारात आयी तो उसमें कई हाथी आये। बस बात की हर बात पर नहले का दहला हुआ, तो वह बचन कि ऐसी बात हो,

जिससे वेटी वाले की मूछें नीची दिखाई दें। सगे-साथियो मे सलाह कर उसने अपन बडे हाथीवान को वटी वाले के घर भेज दिया और कहलाया कि हाथियो के नीचे विछान का लकडी का बुरादा चाहिए।

सुनकर एक बार तो लाला हरनामसिंह को पसीना आ गया। उन दिना आरा मिना का आजकल जसा जोर नही था और बुरादे की अगीठियाँ चली ही न थी तुरन्त बुरादा कहाँ स आय पर तुरन्त वह सम्भल और वोले सात वह्लखाना म सात लकडियो के बुराद भर है, अपने लाला से यह पूछ आओ कि उनके हाथियो का किस लकडी का बुरादा पसन्द है? हाथीवान को कमर म ल जाकर उन्होने पाँच गिन्नियाँ देकर कहा, 'यह ता आपके यहाँ आन का इनाम है और लडकी जसी मरी है वैसी आपकी। उसकी इज्जत गयी तो आपकी ही गयी। हाथीवान ने लौटकर वेटी वाले की त्रूब डाग मारी और मामला खत्म हो गया बुराद की जरूरत किस थी—वह तो बात की बात थी।

यह तो हुई बठक की झाँकी, अब लीजिए डाइगरूम की बात। इसकी भी बात तो लाखो हैं पर एक बात म कभी कभी लाख बातें समा जाती हैं। उस दिन मैं आर० एल० पटवधन के ड्राइग रूम म वठा था। सब लाग हँस रह थे—ठहाके पर ठहाका उड रहा था कि मुझ किसी की कराह सुनाई दी जसे किसी का दम घुट रहा हो। मैंने चारो ओर देखा, पर कोई दुखिया दिखाई न दिया। बहुत देर बाद मैं जान पाया कि यह कराह उस ईरानी कालीन की है जो मरे पैरो के नीचे बिछा था। मुझे बडा आश्चय हुआ। मैंने पूछा, 'भाइ इतन शानदार आदमियो के साथ इतने शानदार कमर मे आराम से रह रहे हो, फिर भी तुम दुखी हो।"

बोला, कभी बडे-बडे राजा बादशाह मुझ पर बठा करत थ, अब इन निकम्मे आदमियो के बूटो स रगडा जाना ही मेरा उपयोग रह गया है। जो इतना शऊर भी नही रखत कि किसी की छाती पर चढन से पहले अपन जूते पोछ तो लें। इस हालत मे यदि मरे मुह से कराह निकलती है तो क्या कोई अनोखी बात है?

मुझ एसा लगा कि मेरे परो म बिजली छू गयी है और मेरी एक नस झनझना गया है। तभी मुझ एक भीनी भीनी आवाज सुन पडी। ध्यान से

देखा तो जाना कि यह मेरे सामने ही रखे फूलदान की आवाज थी। वह कह रहा था—"तुम किसी दूसरी दुनिया के आदमी मालूम होते हो, जो यों देख रहे हो। यहाँ सभी चीजों का यही हाल है। मैं कई-कई दिन खाली पड़ा रहता हूँ या बासी फूलों से सड़ा। आज मैं बहार में हूँ तो बात यह है कि सुबह ही मालिक ने मालकिन से कहा था—आज शाम को मेहरजी आयेंगे, तुम फूल वाले को कहला देना कि नर्गिस लगा जाय। हम उस दिन उनके यहाँ गये थे तो नर्गिस से सजा हुआ था उनका फूलदान। साफ बात है, यहाँ न किसी को सौरभ से मतलब है न सौंदर्य से, यहाँ तो प्रदर्शन का राज्य है। हरेक दूसरे के कपड़े, जेवर और रंग-ढंग को ताकता है और फिर उसी नाप से अपने को आँकता है कि मैं इससे कम तो नहीं हूँ। तो भैया, क्या फूलदान और क्या तस्वीर यहाँ तो सब इसी प्रदर्शन की होड़ाहोड़ी में सोये हैं।"

फूलदान की बात सुनकर मन में बड़ी कचोट हुई और विचारों की उथला-पुथली में मैं दो घोड़ों पर एक साथ सवार हो गया—एक घोड़ा तो बैठक और दूसरा ड्राइंगरूम। मन का प्रश्न यह था—क्या युग के नये प्रवाह में हम इतने बह जायें कि बैठक को ड्राइंगरूम बनाकर ही दम लें या फिर इस प्रवाह में एकदम उल्टे तरें और ड्राइंगरूम को उलटकर बैठक बना दें?

प्रश्न समाधान चाहता है, पर समाधान सुगम नहीं, क्योंकि प्रश्न बढ़कर फैलकर एक बड़ा प्रश्न बन जाता है कि क्या हम अतीत में लौट जायें और उस अतीत में अपने को इस तरह बन्द कर लें कि न वर्तमान की बात सोचें न भविष्य की?

इस प्रश्न पर भी टिकना सम्भव नहीं, क्योंकि इस प्रश्न के पास ही उग आया है एक नया प्रश्न कि यदि हम अतीत में न लौटें तो क्या हम अतीत से अपना एकदम सम्बन्ध विच्छेद कर लें और अपने वर्तमान को ही पकड़कर बैठ रहें।

यों ये हो गये एक प्रश्न के तीन प्रश्न, पर एक नया प्रश्न उगा है जो इन सबको गड़मड़ कर देता है—क्या गंगा के लिए यह सम्भव है कि वह गंगोत्री से अपना सम्बन्ध तोड़ ले या गंगोत्री के लिए यह सम्भव है कि वह गंगा के प्रवाह को अपने में ही समाये रहे?

इस प्रश्न म एक रोशनी है, जो एक राह बनाती है, राह दिखाती है। ठीक है, न गगा गगोत्री से अपना रिश्ता तोड सकती है, न गगोत्री गगा को अपने मे समा सकती है—उदगम और प्रवाह का सामजस्य—तालमेल ही जीवन है। तो हम भी अतीत से सम्बन्ध विच्छेद नही कर सकत और हम भी सदा अतीत म ही नही जी सकत। वह, बठक की सहजता और डाइगरुम की व्यवस्था का सगम-सामजस्य ही स्वस्थ रूप है जस अतीत और भविष्य का सगम है वतमानय। ही माग है जा हम दा घोडो की सवारी के खतरे से बचाए, हमारे जीवन को एकागिता क गडढे से निकालकर समग्रता के उपवन मे विकसित हान का अवसर दे सकता है। हम व्यक्ति के रूप मे भी, समाज के रूप मे भी राष्ट्र के रूप मे भी समन्वय-सामजस्य के इसी कल्याणकारी माग की ओर बढें इस सावधानी के साथ कि वकार का बोझ हम पर न नया लदे और न पुराना लदा रहे और बाकार को फेंकन की मूखता हम कर न बठें।

शब्द (। । ।
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
मरधान (कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जोश और होश

• • •

एक महीने से ज्यादा भाग-दौड़ करने के बाद मेरा पासपोर्ट आया तो मेरा मन उत्साह से भर गया और मुझे लगा कि मैं अब जापान ही पहुँच गया हूँ। बचपन में जब स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और लाला लाजपतराय की अमेरिका यात्रा के समाचार पढ़े-सुने थे, तो मन में विदेश यात्रा का भाव और चाव पैदा हुआ था और मैंने विदेश यात्रा के सपने देखे थे, पर वे सपने आधी से ज्यादा जिन्दगी जी लेने के बाद पूरे हो रहे हैं, ओह कितना खुश हूँ मैं!

एक बीज बोया जाता है, सींचा जाता है, पाला-पोसा जाता है तब वह बौरता है और उम्मीद लहरा उठती है कि अब इस पर फल फलेंगे। बीज बोकर पेड़ को इस स्थिति तक लाने वाले माली के मन की उस दशा में जो दशा होती है वही स्थिति पासपोर्ट को देखकर मेरे मन की हो गयी थी।

और यह पासपोर्ट? इसे भी स्वर्ग का फूल पारिजात ही समझिये। इसके लिए अपने जिले के अधिकारी के यहाँ एक प्रार्थना पत्र देना पड़ता है। फिर जाँच-पड़ताल होती है। इस जाँच-पड़ताल में बिल्कुल वैसे ही प्रश्न-उपप्रश्न पूछे जाते हैं जैसे मुकदमे की किसी जिरह में। बड़ी झुंझलाहट आयी थी जाँच-पड़ताल की इस गली में से गुजरते हुए पर अब जब पासपोर्ट मिल गया है मन खुशी से शान्त-सन्तुलित हो गया है, तो मैं सोचता कि विदेशों से सम्बन्ध एक महत्त्वपूर्ण मसला है। देश में लाख-करोड़ देशभक्त हों, तो दस-बीस देशद्रोही भी तो हो सकते हैं और वे विदेश जाकर देश के हितों को नुकसान भी पहुँचा सकते हैं, इसलिए देश के शासन को

'जिम्मेदारी है कि वह इस बारे मे सावधान रहे।

खर अब तो मुझे पासपोट मिल ही गया है और रास्ते की उलझनें पार हो ही गयी हैं अब पुराने झझटा की चर्चा से मैं अपने को परेशान क्या करू ? फिर महापुरुष वाशिगटन कहा करते थे "जिस काम मे रुकावटें न हो, मैं उसे आदमी के करने लायक काम ही नही समझता।"

अब मैं खुश था और अपनी विदेश यात्रा की बात सबस कहने लगा। उस दिन डाक्टर शर्मा मिले, ता उनसे भी चर्चा हो गयी। बोले—"कब जा रहे हैं ?"

मैंने कहा—' सिवाय रुपये के और सब प्रबन्ध हो गया है। रुपये का प्रबन्ध हो जाये तो उड़ू।"

वह हँस पडे। बोले "ठीक है, बिल्ली अब चूहा के काबू म है, बस इतनी ही कसर है कि कोई उसका मुह पकड ले।"

उनकी बात म पना व्यग्य था, पर मैं उससे घबराया नही क्याकि मेरा विश्वास था कि रुपय का प्रबन्ध हा ही जायगा।

उठत उठत उन्होंने पूछा, वीसा मिल गया आपको ?

वीसा क्या होता है ? मैंने आश्चय स पूछा तो बोले, ' जनाब, हमारे देश की सरकार आपकी विदेश यात्रा से सहमत है इसलिए आपको पास पोट दे दिया है पर जिस देश म आप जा रहे है उसकी सरकार आपको अपना मेहमान बनाने को तयार है या नही, यह भी तो जानना जरूरी है। आप क्या समझते है कि यह बौद्ध काल है कि भिक्षुआ के लिए न तो आज्ञा-पत्र की जरूरत थी न अनुज्ञापत्र की जिधर चाहा चल पडे, जब चाहा चल पडे। वीसा आपके पास होगा तभी तो आप उस देश मे घुस सकेंगे।"

कृतज्ञ होकर मैंने डाक्टर से कहा, यह तो मुझे मालूम ही न था। आपने बडे काम की बात बतायी यह तो।'

जी हाँ, बतायी तो काम की बात पर इससे भी काम की बात यह है कि जिस देश म आप जा रहे हैं उसका वीसा तो आपको लना ही पडेगा, पर जिन देशा मे से आप गुजरेंगे उनकी मजूरी भी आपका लेनी पडेगी। उनकी एण्डोसमेण्ट के बिना आपका वीसा वसा ही है जसे बिना दस्तखत का चेक।'

नाद (1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया, पर मुझे इससे कुछ ज्यादा परेशानी नहीं हुई, क्योंकि मैंने सोच लिया कि जब तक मैं रुपया का प्रबन्ध करूँगा, तब तक ये मजूरियाँ भी ले लूंगा और मैंने अपनी तैयारियाँ आरम्भ करने का निश्चय लिया।

सबसे पहले मैं पिताजी के पास पहुँचा और उनके पैर छूकर मैंने कहा, "आप मरी यात्रा की सफलता के लिए मुझे आशीर्वाद दीजिए और मामा जी को पत्र लिख दीजिए कि 5000 रुपये इस समय व मुझे दे दें।"

"अरे भाई पत्र तो मैं मामा जी का भी लिख दूंगा और भानजे जी को भी, पर पहले यह तो बताओ कि यह खुराफात तुम्हारे दिमाग म समाई कहाँ से? हमारा घर ता घर, हमारे तो कस्बे स भी कभी कोई विलायत नहीं गया। एक वो खानबहादुर का लडका गया था और वहाँ से मम साथ बाँध लाया था। बस उसी म उनका खानदान चौपट हो गया।'

मुझे लगा कि मरी यात्रा क मार्ग म एक बडी दीवार आकर खडी हो गयी, क्योंकि उनके पत्र के बिना मामा जी रुपये दे नहीं सकते और जब यह स्वय प्रतिकूल हैं तब मामा जी को पत्र क्या लिखेंगे? फिर भी प्रयत्न तो करना ही है।

मैंन कहा, 'आप तो पिता जी 50 वर्ष पुरानी बात कर रहे हैं। अब स्थिति बदल गयी है। मैं मेम लान के लिए विदेश नहीं जा रहा हूँ। मैं वहाँ कुछ दिन अपने विषय की विशेष शिक्षा लूंगा और जापान घूमकर चला आऊँगा। उस देश पर एक पुस्तक लिखूँगा जो एक साथ तीन भाषाओं म छपेगी और इस तरह मेरा करियर बन जायगा। आप मेरा विश्वास करें, मैं कोई ऐसा काम नहीं कर सकता जिसस आपको दुख हो या हमारे परिवार का मान घटे।" वह निश्चिन्त हुए और मामा जी को पत्र लिखने के लिए तैयार हो गये।

मैं बहुत खुश हुआ और जापान मेरे सपनों म छा गया। आह मैं अपनी आँखों स देखूँगा वह हिरोशिमा, जो विध्वंस और निर्माण का गजब का एक निर्णायक प्रमाण है। जीवन म और कुछ हो या न हो, मृत्यु अवश्य आती है। इसलिए कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु ही जीवन का चरम सत्य है। इसे हम मान लें, तो नाश को महान् और निर्माण को हीन मानना

पडेगा और जीवन म निराशावादी दृष्टिकोण प्रबल हो उठेगा, पर मृत्यु को हम महान् कमे मान सकत है जबकि हम दखत है कि लाखो वर्षो से मृत्यु ससार के जीवन का अपने भयानक जबडा म दबा रही है, फिर भी ससार म मत्यु नही, जीवन ही पनप रहा है। युद्धा म भयकर विध्वस हाता है, पर दखत-दखते नया निमाण उस ढक लता है, भुला देता है। हिरोशिमा इसी सत्य का तो एक प्रतीक है, मैं उसे देखकर जीवन के प्रति एक नयी आस्था, एक नया विश्वास प्राप्त करूँगा और इसका असर मरे साहित्य पर पडेगा। मरी कलम नयी दीप्ति से चमक उठेगी।

मेरी विदेश यात्रा अब तय है। 5000 रुपय मामाजी द देंगे और 3000 रुपय प्रकाशक ने मुझ देन का वादा कर लिया है। कुछ मेरे पास है और कुछ इधर उधर से मैं कर लूगा। बस दीवारें टूट गयी, सडक साफ है यह उडा वह पहुचा यह देखा वह परखा कि विदेश यात्राओ म एक कलम मानी जाये और उस किताब की विजिटिंग काड बनाकर दो-चार इण्टरव्यू और तब एक शानदार नौकरी बस अब मौज ही मौज है।

लो यह तुम्हारे मामा जी का काड आया है।" पिता जी ने कहा।

काड ! काड आया है ? क्यो ? काड क्यो आया, पाँच हजार का ड्राफ्ट नही आया पिता जी ?

अरे भाई जो डाकिय ने दिया वह तुम्ह द रहा हू, पर तुमम इतना उतावलापन क्या है ? काड पढा तो सही, क्या पता उसम ड्राफ्ट भेजने की बात ही लिखी हो।'

सचमुच मुझ अपनी जल्दबाजी पर बहुत लाज आयी और मैंन जल्दी-जल्दी काड पढा। उसम सचमुच 2 3 दिन म 5000 रुपये का ड्राफ्ट भेजने की बात लिखी थी। मेरी घबराहट खुशी म बदल गयी। समय की बात सभी अपना ने साथ दिया और रुपया का प्रबन्ध हो गया। सबस बडा रुपया भया सबस बडा रुपया ! तो उसका प्रबन्ध हो गया। हवाई जहाज मे सीट बुक हो गयी तारीख तय हो गयी, टिकट आ गया और साजो-सामान के साथ ट्रेन मे बैठा तो मुझ छोडने के लिए सकडा आदमी स्टशन पर आये। मालाए भी गले म पडी और जिन्दाबाद भी गूजा। सच कहू मुझे लगा कि मैं एक नया आदमी हो गया हूँ।

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सुबह चार बजे मैं कलकत्ता पहुंचा और वटिंग रूम म ही थाडा समय बिता, दोपहर को उस कम्पनी के कायालय म पहुचा, जिसकी माफ़त मैंने टिकट लिया था और प्रबन्ध किया था। मैनेजर ने मेरा स्वागत किया और बताया कि ठीक 4 30 बजे जहाज उडेगा। तब उन्होंने मरा पासपोट देखा और दूसरे कागज़ भी। कागज़ देखत-देखत वह गम्भीर हो गय और बोले, "हम अपन जहाज स आपको नही ल जा सकत।"

"क्या ?" एक चीख-सी मेर मुह स निकल गयी।

' इसलिए कि आपने हागकाग का एन्डोसमेण्ट तो कराया ही नही।"

' अरे साहब, चीन का कराया तो है।"

"ओह, आप इस वहम म रह गय कि हागकाग चीन का ही भाग है, पर ऐसा नही।"

"क्या आप मुझे किसी तरह ले चल सकत हैं ?" मैंने दीन होकर कहा तो वह बोले "आपक पास टिकट है पासपोट है हम आपको ले चल सकते हैं पर अन्तर्राष्ट्रीय नियमो के अनुसार रास्त म आपको गिरफ्तार करक जेल म डाल दिया जाये तो इसके आप खुद जिम्मदार होंगे।'

वह अपनी खाली सीट के लिए आदमी की खोज म लग गय और मैं अधमरा-सा बाहर बेंच पर जा बैठा—मैं और कर ही क्या सकता था उस समय !

यह मेरा सस्मरण नहीं है, तो क्या कोरी गप है ? ना, यह एक मित्र के अनुभव की नमक मिच लगी तस्वीर है। कहू इसक रग भल ही चटकीले हों, सन्देश मार्मिक है। वह मन्दश मागदशक है और जीवन की यात्रा मे आग बढ़ने वाला को कहता है कि बड-से-बडे पात्र म यदि छोटा-सा छद हो तो जसे हम उस परिपूण नही रख सकत, वसे ही बडी-स-बडी योजना भ पूण नहीं हो सकती यदि उसम छेद हो उसके आरम्भ स अन्त तक आनवाली छोटी-स छोटी बात पर विचार न कर लिया गया हो।

जन धम का मूल मन्त्र है—सम्यक दशन, सम्यक ज्ञान सम्यक् चारित्राणि मोक्षमार्ग। इसके दाशनिक अर्थों और फलितार्थों पर तो ग्रन्थ लिख गय हैं पर उसका व्यावहारिक अथ है अच्छी तरह देख अच्छी तरह समझ और अच्छी तरह आचरण कर—जीवन की पूणता का यही माग

पडेगा और जीवन म निराशावादी दृष्टिकोण प्रवल हो उठेगा, पर मृत्यु को हम महान् क्से मान सक्त है जबकि हम देखते है कि लाखो वर्षों से मृत्यु ससार के जीवन का अपने भयानक जबडो से दबा रही है, फिर भी ससार मे मत्यु नही जीवन ही पनप रहा है। युद्धा मे भयक्र विध्वस होता है, पर देखते-देखत नया निर्माण उसे ढक लेता है भुला देता है। हिरोशिमा इसी सत्य का तो एक प्रतीक है, मैं उसे देखकर जीवन के प्रति एक नयी आस्था, एक नया विश्वास प्राप्त करूँगा और इसका असर मरे साहित्य पर पडेगा। मेरी कलम नयी दीप्ति से चमक उठेगी।

मरी विदेश यात्रा अब तय है। 5000 रपय मामाजी दे देंगे और 3000 रुपये प्रकाशक न मुझे देन का वादा कर लिया है। कुछ मेरे पास हैं और कुछ इधर उधर से मैं क र लूगा। बस दीवारें टूट गयी, सडक साफ है यह उडा वह पहुचा, यह दखा वह परखा कि विदेश यात्राआ म एक कलम मानी जाये और उम किताब को विजिटिंग काड बनाकर दो चार इण्टरव्यू और तब एक शानदार नौकरी, बस अब मौज ही मौज है।

लो यह तुम्हारे मामा जी का काड आया है।" पिता जी ने कहा।

काड ! काड आया है ? क्या ? काड क्या आया, पाँच हजार का ड्राफ्ट नही आया पिता जी ?

अरे भाई जो डाक्यि न दिया वह तुम्ह दे रहा हू, पर तुमम इतना उतावलापन क्या है ? काड पढो तो सही क्या पता उसमे ड्राफ्ट भेजने की बात ही लिखी हो।"

सचमुच मुझे अपनी जल्दबाजी पर बहुत लाज आयी और मैंने जल्दी-जल्दी काड पढा। उसम सचमुच 2 3 दिन म 5000 रपय का ड्राफ्ट भेजने की बात लिखी थी। मेरी घबराहट खुशी मे बदल गयी। समय की बात सभी अपना न साथ दिया और रुपयो का प्रबन्ध हो गया। सबस बडा रुपया भया सबसे बडा रुपया ! तो उसका प्रबन्ध हो गया। हवाई जहाज म सीट बुक हो गयी, तारीख तय हो गयी, टिकट आ गया और साजो-सामान के साथ ट्रेन म बठा तो मुझे छोडने के लिए सकडा आदमी स्टेशन पर आये। मालाए भी गले मे पडी और जिदाबाद भी गूजा। सच कहूँ मुझे लगा कि मैं एक नया आदमी हो गया हूँ।

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
घरयान (कविता सग्रह 1984)
... सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सुबह चार बजे मैं कलकत्ता पहुँचा और वेटिंग रूम म ही थोडा समय बिता, दोपहर को उस कम्पनी के कार्यालय म पहुचा, जिसकी माफत मैंने टिकट लिया था और प्रबध किया था। मैनेजर ने मेरा स्वागत किया और बताया कि ठीक 4 30 बजे जहाज उडेगा। तब उ होने मेरा पासपोट देखा और दूसरे कागज भी। कागज दखते-दखते वह गम्भीर हो गये और बोले, "हम अपने जहाज से आपको नही ले जा सकते।"

"क्यो ?" एक चीख सी मेरे मुह से निकल गयी।

"इसलिए कि आपने हागकाग का एडोसमेण्ट तो कराया ही नही।"

"अरे साहब, चीन का कराया तो है।"

"ओह आप इस वहम म रह गये कि हागकाग चीन का ही भाग है, पर ऐसा नही।"

"क्या आप मुझे किसी तरह ले चल सकते है ?" मैंने दीन होकर कहा तो वह बोले, "आपके पास टिकट है पासपोट है, हम आपको ले चल सकते हैं पर अन्तर्राष्ट्रीय नियमो के अनुसार रास्त म आपको गिरफ्तार करके जेल मे डाल दिया जाये तो इसके आप खुद जिम्मेदार होंगे।'

वह अपनी खाली सीट के लिए आदमी की खोज म लग गये और मैं अधमरा-सा बाहर बेंच पर जा बठा—मैं और कर ही क्या सकता था उस समय!

यह मेरा सस्मरण नही है तो क्या कोरी गप है ? ना, यह एक मित्र के अनुभव की नमक मिच लगी तस्वीर है। कहू, इसके रग भले ही चटकीले हो, स देश मार्मिक है। वह स दश मागदशक है और जीवन की यात्रा मे आगे बढने वालो को कहता है कि बडे से-बडे पात्र मे यदि छोटा सा छेद हो तो जस हम उसे परिपूण नही रख सकते, वसे ही बडी से बडी योजना भ पूण नही हो सकती यदि उसमे छेद हो, उसके आरम्भ से अन्त तक आनेवाली छोटी से छोटी बात पर विचार न कर लिया गया हो।

जन धम का मूल मन्त्र है—सम्यक दशन, सम्यक ज्ञान, सम्यक् चारित्राणि मोक्षमार्गः। इसके दार्शनिक अर्थों और फलितार्थों पर तो ग्रन्थ लिखे गये है पर उसका व्यावहारिक अथ है अच्छी तरह देख अच्छी तरह समझ और अच्छी तरह आचरण कर—जीवन की पूणता का यही माग

है। पूरा जीवन शास्त्र ही समाया हुआ है इस मूल मन्त्र मे और इसका सक्षिप्त भाष्य है यह कि जीवन की परिपूर्णता के लिए, लक्ष्य की पूर्ण सिद्धि के लिए दूरदर्शिता भी आवश्यक है और सूक्ष्मदर्शिता भी। हम दूर तक आँकें और छोटी-से छोटी बात को भी आकें, कहूँ योजना की रूपरेखा से ही सन्तुष्ट न हो, उसके विस्तार मे, डिटेल्स म भी उतरें क्योकि असफलता उन्ही म छिपी रहती है।

बात क्या है यह ? बात यह है कि जब हम कोई योजना बनाते हैं, तब हमारा मन उत्साह से भरा होता है और उत्साह के हाथ-पैर तो होते हैं मजबूत पर आँखें कमजोर। उत्साह म आदमी सोचता है यह पकडा वो मारा, या कूदे वो पहुँचे। मतलब यह कि उत्साह मे आदमी यात्रा की समता पर ध्यान देता है और विषमता को भूल जाता है। कहूँ सडक तो उसे दीखती है जिस पर उसके उद्यम की मोटर दौडी जायेगी पर उसके गडढे नही दीखते जिनमे धक्के खाकर मोटर खराब होगी और भयावने जगल मे रात भर पडे रहना पडेगा।

उत्साह और जोश के अतिरेक मे जब सिद्धि को सुगम मानकर मार्ग मे आनेवाली बाधाओ को आँकने और उसका उपाय सोचने म लापरवाही होती है तो कभी-कभी एसा मजाक बन जाता है कि इतिहास उस पर हमेशा हँसता रहता है। अमेरिका मे रोजगार के लिए पहुँचे भारतीयो ने गुलामी की कसक महसूस की और भारत को अग्रेजो के पजे से आजाद कराने के लिए गदर पार्टी का सगठन किया।

भाग्य स तभी आरम्भ हो गया पहला विश्व-युद्ध और 4 अगस्त 1914 को उसम शामिल हो गया इग्लण्ड। गदर पार्टी के लिए यह स्वर्ण अवसर था। प्रोग्राम बना कि विदेशो म रहने वाले कई हजार भारतीय भारत पहुँचकर गदर करें और अग्रेजो को भगा दें।

गदर पार्टी के प्रधान श्री सोहनसिंह भकना के नेतृत्व मे बागी लोग भारत की ओर चले। जहाज मे गरम भाषण होते थे। रास्ते के हर बन्दरगाह पर भाषण होते थे और अमरिका म खुले आम गदर का प्रचार हो ही चुका था पर जोश मे किसी ने यह नही सोचा कि ये सब खबरें अग्रेजो को मिल चुकी होगी। यहाँ तक कि बागियो ने पीनाग बन्दरगाह

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

से अमृतबाजार पत्रिका के सम्पादक को कलकत्ता तार देकर पूछा कि क्या भारत में गदर प्रारम्भ हो चुका है? इस तरह बाग़ियों से भरा ताशामारू जहाज़ दिसम्बर 1914 में कलकत्ता पहुँचा और अधिकांश बागी धरती पर पर रखने के पहले गिरफ्तार कर लिये गये। गदर योजना की रीढ़ टूट गयी और एक महान अध्याय बिना पूरी तरह लिखे रह गया।

इस बलिदानी जोश का शतशत अभिनन्दन पर होश की यह कमी? वही जीवन का मूल मन्त्र कि अच्छी तरह देख, अच्छी तरह समझ और अच्छी तरह आचरण कर और इस मूल मन्त्र का भाष्य कि जीवन की परिपूर्णता के लिए, लक्ष्य की पूर्ण सिद्धि के लिए दूरदर्शिता भी आवश्यक है और सूक्ष्मदर्शिता भी। बोलचाल की भाषा में कहूँ—जोश में हम उफनें पर होश न खोएँ।

कूडाघर और पार्क

• • •

—बाली से कौन लड सकता है महाराज ?

—क्या ऐसी उसमे क्या बात है ?

—महाराज, उसे ऐसा वरदान प्राप्त है कि जो उसके सामने आता है, उसकी आधी ताकत उसमे आ जाती है और वह उसे आसानी से पछाड देता है।

सुग्रीव ने राम से अपने भाई बाली के सम्बन्ध मे यह बात कही थी और यह बात इतनी पक्की थी कि राम भी बाली के सामने आकर नही लडे और उसे पेड की आड से ही उन्होने निशाना बनाया।

दूसरे की, सामने वाले की आधी ताकत अपने मे खीच लेने की शक्ति का जो वरदान बाली को प्राप्त था, वह हम सबको भी प्राप्त है, पर दुर्भाग्य यह है कि हमने कभी उसका उपयोग नही किया। इसलिए विरोधी हमे पीटते रहे हैं और हम उस पीटने को अनिवार्य समझकर पिटते रहे हैं।

काम की और सच बात यह है कि जब कोई विरोधी हमारे सामने आता है तो हम अपनी आत्महीनता से, कायरता से कुसस्कार से कहें आत्मविश्वास की कमी मे विरोधी का और अपना बल तोले बिना ही उसे अपने से शक्तिशाली मान लेते हैं। बस, यह मानना हमारी शक्ति को आधी कर देता है और वह आधी हमारे विरोधी को प्राप्त इस अर्थ मे हो जाती है कि हम उससे आधे रह जाते हैं। इसी का फल है कि वह पीटता है और हम पिटते है। हममे आत्मविश्वास हो, तो उससे हम विरोधी को आत्महीन कर सकते है, उसकी आधी शक्ति अपने मे ले सकते हैं।

1 ... 1950)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1934)
... सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

आत्मविश्वास का सबसे बड़ा दुश्मन है दुविधा, क्योंकि दुविधा एकाग्रता को नष्ट कर देती है। आदमी की शक्ति को बाट देती है। बस वह आधा इधर और आधा उधर, इस तरह खण्डित हो जाता है।

बाली का अखण्ड-अभग आत्मविश्वास ही उसका वरदान था और इसी से उसमे यह शक्ति थी कि वह विरोधी की आधी शक्ति अपने मे खीच ले। अपना आत्मविश्वास जगाकर हम भी यह शक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

मेरे एक मित्र अपनी पत्नी के साथ जगल म एक पेड के नीचे बठे मनो विनोद कर रहे थे। बात करते-करते पत्नी सो गयी, वह उपन्यास पढने लग। अचानक उन्होने देखा सामने से भेडिया चला आ रहा ह उन्ही की तरफ। भेडिया, एक खूखार जानवर। वह अस्त व्यस्त हो उठे और इतने घबरा गये कि पत्नी को सोता छोडकर ही भाग खडे हुए। भाग्य से कुछ दूर ही उन्हें एक बन्दूकधारी सज्जन मिल गये। वह उनके परा म गिर पडे—'मेरी पत्नी को बचाइए, भेडिया उसे खा रहा है—' वह गिड-गिडाए।

शिकारी दौडा दौडा उनके साथ पेड के पास आया, तो उनकी पत्नी यथापूर्व सो रही थी और भेडिया उसके पास रखी टोकरी मे मुह डाले पूरियाँ खा रहा था। 'कहा है भेडिया ?" शिकारी ने बन्दूक साधते हुए पूछा—तो काँपते हुए वह बोले—"वह है तो सामने।" शिकारी बहुत जोर से हँस पडा— भले मानस, वह बेचारा कुत्ता है। मालूम होता है तुमने कभी चिडिया घर मे भी भेडिया नही देखा और उसकी तस्वीर ही तस्वीर देखी ह।' क्या बात हुई यह ? यही कि भय न उन्हें आत्मविश्वास-हीन कर दिया, तो उनकी आधी क्या पूरी की पूरी शक्ति ही उस कुत्ते मे समा गयी।

जो स्थिति मानव या पशु शत्रु की है वही स्थिति दूसरी विपत्तियो की है। उदाहरण के लिए रोग या मुकदमे की विपत्ति। कुछ लोग रोग मे इतनी हाय हाय करते हैं कि दूसरो का जीना हराम कर देते हैं। मैं एक बार अपने मित्र के घर गया। वह प्रसन्नता से मिले, उनकी पत्नी चाय ले आयी। हम चाय पी रहे थे कि कराह और क्रन्दन से भरी आवाज आयी—

"हाय मर गयी। अरे डाक्टर को बुलाओ। मेरा दम निकल रहा है।"

कष्ट के प्रति आत्मीयता मेरा संस्कार है। मैंने चाय का प्याला नीचे रख दिया और चौक मेरे तन-मन पर छा गयी, पर मित्र और उनकी पत्नी साधारण स्थिति मे ही थे। यहाँ तक कि मेरी असाधारणता ही उनके लिए असाधारण थी— क्यो क्या बात है भाई साहब ?' मित्र ने पूछा।

कोई बहुत अधिक कष्ट मे है।" मैंने कहा, तो श्रीमती जी मुस्कराई और श्रीमान जी हँस पडे। मैं और भौचक दूसरे के कष्ट पर ऐसी हँसी! तब उनका समाधान— भाई साहब, दादी जी गाँव से आई है और जरा-जरा-सी बीमारी मे घबरा जाना हाय तोबा मचा देना उनका स्वभाव है। सच्चाई यह है कि उनमे आत्मविश्वास है ही नही, बस बीमारी का नाम सुनते ही मृत्यु का भय उन पर सवार हो जाता है। गाँव से आते वर्षा मे भीग गयी जुकाम-बुखार है, कोई खास बात नही आप चाय पीजिए।'

मैं अनमने से भाव से चाय पीकर दादी जी को देखने गया, तो मुझे देखते ही वह गिडगिडाई—"*भया मुझे बचाओ।*" और उन्होने मेरा हाथ पकड लिया—"मुझे बहुत तकलीफ है किसी अच्छे डाक्टर को बुलाओ।" सचमुच उनकी स्थिति साधारण थी। मैंने नाडी देखकर कहा "दादी जी, आप चिन्ता न करें, कल आपकी तबियत ठीक हो जायगी।

सुनकर दादी जी चीख उठी, 'मेरे दम निकल रहे हैं और ये लोग कहते हैं चिन्ता न करो।' और कमाल हो गया कि उन्होंने अपने हाथ से सोने का कडा उतारकर मेरी ओर बढाया, 'इस तरह मैं नही बचूगी भया तुम कडा बेचकर बडे डॉक्टर को बुलाओ।' उसके बाद उन्होंने जो कुछ कहा उसे सुनकर तो मुझे भी हँसी आ गयी। "अरे दुष्टो कफन लाने से तो दवा लाना ही अच्छा है।'

हम डॉक्टर को बुलाने का झूठा आश्वासन देकर लौट आये, पर उनका चिल्लाना बराबर जारी रहा। दूसरे दिन सुबह मैं उन्हें देखने गया, तो वह अँगीठी पर अपने लिए खिचडी बना रही थी। मैं हँस पडा, बेटा, भगवान ने बचा लिया तकलीफ तो बहुत ज्यादा थी।"

आदर्शवादी पुलिस कप्तान स्वर्गीय श्री एल० बी० बैजल ने हमारे जिले मे ग्राम रक्षा समितियो का संगठन शिक्षण इस तरह किया कि डाकुओ

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रयाण (कविता संग्रह 1984)
विश्वविद्यालय, सागर—470003

के आक्रमणो से घबराए हुए ग्रामीण भाई तो शेर हो गये और शेर बने हुए डाकुओ की हालत खस्ता हो गयी। कई डाकुओ के दल मौके पर पकड लिए गये। बातचीत मे एक दिन उन्होने कहा था, 'डाकू और गुण्डो म कोई खास ताकत नही होती। उनकी ताकत होती है उनका आतक। यह आतक नागरिको क आत्मविश्वास का दिवालिया कर देता है और जिसम आत्म-विश्वास नही वह योजनापूवक काम नही कर सकता। मेरा काम ग्रामीण भाइया म आत्मविश्वास जागत करना है। फिर बाकी सब कुछ तो व अपने आप ही कर लेत हैं।"

इसी बातचीत म बजल ने एक ऐसी बात कही कि मैं भौचक रह गया। बोले—"कृष्ण ने महाभारत मे सर्वोत्तम काम यही किया कि पाण्डवा को उन्होने आत्मविश्वास से भर दिया और कौरवा को आत्मविश्वासहीन कर दिया। वह अपने काय के महत्त्व का समझने थे तभी तो पूरे आत्मविश्वास के साथ उन्होने अर्जुन स कहा था—"मया हतान् त्व जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्। मैंने कौरवा को मार दिया है, तू इन मरे मारे हुआ को मार। परेशान मत हा युद्ध कर, तू निश्चय रूप से युद्ध मे अपने शत्रुआ पर विजय पाएगा।"

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस जब आई०सी० एस० की प्रतिद्वद्विता मे बैठे तो अग्रेजी परीक्षक न पूरी तेजी से घूमते हुए बिजली के पखे की ओर इशारा कर उनस पूछा, 'क्या इसकी पखुडियाँ गिनी जा सकती है?" सुभाष बाबू ने झट पखा बन्द कर दिया और बोले, "जी हाँ, सुगमता के साथ!'

परीक्षक प्रसन्न हो गया, पर उसन उन्हे एक बार और कसौटी पर कसा कि अपनी अँगूठी उनके सामने रखकर पूछा, "क्या इसमे से सुभाषचन्द्र बोस पास हो सकता है?" सुभाष बाबू न अपने नाम का विजिटिंग काड मोडकर उसमे से पास करत हुए कहा, 'जी इस तरह!' यह है अभग आत्म विश्वास। इसके अभाव मे वह घबरा जाते और ऊटपटाग जवाब देते और फेल हो जाते।

भय आत्मविश्वास का शत्रु है और आत्मविश्वास भय का, पर दोनो एक बात मे समान हैं कि दानो का प्रभाव आसपास के वातावरण पर

पडता है। कहूँ दोनो छूतिया रोग की तरह फलते हैं, सत्रामक है। मैंने इसका एक बार विचित्र चमत्कार देखा। मेरे एक मित्र ने एक लाख रुपये के मूलधन से एक कम्पनी बनाने की घोषणा की। उनकी स्थिति बहुत साधारण थी और साथियो मे किसी को विश्वास न था कि जिसकी जेब मे चवन्नियाँ हैं उसे गिन्नियाँ देने वाले लोग मिल जायेंगे।

पहले दिन जब वह मुझसे मिले, तो मैंने पूछा, "योजना तो आपकी उत्तम है, पर पूजी का क्या प्रबन्ध होगा।

बोले 'पूजी? पूजी चारो तरफ से खिंची चलती आयेगी, पूजी बेचारी की क्या चिन्ता?'

उनका चेहरा सफलता के विश्वास से दमदमा उठा था उस समय, पर उन्होने बताया कि उनके पास इतने रुपये भी नहीं हैं कि वह इधर उधर जाकर लोगो से मिल सकें। दो-तीन दिन बाद उन्होने अपने घर की तस्वीरें, रसोई के कुछ बर्तन बेचकर टाइपराइटर किस्तो पर खरीद लिया और दूसरे ही दिन उसे किसी के हाथ कम कीमत पर बेच दिया, वह था 500 रुपये का पर लिये 350 रुपये। उनका चेहरा और भी दमक उठा। कुछ दिन बाद मेरे पास आये तो उनकी कम्पनी का छपा हुआ नियमपत्र (प्रास्पेक्टस) उनके पास था, जिसके सचालक मण्डल मे कई अच्छे नाम थे।

एक दूर के बडे नगर मे उनकी कम्पनी चल निकली। उन्हे अपनी सफलता का विश्वास था उसने दूसरो को प्रभावित किया अपनी पूजी लेकर वह उनके साथ आ मिले। तभी एक दुर्घटना हो गयी। उन्होने अपने नगर के काबुली पठान से कभी कुछ रुपये उधार लिये थे। वह पूछताछ करता उनके कार्यालय पहुँच गया। समय की बात, उस समय कम्पनी की मीटिंग हो रही थी। चपरासी के रोकने पर भी वह दफ्तर मे घुस गया और गुर्राकर बोला 'आ शाला, तुम हमारा कर्जा मारकर यहाँ भाग आया। हम अभी तुमसे अपना रुपया लेगा।' बडी थूकाफजीती हुई और रुपये उसे दिये गये। ये रुपये कुल एक सौ चार थे।

इस रकम की लघुता ने सचालको के पर उखाड दिये—जो आदमी पठान से उधार लेता है और फिर सौ रुपये लेकर भाग आता है उसे लाख रुपये की कम्पनी कैसे सौंपी जा सकती है? इस घटना ने उनके मन का

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

विश्वास ढीला कर दिया और उनकी बात का प्रभाव जाता रहा। वह इतने गिरे कि पहले स्थान पर भी न टिक सके।

दूसरे हमारी क्षमता का विश्वास करें और हमारी सफलता को निश्चित मानें, इसके लिए आवश्यक शत यही है कि हमारा अपनी क्षमता और सफलता म अखण्ड विश्वास हो। हमारे भीतर उगा भय, शका और अधय ऐसे डायनामाइट हैं, जो हमारे प्रति दूसरो के विश्वास को खण्डित कर देते हैं।

हमारे विद्यालय मे, जो नगर से दूर जगल म था चौन्ह वष का एक बालक अपने घर स अकेला पढने आया करता था। कुछ महीने बाद दूसरा बालक भी उसके साथ आने लगा। यह दूसरा बालक बहुत डरपोक था। वह भूतो और चोरा की कहानियाँ उसे सुनाया करता। इसका ऐसा प्रभाव पडा कि वह भी डरपोक हो गया और वे दोनो मरी प्रतीक्षा करते रहते कि मैं चलू, तो व भी मेरे साथ चलें।

सूत्र यह बनता है—हतोत्साहो, निराशावादिया डरपोका और सदा असफलता का ही मर्सिया पढने वालो के सम्पक स दूर रहो। नीति का वचन है कि जहाँ अपनी, अपने कुल की और अपने देश की निन्दा हो और उसका मुहतोड उत्तर दना सम्भव न हो वहाँ से उठ जाना चाहिए। क्या? क्योकि इसमे आत्मगौरव और आत्मविश्वास की भावना खण्डित होने का भय रहता है।

अनुभव वाणी है 'मनुष्य के जीवन के लिए इससे अच्छी और कोई बात नही है कि वह सदा मानता-अनुभव करता रहे कि मेरे लिए सब कुछ अच्छा ही होगा। जो भी काय मैं हाथ म लूगा, उसमे मुझे सफलता अवश्य मिलेगी।"

बहुत-से मनुष्य यह सोच सोचकर कि हमे कभी सफलता न मिलेगी, दव हमारे विपरीत हैं अपने ही हाथो अपनी सफलता को पीछे धकेल देते हैं, उनका मानसिक भाव सफलता और विजय के अनुकूल बनता ही नही, तो सफलता और विजय कहाँ? वे तो अन्तरिक्ष से असफलता के परमाणुआ को ही अपन भीतर खीचते रहते हैं। यदि हमारा मन शका और निराशा से भरा है, तो हमारे कामा का परिणाम भी निराशा-जनक ही होगा,

क्योंकि सफलता की, विजय की, उन्नति की कुंजी तो अविचल श्रद्धा ही है।

क्या मैं अभागा हूँ ?

क्या मैं भाग्यवान हूँ ?

इन प्रश्नों का सही उत्तर जानने के लिए किसी ज्योतिषी से पूछने की आवश्यकता नहीं। इसके लिए तो आप अपने से ही पूछिए कि आप अपने को अभागा अनुभव करते हैं या भाग्यवान ? अभागा अनुभव करते हैं तो कोई आपको भाग्यवान नहीं बना सकता और भाग्यवान अनुभव करते हैं, तो कोई आपको अभागा नहीं बना सकता।

अपने मन को सफलता, विजय, सौभाग्य और श्रेष्ठता के विचारों और भावनाओं से सदा भरपूर रखिए और सफलता, विजय, सौभाग्य और श्रेष्ठता की ओर आगे बढ़ते रहिए।

नगर में कूड़ाघर भी होते हैं और पार्क भी। इसी तरह जीवन में उतार भी हैं और चढ़ाव भी। जो लोग हमेशा उतार की ही बात सोचते हैं वे उन लोगों की तरह हैं जो कूड़ाघरों के पास कुर्सी बिछाकर बैठ जाते हैं और शहर की गन्दगी को गाली देते हैं।

जन्म से अन्धी-बहरी, पर विचारक और लेखिका के रूप में विश्व-विख्यात हैलेन केलर की यह सूक्ति सदा याद रखिए कि 'सुख का एक द्वार बन्द होने पर तुरन्त दूसरा खुल जाता है लेकिन कई बार हम उस बन्द द्वार की ओर इतनी तल्लीनता से ताकते रहते हैं कि हमारे लिए जो द्वार खोल दिया गया है, हम उसे देख ही नहीं पाते।'

युद्ध में वे विजयी नहीं होते जो खन्दक खाइयों को ताकते-झाँकते हैं। विजयमाला पड़ती है उनके गले, जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति को तौलकर छलाँग लगाते हैं, खतरों से खेलते हैं। जीवन में इस अनुभव को कभी मत भूलिये—

> जो हड़बड़ा के रह गया वो रह गया इधर।
> जिसने लगाई ऍड़ वो खन्दक के पार था।

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—47000

मूल प्रवाह

• • •

एक सज्जन हैं मेरे विचारबन्धु। पूर्ण शिक्षित और कमाई धमाई मे सफल। उनके एक पत्र की पंक्तियाँ हैं—' विद्यार्थीकाल मे लेखन सहज-सुलभ था। अब लगता है कि वह आयास-साध्य होना जा रहा है। रुचि तो है लेकिन गति नहीं। भाव और विचार है लेकिन शृंखला और व्यवस्था नहीं। अनुभूति है लेकिन अभ्यास नहीं। इस स्थिति म विचार-सघष को कागज पर उतार दने मे हिचक होती है। पत्र पढकर ऐसा लगा कि अपना कोई मित्र अस्वस्थ है और मैं इस अस्वस्थता का विश्लेषण करने लगा कि जब रुचि है भाव है, विचार है और अनुभूति है तो लिखने म क्या बाधा है ! यह बाधा है उत्साहहीनता की। इसे ही कहगे इच्छा की तीव्रता का अभाव और सरल शब्दो म इस अस्वस्थता का परिचय है मानसिक शिथिलता।

यह मानसिक शिथिलता लेखक को ही नही दूसरे काय करने वालो को भी होती है। एक मित्र हैं, वह कचहरी म सरकारी कमचारी हैं। पहले बहुत अच्छा काम करते थे और शत प्रतिशत ईमानदार थ। उनके साथी जो काम तो कम करते थे और बेईमानी से कमाते अधिक थ उन्हे मूख कहा करते थे। धीरे धीरे वह अपने कम मे शिथिल होने लगे।

एक दिन मिले तो पूछा "क्यो भाई, सुना है तुम्हारे भी दीपक की जोत कम हो चली है क्या यह सच है?"

बोले, "जी तो चाहता है कि शानदार ढग से काम किया जाये पर वसा काम अब होता नहीं—जाने मुझे क्या हो गया है भाई साहब ?

उनकी बात भी विचारबन्धु की तरह स्पष्ट थी कि वह काय से तो परिचित हैं पर कारण से नही। मैं उस कारण की खोज म उनसे बातें करता रहा और इन बातो मे उनके मुह से एक वाक्य निकला, तो मुझे वह कारण मिल गया। वह वाक्य था— हर समय आसपास काम करत साथियो की बात सोचता रहता हूँ।"

इस बात से उस रहस्य का पता कसे चला ? जो आदमी हर समय अपने सत्कम की ओर ध्यान न रखकर सतक न रहकर दूसरो के दुष्कम की ओर ध्यान देगा, उसकी अपने कम के प्रति निष्ठा निश्चय ही खण्डित हो जायगी और आज नही तो कल उसमे शिथिलता आयेगी ही।

यहाँ सत्कम और असत्कम का प्रश्न मुख्य नही है। मुख्य प्रश्न है एकाग्रता का। पहले भाई और उनकी तरह अनेक साथी अपन अध्ययनकाल म साहित्य के प्रति एकाग्र थे। बाद मे व व्यापार आदि कार्यों म लगे। उनम बहुत ही कम ह जो अपनी निष्ठा और एकाग्रता का दोना म सतुलन-समन्वय रख सकें नहीं तो अधिकाश एक तट से दूसरे तट पर बदल गये। पुराना काय पुरानी मित्रता की तरह अब भी उन्हे याद आता है। यह याद रस भरी है आकषक है पर एक याद ही है जो दिल को कभी-कभी धडकाती है पर हाथो को काम मे जुटाती नही।

बहुत लोग है जो पहले बहुत अच्छे लेखक थे बाद म व्यापारी व्यवसायी हुए तो बस व्यापारी-व्यवसायी ही रह गये। बहुत लोग है जो वकील थे बाद म राजनीतिज्ञ हो गये और बस राजनीतिज्ञ ही रह गये। बहुत लोग है जो नम्बर एक के डाक्टर थे बाद म किसी दूसरे काम म लगे और उसी के हो गये।

बातें तो बिखर-सी रही हैं। उन्हे समेट लें तो आगे चलें। बहुत-से लोग है जिनमे एक से अधिक प्रकार की रचना शक्तियाँ हैं और बहुत-से लोग है जिनम एक ही प्रकार की रचना शक्ति है पर वे समझते है कि हममे अनेक प्रकार की रचना शक्ति है।

जगबीती स आपबीती बडी है इसलिए आपबीती पहले कहू। मैंने साहित्य मे कविता लिखन स आरम्भ किया और बाद मे हस्तलिखित पत्र निकाले और लख लिखे। तब मुझ अनुभव हुआ कि कविता क क्षत्र म मेरी

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
धरयान (कविता संग्रह 1984)
", सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

रचना शक्ति कमजोर है, तो मैंने उसे छोड दिया और लेखन एव पत्र-कारिता मे अपनी रचना शक्ति की एकाग्रता को बाँट दिया। मेरे सामने व्यापार और ऊँची नौकरियो के अनेक अवसर अनेक बार आये, पर मैंने उनकी ओर इतना भी ध्यान नही दिया जितना जुलूस मे अपने इधर-उधर चलते आदमियो पर देता हूँ। क्यो? इसलिए कि मैंने समझ लिया था कि मेरी रचनात्मक शक्तिया का सही उपयोग पत्रकारिता और लेखन है, व्यापार या नौकरी नही।

मेरे मित्र हैं श्री कौशलप्रसाद जैन। उन्हे अनुभव हुआ कि उनकी रचना शक्ति का बहाव व्यापार की ओर है। उन्होने 18 वर्ष की अवस्था से व्यापार आरम्भ किया, 32 वर्ष की अवस्था तक व्यापारिक असफलता की पाँच ऐसी पटखनियाँ खायी कि दूसरा आदमी एक मे ही कब्र मे जा सोए, पर वे जमे रहे और अन्त मे उन्हे ऐसी सफलता मिली कि उनके निन्दकों का मन भी प्रशसा से भर गया।

तो आवश्यकता है कि हम अपनी रचना शक्ति के मुख्य बहाव को पहचानें और उसकी ओर ही अपनी निष्ठा और प्रयत्ना को केन्द्रित करें।

यह हुई उनकी बात, जिनकी रचना शक्ति का बहाव एक ही दिशा की ओर है, पर जिनकी रचना शक्ति का बहाव एक से अधिक ओर है वे क्या करें? वे यह करें कि अपनी एकाग्रता का उचित अनुपात मे बाँट दें जैसे एक योग्य युवक अपनी वफादारी को अपनी माता और पत्नी के बीच इस तरह बाँट देता है कि दोनो मे सघर्ष की भावना उत्पन्न ही न हो—दोनो एक-दूसरे से प्राण शक्ति पाती रहें।

लोकमान्य तिलक की रचना शक्ति के बहाव थे—लेखन, पत्रकारिता और राजनीति। यह एकाग्रता के समन्वय का चमत्कार ही तो है कि वह 'आरायन' और 'गीता रहस्य' लिख सके, केसरी का तेजस्वी सम्पादन कर सके और नरमदली घातक राजनीति की नीव उखाड कर भारत की राजनीति को सघर्ष के पथ पर लगा सके।

उन्ही की तरह डॉ० सम्पूर्णानन्द की रचना शक्ति का बहाव लेखन और राजनीति की ओर था। उन्होने दोनो मे अपनी एकाग्रता का समन्वय कर लिया। उसी का फल था कि वे अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के लेखक हो

कर भी उत्तरप्रदेश के मुख्यमत्री हुए और मुख्यमत्री होते हुए भी उनकी क़लम अपना काम करती रही।

अब उनकी बात, जिनकी रचना शक्ति का बहाव एक ही तरफ है, पर वे समझते हैं कि वह बहुमुखी है। ऐसे लोग भाग्यहीन होते हैं और कभी कही अपना स्थान नही बना पाते। एक नवयुवक ने एक-दो बार प्रकाशित करन के लिए अपनी रचना मुझे भेजी। उसमे प्राण ही न थे, मैंन वापस कर दी। इसके कुछ दिन बाद वह मेर कार्यालय म आये। परिचय हुआ—एकदम नवयुवक। पूछा— भया, पढते हो अभी ?"

अच्छा-खासा व्यापारी घर है। पूछा— तो घर का यापार धधा ही दखते हा ?"

उत्तर मिला—"ना !"

तब पूछा—"तो क्या करत हो ?"

उत्तर मिला—"बस लिखता हू।"

अजीब मा लगा, फिर भी पूछा—"अभी तक क्या-क्या लिखा है ?"

उत्तर मिला—' कोई 4000 कविताएँ और चार उपयास लिखे हैं।'

मेरे पास जो रचनाएँ आयी थी लचर फचर थी और दूसरे किसी पत्र मे उनकी काई रचना न पढी थी इसलिए पूछा, आपकी पुस्तकें और रचनाएँ कहाँ कहा छपी है ?"

बोले—' अब यवस्था हो रही है।"

बग से अपनी कविताओ का गटठर मा निकाल कर उहाने मुझे दिखाया और बाले—' हरेक टेकनीक पर मैंने कविताएँ लिखी हैं।

मेरा विश्वास है कि यह रचना शक्ति के बहाव को गलत समझन का उत्तम उदाहरण है। यह युवक अपनी दूकानदारी म लगता तो अभी तक सफलता उसके द्वार कभी की आ गयी होती, पर अब बदरिया के मरे बच्चे की तरह उन निरथक कागजा को छाती से लगाये फिर रहा है और इस तरह अपनी असफलता का स्वय विधाता है।

एक और मित्र है। कई जमो से पत्रकार-लेखक रहे ह। बहुत ही पनी प्रतिभा के जमजात स्वामी हैं पर पहले राजनीति के चौराहे पर धक्के खाते रहे, बाद म मास्टरी की गलिया मे और बस यो ही बर्बाद हो गये।

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
धरपान (कविता सग्रह 19^4)
सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

एक मित्र हैं और चिकित्सा उनकी रचना शक्ति का मूल प्रवाह है, पर जब-जब चिकित्सा ने उन्हें धन दिया कि वे अपने काय को आगे बढा सकें, तब तब वे दूसरे कामों मे उलझ गये। कभी व्यापार मे, तो कभी चित्रकला मे और बस इसी चक्कर मे उनकी रीढ की हड्डी टूट गयी।

जीवन के क्षेत्र मे उतरते ही हम देखते हैं कि राहें हमारे सामने फली हैं। हम स्वतन्त्र हैं कि चाहे जिस राह पर चलें पर हमारी ही बुद्धि हमसे पूछती है—इस तरफ चलें ? उस तरफ चलें ? किस तरफ चलें ?

इस प्रश्न का सही उत्तर मिलने का जय है जीवन की सफलता और सुख शान्ति और गलत उत्तर मिलने का फल है जीवन की असफलता और दुख भ्रान्ति। जीवन की आवश्यकता नम्बर एक है अपनी रचना शक्ति के मूल वहाव को समझना और आवश्यकता नम्बर दो है उस बहाव के साथ अपने को एकाग्र कर देना। इस मूल वहाव का ही नाम है प्रकृति। वीर क्षत्रिय अर्जुन जब अध्यात्म के राग गाकर युद्ध का विरोध करने लगा तो महान जीवनशास्त्री कृष्ण ने कहा, 'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति—अर्जुन, तू युद्ध के विरुद्ध वैराग्य के पथ पर चलेगा तो तेरी प्रकृति तेरा स्वभाव तेरी रचनात्मक शक्ति का मूल वहाव तुझ पर अंकुश लगाएँगे, तुझे झकझोरेंगे।"

कृष्ण की इस छोटी-सी पंक्ति में अपनी रचनात्मक शक्ति के मूल वहाव के विरुद्ध चलने वालों की असफलता का रहस्य छिपा है। जब आदमी अपनी रचनात्मक शक्ति के मूल प्रवाह के विरुद्ध चलता है तो यह मूल प्रवाह उसकी गति पर अंकुश लगाता है, रोकता है, बाधा डालता है, और इसका फल यह होता है कि वह एकाग्र नहीं हो पाता। एकाग्रता से तन्मयता का जन्म होता है और तन्मयता जीवन की सम्पूर्ण शक्तियों को जगाकर काम में तो जुटाती ही है श्रम को सरस भी कर देती है। इस स्थिति मे आदमी पूरी ताकत से काम में जुटता है, उसमे आनन्द लेता है, बढ़ता है, बढ़ता ही जाता है और सफलता पा लेता है।

इसके विरुद्ध चलने पर आदमी की शक्तियाँ बँटी रहती हैं बिखरी रहती हैं, उसे अपने काम मे रस नहीं आता और वह आधे जी से काम करने के कारण असफल हो जाता है। तो हमारी सफलता अपने मूल प्रवाह को समझने और उसके प्रति एकाग्र होने में है।

स्वतन्त्रता के लिए

• • •

1945 की बात है।

कलकत्ता में वीर शासन जयन्ती के नाम से भगवान महावीर के धर्म प्रवर्तन की ढाई हजारवीं वर्षगाँठ मनायी गयी थी। मैंने अपने जीवन में ऐसा सांस्कृतिक महोत्सव नहीं देखा। मन राष्ट्रीय मांगलिकता से भर उठा था।

हम उत्सव के बाद कलकत्ता से लौट रहे थे। ट्रेन शाम को चली, खाना खाकर सोने की तैयारी हुई। रेल के डिब्बे में नीचे की एक बर्थ पर श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन थे दूसरी बर्थ पर श्रीमती रमारानी जैन थीं। ऊपर की एक बर्थ पर मैं था दूसरी पर सामान था।

अभी आँखें जरा जरा झपक पायी थीं कि आवाज आयी— रमा !" यह साहू शान्तिप्रसाद की आवाज थी। बिजली जल उठी, रमा जी ने पूछा— क्या है ?" साहू जी अपने सरल भाव में बोले—'यहाँ बहुत बोझ है।"

'बोझ ! कैसा बोझ ? रमा जी ने आश्चर्य से पूछा। मैं भी कुछ न समझ पा रहा था। साहू जी ने ऊपर की बर्थ पर उँगली उठायी। मतलब यह कि ऊपर की बर्थ पर रखे सामान का बोझ उन्हें सोने नहीं दे रहा था। रमा जी ने कहा वह तो उस बर्थ पर है। साहू जी बालकों जैसी सरल मुद्रा में बोले कहीं भी है पर है तो मेरे ऊपर ही।

रमा जी ने अपनी बर्थ उनकी बर्थ से बदल ली और फिर बिजली बुझा

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
... सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

दी। डिब्बे मे फिर अंधेरा छा गया, पर मेरे भीतर जसे यज्ञ का दीपक जल उठा, जिसकी हर किरण मे एक प्रश्न था। कई फुट ऊँचे एक मजबूत वथ पर रखा बोध साहूजी को अपने ऊपर क्यो अनुभव हुआ ? क्या दिमागी ऐयाशी है ? जाने कितनी देर मेरा चिन्तनशील मस्तिष्क इस उधेडबुन म लगा रहा और तब यह निष्कर्ष आया—यह ऐयाशी, झक या नवाबी का प्रश्न नही है, यह तो सुरुचि का प्रश्न है। साहूजी की रुचि इतनी सुकुमार है कि वह दूर के बोध को भी अपना बोझ अनुभव करती है।

इस निष्कर्ष ने एक नया प्रश्न उभार दिया—जिस आदमी के हाथो मे करोडो रुपया के उद्योग धन्धे हैं, व्यापार-वाणिज्य है, वह उनका बोझ कसे सहता है ? इस प्रश्न की झपेट मे पहला निष्कर्ष रल गया खो गया, पर एक नये निष्कर्ष ने उसे फिर जमा दिया—यह निर्लिप्तता का क्षेत्र है। एक आदमी अपनी समद्धि म दल दल की तरह धस जाता है, दूसरा उसी समद्धि से टेनिस की गेंद की तरह खेलता है। गीता का योग कमसु कौशलम्' यही है। आत्मस्वतन्त्रता का माग—अनासक्ति। इसे ही दूसरी जगह गीता ने कहा है—"इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञाप्रतिष्ठिता।" हम अपने उत्तरदायित्वा को कत्तव्य-बोध की दृष्टि से पूरा करें उनस दब न जायें।

और यदि कोई उत्तरदायित्व, जीवन का कोई कम, हमार व्यक्तित्व का बोझ, हमारी आत्मा के लिए गुलामी बनन लग, ता हम क्या करें ? ठीक जगह पर ठीक प्रश्न है और अपना समाधान चाहता है। समाधान दिया है हमारे नीतिकार न—

त्यजेदेकम् कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुल त्यजेत
ग्रामजनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवी त्यजत।

इन दो पक्तियो म भारतीय प्रजातन्त्री मनावत्ति का सार समाया हुआ है। कुल के, खानदान क हित म बाधक हो ता एक मनुष्य को छाड द, ग्राम के हित मे बाधक हो, तो खानदान का छोड दे और जिल क हित म बाधक हो, तो ग्राम का छाड दे पर आत्मा क हित म बाधक हा, बन्धन बनता हो तो सारी पृथ्वी को छाड दे—लात मार द।

इसका मोटा अथ हुआ कि आत्म स्वातन्त्र्य का—व्यक्ति की आनन्द-

पूण उन्मुक्त स्वतन्त्रता का माग है त्याग। मैं इसे पाण्डित्य के मायाजाल से निकालकर सादगी की सतह पर रखना चाहता हूँ और कहना चाहता हूँ कि जो व्यक्ति, अपन व्यक्तित्व को बन्धन से मुक्त उन्मुक्त एव आनन्द पूण रखना चाहता है, वह सादा जीवन जिये, अपनी आवश्यकताओं को कम रखे कम स कम रखे।

मुझे याद आ रहे हैं मौलाना मजूर नबी साहब। देश की स्वाधीनता के सग्राम मे वह हमारे साथी योद्धा थे। देश स्वतन्त्र हुआ, उसमे प्रजातन्त्री सविधान लागू हुआ, वयस्क मताधिकार के आधार पर 1952 मे पहले चुनाव हुए। नबी साहब काग्रेस के नम्बर एक कायकर्ता थे फिर भी उन्होंने विधान सभा की सदस्यता के लिए कोई प्राथना पत्र दूसरे साथियो की तरह नही भेजा पर काग्रेस हाइकमाड न नबी साहब को अपना उम्मीदवार बनाया। नबी साहब जस उम्मीदवारी मे निर्लिप्त थे, वसे ही निर्लिप्त चुनाव मे रहे। अपने भाषणो म उन्होने बार बार कहा— मैं अपने बडो के हुक्म से उम्मीदवार हो गया हूँ पर यह चुनाव तो काग्रेस का ही है। जो लोग काग्रेस की नीतियो को पसन्द करते है, व बलो की जोडी को वोट दें।"

मौलाना चुनाव जीत गये। 1957 मे भी यही हुआ पर 1962 का चुनाव आया तो उन्होने चुनाव लडने से साफ इन्कार कर दिया "अब किसी और को यह खिदमत सौंपी जाये।" उनके नाम पर जीत इस बार भी निश्चित थी और दूसरे किसी नाम पर जीत मे सन्देह था। मैं बडा के अनुराध पर उनके पास आया, 'आपके लिए मतदाता तयार हैं, साथी काम करने को तयार हैं फिर आप क्या हट रहे है?'

बाल मैं जानता हू कि जीत शर्तिया है पर इस तरह के कामो का दिमाग़ी तराजुन (मानसिक सतुलन) पर असर पडता है और अपनी भीतरी शान्ति की कीमत पर कोई काम करने को मैं तयार नही हूँ।' यह है आत्मस्वतन्त्रता का बन्धन बन्धन से बचने का माग। हम अपनी जरूरतो को, इच्छाओ को कम रखें इसे समझन की आवश्यकता है। अपनी जरूरत बढी हो, इच्छाएँ ज्यादा हो, तो हम उन्हे पूरा करने मे साधनो की पवित्रता का सिद्धान्त नही पाल सकते और साधना की पवित्रता का सिद्धान्त टूटा कि हम पतन क गर्त म गिरे।

जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
घरघाम (कविता संग्रह 1934)
नगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

भाई मगलसैन जैन आदशवादी युवक थे। उनका नियम था कि पानी छानकर ही काम मे लेंगे। एक बार प्रचार काय मे मेरे साथ गाव गये। गरमी का मौमम था, पर पूर दिन उन्होने पानी नही पिया। लौटते समय मैने पूछा, तो बोल—'आज अपना छन्ना साथ लाना भूल गया था। दूसरो स छानकर पानी लान की बात कहने म सकोच हुआ तो पानी ही नही पिया। हमार घर तो आपने दखा ही है कि नल की टूटी पर छन्ना बँधा रहता है और बिना छनी एक बूद भी काम म नही लायी जाती।" मैन उनकी निष्ठा को सराहा पर एक दिन उनके घर म आग लग गयी तो उन्होन आर उनके पडोसियो न बाल्टी पर बाल्टी पानी डालकर उसे बुझा दिया। क्या यह पानी छना हुआ था ? स्पष्ट है कि नही। आग लगने पर पानी की शुद्धता कहाँ सम्भव है ! यही बात है कि आवश्यकताओ की आग लगी हो जीवन म सादगी न हो तो साधना की स्वच्छता का ध्यान कहाँ सम्भव है !

एक बार मेरा परम सौभाग्य जागा और कुछ क्षण मुझे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के चरणो म बठने का अवसर मिला। मेरा प्रश्न था—"आपकी दिव्य दृष्टि म जीवन का सर्वोत्तम विशेषण क्या है।" गुरुदेव का उत्तर था—"अवकाशपूर्ण।'

मेरी जिज्ञासा थी, गुरुदेव आजकल तो अति व्यस्त जीवन को ही साधक माना जाने लगा है क्या वह ठीक नही है ?' गुरुदेव का समाधान था—"तब जीवन उन्मुक्तता खो देता है और एक यन्त्र बन जाता है—किसी महत सजना के योग्य नही रहता।

बात साफ है—जिन्हे जीवन की विशिष्टता जीवन की उन्मुक्तता, आत्मा की स्वतन्त्रता और सजकता प्रिय है उन्हें आवश्यकताओ को, आकांक्षाओ को, लिप्साओ को नियमित नियन्त्रित करना ही होगा।

नम्रता के साथ अपनी बात कहूँ। पहले चार धोती, चार कुर्ते अपने लिए रखता था, पर सिर के रोग ने अपन ही धोये कपडे पहनने का सुख छीन लिया, तो वष म आठ धोती आठ कुर्ते रखने लगा। एक बार मेरे पुत्र न वष के बीच मे तीन धोतियाँ मुझे दी—'मैं ले आया था, पर धोती मुझसे नही पहनी जाती, आप ले लें इन्हे।"

धोतियाँ अलमारी में रख दीं, पर लगा कि मुझ पर बोझ है। कुछ ही घण्टों में वह बोझ बेचैन करने लगा और तब मैंने तीन धोतियाँ दूसरों को बाँट दीं। बड़ी शान्ति मिली धोतियाँ बाँटकर पर मुझ पर उनका बोझ क्यों था? वही साहू शान्तिप्रसाद जी की बात—'बोझ कहीं पर है, पर है तो मेरे ऊपर ही।"

हममें सादगी हो संग्रह के बोझ की अनुभूति हो, आत्मा की, अपने जीवन की उन्मुक्तता-स्वतन्त्रता का भाव हो, तो अल्प संग्रह धर्म की भाषा में परिग्रह की कमी हमें संग्रह की बहुलता से अधिक, बहुत अधिक सुख देती है और तब हम अनुभव करते हैं—ओह, हम कितने कड़े बन्धन में बँधे हुए थे और कितने उन्मुक्त, कितने स्वतन्त्र हैं।

एक सन्त से एक विजेता शासक ने कहा—"बोल तू क्या चाहता है? मेरे पास सब कुछ है मैं तुझे मुँहमाँगी चीज दूँगा।"

सन्त ने कहा— आगे से हट जा धूप आने दे।"

यह है आत्मा की स्वतन्त्रता, जीवन की उन्मुक्तता व्यक्ति की बन्धनहीनता जो आकांक्षाओं की आग बुझने पर ही प्राप्त होती है।

रज और खुशी

• • •

उस दिन मैं सुबह ही-सुबह घूमने निकला। सूरज अभी निकला न था। सो, न अधेरा था, न रोशनी थी। बस झुटपुटा सा छाया हुआ था।

अभी चला ही था कि एक मीठी और दद भरी आवाज ने मेरा ध्यान अपनी तरफ खीचा। मुझस कुछ ही आग एक बूढा फकीर गीत गाता जा रहा था—

दिन अच्छे बुरे सब तुझे होगे गुजारने।
रो कर गुजार या इह हँसकर गुजार दे ॥

मुझे तेज चलने की आदत है पर मरे पाँव भारी हो आये और मैं इन पक्तियो की गहराई म उतरने की चेष्टा करन लगा। सोचने लगा—'ठीक ही तो है जीवन मे ऐसे दिन भी आते हैं, जिन्ह हम अपने लिए बुरा मानते हैं। फकीर का सगीत हमे चेतावनी देता है कि दोनो ही तरह के दिन हमे बिताने पडत हैं और यह हमारे हाथ मे है कि हम उन्ह रोकर बितायें या हँसकर।'

मेरा मन बूढे के सगीत की गहराई मे और नीचे उतर गया और मैं सोचने लगा—यह तो ठीक है कि रोना दुख की निशानी है और हँसना सुख की, पर प्रश्न यह है कि जब साँस लेने वाली हवा म ही दुख भरा हो, तब हम उसे सुख कसे बना लें? मतलब यह कि आसुओ को मुस्कराहट मे बदलने की कला क्या है?'

मैं सोच ही रहा था कि अनायास महान लेखक तुगनेव का ध्यान आ गया। मैं तो आज सुख की मस्ती मे घूमने घर से निकला हूँ, पर तुगनेव

तो उस दिन दुख की मस्ती मे घर से निकले थे। सुबह का ऐसा ही झुट-पुटा कुहर मे डूबा हुआ था उस समय। तुगनेव की जेब मे एक भी पैसा नही था और वह चाय पीने के लिए बचन थ। अपना ओवरकोट पहन वह घर से निकले कि शायद कोइ दोस्त मिल जाये और चाय का जुगाड बैठ जाये।

वह अपने ध्यान म डूबे जा रह थ कि किसी चीज से टकराये, चौंक-कर देखा तो एक बूढा फकीर अपना ठिठुरता हुआ हाथ फैलाये सामने था। वह भाव विभोर हो उठे और उन्होने ओवरकोट की जेबो स अपने दोनो हाथ निकालकर उनमे बूढे का हाथ दबोच लिया। बूढे का हाथ बर्फ की तरह ठण्डा था और तुगनेव के हाथ गरम थ। दोनो न जाने क्या सोच रहे थे। न बूढा कुछ बोला, न तुगनेव के मुह से ही कोई शब्द निकला। यो ही कुछ क्षण बीत गये। थोडी देर बाद तुगनेव ने भिखारी का हाथ एक बार प्यार से दबाया और वह चल पडे। चलत चलत उन्होने सुना, बूढा भिखारी आप ही आप कह रहा था— 'भीख मागते जिन्दगी गुजर गयी, पर जो आज मिला वह कभी नही मिला था।"

यह दुख की स्थिति थी। तुगनेव भिखारी को एक पैसा भी देने म समर्थ नही थे और भिखारी इतना समय खोकर भी कुछ पा न सका था, पर अजीब बात है कि दोनो खुश थे, लेकिन क्या ? कस ? उत्तर बहुत सरल है। जाने या अनजाने तुगनेव आँसुओ को मुस्कराहट मे बदल देने की कला को जानते थे।

इस कला म सिद्धि प्राप्त करने के लिए किसी विश्वविद्यालय म जाने की आवश्यकता नही पडती और न किन्ही उपकरणो के सग्रह की ही, क्योकि यह कला भौतिक नही, मानसिक है। इस कला का सूत्र इन पक्तियो म छिपा है— मन के हारे हार है, मन क जीत जीत।

गाधी जी उन दिनो साबरमती आश्रम म रहते थे। सन् 1924 म अधिक वर्षा होने के कारण साबरमती नदी मे बाढ आ गयी। इसका प्रभाव आश्रम पर भी पडा। वहाँ पर पानी चढ़ आया। सरदार पटेल न सन्देश भेजा कि आश्रम छोडकर सब लोग अहमदाबाद शहर मे चले आयें। उन्होंने सबको ले आने के लिए सवारियो का प्रबन्ध भी कर दिया।

गाधी जी ने आश्रमवासियो को अपने पास बुलाकर कहा कि मृत्यु के रूप मे भगवान आ गये हैं और मैं उनके मुख मे समा जाने को तयार हूँ। आश्रम के पशुओ को छोडकर शहर चले जाने की मेरी इच्छा नही है। आप म *कौन-कौन जाना चाहते हैं ?*

गाधी जी पशुओ को मृत्यु के मुख मे छोडकर जाने को तैयार नहा थ, तो गाधी जी को छोडकर कौन जाने को तयार होता, पर जितनी देर मे बातचीत हुई उतनी देर मे पानी और ऊपर तक चढ आया। फिर भी गाधी जी पूरी तरह प्रसन्न थे और दूसरे लोग शान्त। एक सज्जन ने *गाधी जी से पूछा, 'मृत्यु सामने ही है, फिर भी आप प्रसन्न हैं। यह कैसा* आनन्द है ?"

गाधी जी बोले, यह सबके साथ मरने का आनन्द है यानी सामूहिक मृत्यु का आनन्द।" गाधी जी की बात सुनत ही रज की घडी खुशी म बदल गयी। परिस्थिति ज्यो की त्यो बनी रही, किन्तु मनस्थिति परिस्थिति से ऊपर उठ गयी।

' मैंने भी अपने जीवन मे एक विचित्र अनुभव किया है। हमारे देश मे जो जितना गरीब है, वह उतना ही प्रसन्न है। समाज मे क्या स्थिति है रिक्शा वालो की और कसा पसली तोड काम है उनका पर आपस मे ऐसी *हसी-मजाक करते हैं कि कभी-कभी बीरबल मात हो जाता है। एक दिन* मैं एक रिक्शा में बैठा जा रहा था कि पीछे से एक दूसरा चिल्लाया, 'अबे हटा अपना ठेला रास्त से।' मैं जिस रिक्शा मे बठा था, वह नयी थी और जो उसे ठेला बता रहा था, उसकी रिक्शा टूटी हुई थी। उसकी तरफ एक नजर डालकर मेरे रिक्शा वाले ने किसी फिल्म अभिनेता की टोन म कहा, "हुजूर आपको मेरे ठेले से क्या लेना है। अपना हैलीकोप्टर आगे बढाइए।" मैं तो जोर से हसा ही, दूसरी रिक्शा म बठे लोग भी हँस पडे और वह *रिक्शावाला झेंपकर अपनी रिक्शा एक तरफ से निकाल ले गया। जरा-सी* चूक से दोनो लड सकते थे। दोनो के लिए रज की घडी आ सकती थी, पर उस रिक्शा वाले ने उसे खशी मे बदल दिया—बिना कुछ खच या त्याग किये मीठी चुटकी ने जसे जादू कर दिया। कहाँ टूटी रिक्शा, कहाँ हैलीकोप्टर!

महान् वैज्ञानिक एडीसन ने एक बात बडे मार्के की कही है—"मनुष्य को इस बार म हमेशा सावधान रहना चाहिए कि वह इतना अधिक बुद्धिमान न हो जाए कि हँसने जसी महान् ख़ुशी से, जो जिन्दगी को सही मान मे जिन्दगी बनाती है दूर हो जाए।" क्या मतलब इस बात का? मतलब यह कि हम ऐसे सोच विचार म हरदम फँसे न रहें, जो हमे ख़ुशिया से ही दूर कर दे।

आज सण्टोमन की बात याद कर यह बात और भी साफ समझ म आ जाती है। वह कहते हैं, जो जवान रोता नही, वह जगली है और जो बूढा हसता नही वह बेवकूफ है। जो जवान भावुक होते हैं, वे आवेश और आवेग मे विह्वल हो जात है, पर बुढापे म आदमी सतुलित हो जाता है, वह जीवन की सदा बहती धारा को देखता है उसमे उठती मिटती लहरो को नही। वह अपने सन्तुलन से रज की घडी को ख़ुशी की घडी म बदल देता है।"

जवानी और बुढ़ापा उम्र से नहीं, स्वभाव से, मन से बँधे हैं। राम लक्ष्मण सीता तीनो ही राज-पाट छोडकर वन जाते समय जवान थे। मुनि विद्यानन्द जी ने उसी समय की एक घटना उस दिन सुनाई जो रज की घड़ी को ख़ुशी म बदलने की कला का उत्तम उदाहरण है। राम सीता लक्ष्मण दिन भर चलकर थक गये और रात मे उन्ह सोने का प्रबन्ध करना था। एक वृक्ष के नीचे राम लक्ष्मण ने भूमि को तोडकर समतल किया। बिस्तर तो उनके साथ थे ही नही, लक्ष्मण दुखी होकर एक तरफ़ बैठ गये। सीता ने पूछा, 'क्या लक्ष्मण, क्या बात है? इतने दुखी क्यो हो?" लक्ष्मण ने कहा, "यह सोचकर मेरा कलेजा टूटा जा रहा है कि महाराज जनक की पुत्री और महाराज दशरथ की पुत्रवधू इस भूमि पर सोएगी।" सचमुच रज की घडी थी वह, पर सीता ने अपने उत्तर से उसे ख़ुशी मे बदल दिया। वह बोली 'मैं तुमसे भी अधिक दुखी हूँ कि महान् वीर राम और महान् त्यागी लक्ष्मण जिस भूमि पर सोयेंगे मुझे भी उसी भूमि पर सोना पडेगा। उनके सोने की भूमि कुछ ऊँची होती और मेरी सोने की भूमि कुछ नीची तो मेरे लिए शोभा की बात होती।' सीता की बात पूरी होते ही रज का वातावरण ख़ुशी म बदल गया।

अब हम यह सोचें कि रज और ख़ुशी है क्या? हम चाहे तो रज और

उस अंबर का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरपान (कविता सग्रह 1934)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

खुशी पर लम्बे भाषण दे सकते हैं, पर जीवन की बडी सचाई यह है कि न रज कोई चीज है, न खुशी। ये दोनो मन के भाव हैं। जिसे या जिसमें हम खुशी मान लें वही खुशी है। कहा तो मैंने कि रज और खुशी दोना मन के भाव हैं। लोक जीवन मे एक मुहावरा चलता है—'हर हाल मगन, हर हाल जतन।' मतलब यह कि जीवन म ऐसी कोई घडी नही है जिसमे आदमी खुश न रह सके, क्योकि जीवन म ऐसी कोई घडी नही, जिसमे आदमी बिगडे को बनाने का कोई प्रयत्न न कर सके।

बीज और अंकुर

• • •

एक रोगी अपने रोग से ग्रस्त
कौन है जो रोग से मुक्ति नही चाहता ?
फिर पीडा का तकाज़ा हर क्षण सिर पर सवार !
जहाँ जिसका नाम सुनता है कि वह अच्छा चिकित्सक है,
वही बेचारा जाता है, दवा खाता है, परहेज़ करता है,
पर—
रोग टस-से-मस नही होता, उल्टे कुछ बढ़ जाता है।

रोगी के मन को धक्का लगता है
मृत्यु का पाश उसे अपने को घेरता दिखायी देता है।
कौन है जो स्वेच्छा से मरना चाहे ?
रोगी फिर साहस बटोरता है
किसी नये चिकित्सक के पास दौडता है,
उसकी दवा खाता है, परहेज़ करता है
पर—
रोग टस-से-मस नही होता उल्टे बढ जाता है !
इसी तरह कई बार आशा निराशा के दौरे आते हैं।

तब एक दिन अकस्मात्—
जब रोगी एकदम निराश पड़ा रहता है अपनी शय्या पर,

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1934)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जिसे वह मानने लगा है अब,
रोगशय्या की जगह अपनी मत्युशय्या,
कोई उसे पुकारता है स्वय उसके पास आकर
पुकार का स्वर मधुर है, स्निग्ध है, गम्भीर है।
रोगी आँख खोलता है, देखता है
एक व्यक्तित्व अपने सामने
स्वस्थ, सौम्य, शात, स्नेही
और कहता है रोगी से—
क्या ? हो गये निराश ?
पर निराशा का तो प्रभु के राज्य म कही कोई स्थान नही !

रोगी मे विश्वास का नया अकुर उग आता है
आशा की बुझी जोत जल उठती है,
उसके चेहरे पर जीवन की झलक खेलती है,
वह पुकार उठता है—
"हाँ, मेरे प्रभु, मैं अब अच्छा हो जाऊगा।"
व्यक्तित्व का हाथ उठता है,
उसकी ओर बढ़ता है,
उसके मस्तक को स्पश करता है,
वाणी बिखरती है—
"उठो मेरे पुत्र ! उठो, तुम तो पूण स्वस्थ हो।"

रोगी अनुभव करता है
सचमुच वह पूण स्वस्थ है,
रोग, शोक, उदासी, निराशा और भय
भाग गये हैं, दूर कहीं बहुत दूर !
विश्व की भाषा मे यह एक चमत्कार है।

मैं कहता हूँ—हाँ, यह एक चमत्कार है!
फिर पूछता हूँ—यह किसका चमत्कार है?
सब खामोश हैं, पर इस खामोशी मे एक गूज है ?
"यह हमारे प्रभु का चमत्कार है।"
मैं इसका प्रतिवाद नही करता क्योंकि यह श्रद्धा की गूज है—
पर मैं मानता हूँ—
यह अंधी श्रद्धा की गूज है।

तब श्रद्धा की दृष्टि क्या है?
श्रद्धा की दृष्टि मानव,
जिसने रोगी मे मानव की प्रभुता का।
विश्वास जगाने की क्षमता उपार्जित की!

उस अंधेरे का कवि हूँ (कविता संग्रह 1931)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1934)
, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

बैल और प्रोफेसर

• • •

एक बैल मरा-मुर्दा-सा हो, तब भी कई मन बोझ खींचता है और भरे पुट्ठों का हो, तब तो बोझ का पहाड़ ही खींच ले जाता है पर उस दिन मैंने देखा कि दो भरे-पूरे बैल कुल सात-आठ सेर बोझ मे उलझे हुए हैं।

ठीक है, सुनने मे अजीब-सी लगती है यह बात, पर है यह सौ टका सच और सच क्या, अपनी आँखो देखी हुई।

यह भी ठीक है कि अंधेरे मे मटके का भैंसा और कुठले का भूत दिखाई दे जाता है, पर यह अंधेरे मे नही, दोपहर की खुली धूप मे खुली आँखो देखी बात है।

फिर यह कोई जादू या रहस्य तो है नही कि सन्तो की भाषा म गूगे का गुड हो कि जो खाये, सो स्वाद पाये, यह तो आँखो देखी बात है कि इसे जब चाहो कानो सुनी बना लो।

बात यह हुई कि मैं नहर की तरफ़ से शहर आ रहा था, तो मैंने एक जगह देखा कि ठेले के दो बैलो के रस्से एक साथ इटौल ढब्बू मे यो ही लिपटे हुए हैं। यो ही इसलिए कि न कोई गाँठ, न फाँस—बस एक मामूली लपेट, जैसे कधो पर लटकते मद्रासी साफे का कोई एक पल्ला गले मे लपेट कर पीठ की ओर फेंक दे—वही बात कि न कोई गाँठ, न फाँस, बस एक लपेट और वह भी ढीलमढाल।

और यह इटौल ढब्बू? इस ढब्बू म तीन इंटें सीमेंट स जुडी था और यह शायद किसी खम्भे का टूटकर गिरा हिस्सा था। इसका वजन होगा

कितनी विचित्र बात है कि कोई बिना बधे ही मान ले कि बध गया और यह भी इस हद तक कि जाँच पडताल की बात ही उनके दिमाग मे न आये, विद्रोह-बगावत का तो कहना ही क्या ?"

'आप एक नये चश्मे से इस मसले को देखें। बैल रोज ठेले मे जोड जाते हैं और ठेले से खोलकर खूटे में बाधे जाते हैं, तो इनके जीवन का कुल घेरा ही यह हो गया है बधना-बधे रहना। यही इनका स्वभाव है यही आदत और जब बधना ही जीवन है, तो जाँच पडताल क्या, बगावत विद्रोह क्या ?"

वह चले गये, तो मैंने बैलो को देखा। दोनो अपने स्थान पर खडे जुगाली कर रह थे। चेहरा पर उनके शाति और मुद्रा म पूण सतोष, जस यह रस्मा ही उनके जीवन की कृतार्थता हो। तभी आ गया ठलेवाला— "बाबूजी सलाम, क्या देख रहे हो ?"

"भाई सलाम, मैं यही देख रहा था कि तुम बिना बाँधे ही बलो को छोड गये। य कहीं भाग जायें तो क्या हो ?'

ठेलेवाला हस पडा, 'बाबूजी भाग जायें, तो फिर बल ही क्यों हैं ?"

" मैं चल पडा, यह सोचते हुए कि जो बिना बधे भी मान ले कि बधा हुआ हूँ और जो मान ले कि यह बन्धन अमर है, टूट नही सकता, वह बैल है।

● ●

गाय की कूण्ड मे टाकर के नीचे छिपा अन्धेरे मे यह कौन बठा है ? कहाँ ?

ओह, कही नही !

मनुष्य की याद भी क्या चीज है कि पलक झपकते आदमी को कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है। बला की बात सोचते-सोचते मैं पहुँच गया हूँ अपने बचपन मे। मेरे कुटुम्ब का एक लडका 10 12 साल का। शाम हो गयी, खेल कर घर न लौटा, तो घर मे हल्ला मचा और थोडी ही देर मे यह हल्ला पूरे कुटुम्ब मे फैल गया। दसियो आदमी अपनी-अपनी लालटेन लेकर दौडे और गलियो की ही नही, कुओ की भी खोज पडताल की गयी, पर जो खो गया था, वह न मिला।

आप हँस रहे हैं ? मैंने पहले ही कहा था कि आप मेरी पूरी बात सुन-कर कहेंगे कि आपने भी इस तरह के जीव देखे है ।

मेरे एक बन्धु है डबल एम० ए०, डॉक्टर और एक कालेज के प्रोफेसर। उस दिन उनकी सगाई का निमंत्रण मिला, तो गया। देखा काफी भीड-भाड है। सोचा, इतने लोगो को बुलाने की क्या जरूरत थी। खर, प्रोफेसर साहब आकर आसन पर बैठे—शरीर मे बहुत बढिया सूट और सिर नंगा। पडित जी ने ऐतराज किया, "नगे सिर को तिलक करना शास्त्र म वर्जित है।"

प्रोफेसर साहब चुप, पर मैंने कहा 'पण्डितजी, आप तो उस युग की बात कर रहे हैं जब नगे सिर रहना अशुभ माना जाता था।"

पण्डित जी बोले, 'जी, देखिये, यह धम की बात है, इसमे राय-सलाह नही चलती ?"

मेरा खयाल था कि प्रोफेसर साहब अब कुछ कहगे, पर व भीगी-बिल्ली बने बठे रहे। पण्डित जी ने चारो तरफ देखा, पर सभी लोग नगे सिर थे—बस एक सज्जन पतली बाढ की कलफदार गाधी टोपी पहने हुए थे। पण्डित जी ने उनसे लेकर वही टोपी प्रोफेसर साहब के सिर पर रख दी। अरे साहब, कुछ न पूछिये कि क्या फबी है वह टोपी, माथे से एक इच आगे और गुद्दी से भी एक इच आगे, जसे कद्दू पर काश्मीरी नाव का मॉडल रखा हो !

सब हँस पडे। प्रोफेसर साहब ने उसे हाथ से छूकर देखा, तो लोग दोहरे ही हो गय, पर प्रोफेसर साहब चुप रहे और टोपी उनके सिर पर शाभायमान रही। पण्डित जी अब भी सन्तुष्ट न थे। बोले, "प्रोफेसर साहब, गले म साफा डाल लीजिय !"

मैंने कहा, "पण्डित जी यह साफे का नही, मफलर का युग है।"

बोले, 'देखिये साहब, आप धम की बात मे युग का पेवन्द न लगायें।"

और कमाल ही हो गया कि पण्डित जी ने एक लडकी के कन्धा से गुलाबी नाईलोन की गोटा लगी चुन्नी खीच कर प्रोफेसर साहब के गले म

डाल दी। सब लोगो ने अट्टहास गुंजाया, पर प्रोफेसर साहब अविचलित भाव से आसन पर बैठे, बिना किसी सुधार या विचार के वह सब करते रहे जो उनसे कराया गया, एक ऐसे आदमी के द्वारा, जो संस्कृत का एक श्लोक भी शुद्ध न बोल सकता था।

भला, क्या करते रहे वह यह सब? जी, वह इसलिए करते रहे कि यह सब उन्होंने मान लिया था कि यह सब न करना सम्भव नहीं है, जैसे उन बलो ने मान लिया था कि हम वहाँ नहीं जा सकते और जैसे उस लडके ने मान लिया था कि मैं अपने घरवालो से नहीं बोल सकता। अब बताइये आप ही कि मैंने आपको जो समाचार सुनाया, वह लाख अदभुत हो, पर क्या सौ फीसदी सच नहीं है?

रोचक निबन्ध

o o •

आज मुझे एक रोचक निबन्ध लिखना है और लीजिए मैं सब कामों से निमटकर अपनी मेज पर आ गया हूँ। मुझे मेज पर कागजों को फैलाए रखना अच्छा नही लगता, तो देखा मेज पर एक फालतू कागज पडा है।

फालतू कागज है यह! सोचा फालतू कागज भला मेरी मेज पर क्यो आया? याद ने कहा—कल शाम चाय पी थी, सो मेज के कपडे को गन्दगी से बचाने के लिये यह कागज रखा गया था, जिससे प्याला इसके ऊपर रहे। सोहन ने प्याला तो उठा लिया और यह यही रह गया।

मैंने कागज को ध्यान से देखा। उस पर प्याले की तली का चक्र बना हुआ था। सोचा—प्याला गोल था और सोहन यह कागज मेज पर न रखता, तो जो निशान कागज पर है, वह मेज के कपडे पर पडता—मेज गन्दी हो जाती।

मन मे अचानक प्रश्न आया—तब तो यह कागज बडे काम का है, मेरे लिए उपयोगी है, फालतू नही है।

दिमाग यह सोच रहा था कि अभ्यास और आदत के सकेता पर चलने वाले हाथ ने अपना काम किया और उस कागज को उठाकर रद्दी की टोकरी मे फेंक दिया।

'अरे, यह क्या किया तुमने?' दिमाग ने हाथ से पूछा, तो हाथ ने कहा, 'क्या करता, फेंक दिया रद्दी की टोकरी मे। फालतू कागज की वही

तक तेज हो उठा—वाह जी वाह, यह अच्छी दया है कि निर्दोष-नन्ही चीटियों का हानि पहुँचाई जाय और मनुष्य जाति को सदा अपने विषले डक से कष्ट पहुँचानेवाली बर की सहायता की जाये !

तर्क और दया, दया और तर्क यह झूला बहुत देर तक ऊपर-नीचे होता रहा, पर अन्त में जीत हुई दया की और मैंने बर को अपने पेन की मदद से सीधा कर दिया। सीधा होते ही उसने अपना डक तेजी से इधर उधर घुमाया तो चीटियाँ भागी लपर सपर !

उन्हें घबराहट से भागते देख मुझे बडा आनन्द आया। मैंने उससे कहा "लो अब आओ इसके पास जरा तुम। और सोचा—कमजोर पर हरेक अपना जोर जमाता है और शक्तिशाली से सब डरते हैं।"

"लो, उड जाओ अब तुम !" मैंने कहा और बर की तरफ देखा। वह फिर उल्टी हो गयी थी और चुपचाप पडी थी, जसे कि इतनी देर म ही वह बहुत थक गयी हो।

कुरसी से उठकर मैं उसके पास बैठ गया। ध्यान से देखा किसी दुघटना मे उसके हाथ-पैर पूरी तरह क्षत विक्षत हो चुके थे और पेट छाती भी खरोचो से भरपूर थे। ठीक है, इस दशा म वह अधिक देर कसे बठ सकती थी !

तभी मैंने देखा, एक छोटी-सी चीटी धीरे धीरे उसके पास आ रही है। लो, वह पहुँच गयी उसके पास, और उसने बच बच कर उसे सूँघा, छुआ, देखा, आँका, गम्भीरतापूवक अपनी राय बनायी और तब वह दौड गयी एक तरफ। कुछ ही क्षणो के बाद मैंने देखा, वही नन्ही चीटी चार मोटी चीटियो के साथ आगे-आगे उन्ह राह दिखाती, चली आ रही है। लो, वे पाँचों पहुँच गयीं उसके पास और अब उन्होंने भी उसे सूघा, छुआ, देखा, आका, जाँचा। तब उन चारो ने मुह से मुँह मिलाकर सलाह की और एक ने उस छोटी से कुछ कहा, जिसे सुनते ही वह फिर एक तरफ को दौड गयी !

मैंने सोचा—ओह, यह छोटी-सी चीटी है सूचना अधिकारी और ये बडी चार हैं इस विभाग की बडी अधिकारिणी। छोटी ने खबर दी कि—

शिकार ठीक हालत मे है और तब बडे अफसरा ने उस शिकार की जाँच की। अब सम्भवत सफर मैना को खबर भेजी गयी है कि वह आकर शिकार को छावनी म खीच ले जाये।

व चारा बडी चीटिया बर के चार तरफ बठ गयी। यह सफर मना के आन तक शिकार का पहरा हो गया। मेरा अनुमान ठीक निकला। वह छोटी चीटी आठ चीटियो को लकर आ पहुची। उन चार चीटिया ने उन आठ को मुह स मुह मिलाकर कुछ समझाया कि आठा चीटियाँ बर के चारो ओर तजी स घूम गयी और अपनी जगह बना उसे खीचन लगी।

मैं कुर्सी मे उतर कर फिर उस बर के पास बठ गया और मैंने बिजली जला राशनी तज कर दी। मुझे आश्चय हुआ कि उन आठ ने बर को इस चतुराई से पकडा है कि बर मुह या डक स उन्ह कष्ट न पहुँचा सके। मेरे मन म आया कि भारतीय स्थल सना क सिपाही भी इस बर को इससे अधिक चतुराई क साथ तो क्या पकड पाते।

अब उन आठो ने पूरा जोर लगाया कि व बर को घसीट चलें परो बर अपनी जगह से नही हिली। तब उनम से एक ने इसकी सूचना उन चार को दी जो वही पास ही थी। वे चारा झपट कर बर के पास आयी और तजी से उसके चारा ओर घूम गयी। तब दा तो घुस गयी उसके डक के नीच और दो न खीचा—व आठ तो जुटी थी बस बर अपनी जगह से हिल गयी और चल पडी। उसके चलत ही वे चारा हट गयी। मोचा—ठीक ही है अफसर अपना काम करें मजदूर अपना। अफसर मजदूरी क्यो करें?

मैं अपनी कुरसी पर बठ गया और सोचने लगा—अब ये सब इस बर को अपन घर ल जायेंगी और चूँट चूँट कर खा लेंगी। मैं चीटियो को भगा भी दू ता क्या लाभ, क्योकि बर म अब जीन की या चीटिया को भगाने की शक्ति ही शप नही रही। मैंने उधर से अपना ध्यान हटान की चेष्टा आरम्भ की कि मन म आया कि शेर अपने शिकार को मार कर खाता है और आदमी भी पर यह चीटियाँ तो इस बर को जीत जी ही खा जायेंगी। मत्यु के क्षण कितन ददनाक होंगे कि मरनेवाला मर रहा है और खानेवाले खाये जा रहे हैं। एक के लिए हर ग्रास का नया स्वाद है और दूसरे के

लिए हर ग्रास एक नया घाव। करुणा से मेरा मन द्रवित हो उठा। लगा कि मेरी देह ही उन घावों से भर रही है।

कर्त्तव्य ने जोर से पुकारा—तू इसको इस कष्ट से नहीं बचा सकता ! यह पुकार इतने जोर की थी कि बिना और कुछ सोचे मैंने उठकर उन चींटियों को हटाया और चप्पल रखकर बर का जीवन समाप्त कर दिया। मुझे लगा कि कि मेरी देह के घाव भर गये ह पर तभी एक प्रश्न उठा—मैं अपने काय से बर का हत्यारा हुआ या रक्षक ?

मैं अपनी कुरसी पर बैठ गया। कागज सामने रक्खे थे और खुला हुआ पेन भी। ध्यान आया, मुझे तो एक रोचक निबन्ध लिखना था, पर मैं इस बर्र मे उलझ गया—अजीब चर्खा है यह दिमाग भी कि जिधर घूम गया, घूम चला।

मैंने पेन उठाया और काग़ज पर ध्यान दिया, तभी आ गये सूरदास जी। यह हमारे मुहल्ले के मन्दिर म रहते हैं और ऊँच-नीच म मेरे पास आ जाते हैं। आकर बैठ गये। मसला उनका मामूली था, सो निमटा दिया पर वह बठे रहे। मन मे पीली बर का दद भरा ही था, तो वह एक प्रश्न मे उमड आया। पूछा सूरदास से—' सूरदास जी, आँख का न होना जीवन का सबसे बडा अभाग्य है, फिर भी आदमी चलता ही है पर कृपा कर यह बतलाइए कि आपको आँख का होना सबसे अधिक कब अखरता है ? '

सूरदास जी हँसे। बोले— 'आपने तो एक ही प्रश्न मे अन्धे की पूरी जिन्दगी तराजू पर रख कर तोल दी !"

मैं जिज्ञासा से चुपचाप उनकी तरफ देखता रहा। वह जरा ठहरकर बोले, "अन्धे को आँखो का न होना, सबसे ज्यादा कभी-कभी रात मे सोते-सोते अखरता है।"

मैं भौंचक हो, सूरदास जी की तरफ देखता का देखता रह गया और तब मेरे मुँह से निकला "रात मे सोते-सोते आप को आँख का न होना सब से ज्यादा खटकता है ?"

' जी हाँ !" वह बोले— बात यह है कि जैसे आपके लिए आँखो का

होना सहज-स्वाभाविक है वैसे ही हमारे लिए आखा का न होना। हमारे सभी काम वसे ही हात जात हैं, जसे आपके सब काम। इन कामा के करने का और भी कोई तरीका है यह हम कल्पना भी नही होती और जीवन या चलता रहता है कि हम यह याद ही नही आता कि आँख भी काई चीज होती है और दखन का भी कोई सुख हाता है पर रात मे सोते सोत जब हमे काई भला मा मपना दीखता है तो देखन का आनन्द मिलता है। हमे पता चलता है—यह है दखना, यह प्रकाश, पर सपना टूटने पर जब फिर अपने चारो आर अधेरा ही अधेरा दीखता है ता वह अधरा हजारा गुना ज्यादा काला हो जाता है और आखा का ही नही घेरता, आत्मा को भी घेर लेता है।"

जरा रुककर वह बाल, अभी कल की ही बात आप को बता दू। सपन म मै अपनी जन्म भूमि पहुँच गया। गाँव म खूब घूमा। मन्दिर देखा, उसकी महकती फुलवारी देखी, एक से एक सुदर फूल और लाला गोपीनाथ का नया मकान देखा। बैठक का ता सजाकर उन्हाने इन्द्रपुरी बना रखा है। दीवार पर एक से एक चित्र लग है। मुझे तो राम जी का चित्र बहुत ही पसन्द आया।

गाँव म नट आय हुए थे। उनका तमाशा भी देखा। वाह, कसी-कैसी कलाएँ दिखाइ उस तरुण नट ने, पर रस्सी पर उछलने की कला म वह धप से धरती पर क्या गिरा मैं ही आ गिरा। एकदम से आँख खुल गयी और आँख क्या खुली आँख फूट गयी। कहाँ वह तमाशे की रोशनी, कहाँ यह प्रलय अधेरा। सुबह तक फिर नीन्द नही आयी और बार बार सोचता रहा-जब अधे को ससार म और कुछ नन्ही दीखता ता ये सपने ही क्यो दीखत हैं?"

कुछ देर वातावरण सुन्न रहा। सूरदास उठकर चले गये और मैं सोचता रहा—विश्व के साहित्य म सब कुछ है पर सूरदास के इस प्रश्न से अधिक ममवधी शायद कुछ भी नही है कि जब अधे को ससार म और कुछ नही दीखता, तो य सपन ही क्यों देखने हैं!

वातावरण मे सूरदास के प्रश्न से जो अधेरा भर गया था, वह धीरे-

उम जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
धरदाम (कविता संग्रह 1934)
, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

धीरे हल्का हुआ, तो मुझे ध्यान आया कि मैं तो यहाँ एक रोचक निबन्ध लिखने बैठा था। खैर, मैंने अपना ध्यान इधर उधर से समेटा और मन लिखने की ओर झुकाया कि बस लिखता हूँ एक सपाटे में अपना निबन्ध कि आ गयी बेटी कल्पना!

आयी और मेरी कुर्सी से लगकर खडी हो गयी। बच्चों की एक मूक भाषा होती है। मेज़ के सामने न आकर कुर्सी के पास आ खडे होने का अर्थ है कि महारानी को कुछ चाहिए और वह चाहिए इतना आवश्यक है कि उसे इकार न किया जाये।

भाव समझकर धीरे से कहा, 'क्या बात है बेटी?"

बात स्पष्ट हुई, "केला ले दीजिये।'

समय की बात, एक बहुत उम्दा अमरूद मेरी दराज में रखा था। निकालकर मैंने कहा, "ले, यह खा, बहुत ही मीठा है।'

एक बार उसका हाथ आगे बढा, पर तभी उसे पीछे हटा लिया उसने और बोली, "ना, मैं तो केला ही लूगी।"

यो ही मैंने पूछा, 'तुझे केला ही इतना क्यो पसन्द है बेटी?"

बोली, "केले मे तीन खास बातें है। पहली यह कि वह बहुत स्वाद होता है। दूसरी यह है कि वह गल जाने पर भी खराब नही होता और ज्यादा मीठा लगता है। तीसरी बात यह कि उसे छीलने के लिए चाकू की जरूरत नही होती।"

मैं आश्चर्य से उस छोटी-सी लडकी को देखता रह गया। सोचा—ओहो, कल्पना का केला प्रेम तो पूरा गणितशास्त्र है!

खैर, उठकर केला मैंने उसे दे दिया वह चली गयी और मैं फिर अपनी कुर्सी पर आ बैठा। आखिर मुझे तो एक रोचक निबन्ध लिखना ही था, पर तभी आ गये शकर जी। अपने ही आदमी हैं। कहना पडा—आइये बैठिए।

वह बैठ गये, पर मैं जानता था कि शकर जी कुर्सी चिपक महानुभाव हैं, इसलिए अपनी परिस्थिति का पूरा चित्र उनके सामने रखते हुए मैंने कहा —'मुझे आज ही एक रोचक निबन्ध लिखना है, पर सुबह से अब तक

एक पक्ति भी नही लिख सका। कभी कभी ऐसा कमाल हो जाता है कि बस क्या कहूँ।"

तपाक से बोले, 'कमाल ! कमाल की बात मैं सुनाऊँ आपको और एकदम ताजी। कल गाँव मे शहर आया, तो मेरा थर्मामीटर कही गिर गया। लौटकर गाव मे पूछा, 'अरे भाई, किसी को मेरा थर्मामीटर मिला है क्या ?'

"पता चला कि बुद्दू के बेटे को पाया है वह। मैं बुद्दू चौधरी के घर पहुँचा। वह घर के बाहर खाट डाले बैठा था। मेरी बात सुनकर बोला, 'मुझे तो मालूम नही, लडका भीतर घर मे है, पूछता हूँ उससे।

'थोडी देर म बुद्दू मियाँ घर मे से निकले और खोल मे मेरा थर्मामीटर मुझे देते हुए बोले लडका बडा जिद्दी है, देता ही नही था। मैंने बडी मुश्किल से उसे मनाया और मुहँ की जरा-सी चाँदी तोड कर तो उसे दे दी, बाकी यह लीजिए।

"मैंने खोलकर देखा, मेरे लिए वह अब बेकार था और उसी तरह कुछ कहना भी। सादगी से मैंने कहा, 'लो, बुद्दू मियाँ यह पूरा का पूरा ही उसे दे दना, बच्चो का मन तो रखना ही पडता है', और अपने घर लौट आया।'

मैंने घडी देखी एक बज रहा था। मैं उठ खडा हुआ। सोचा—रोचक निबन्ध तो नही लिख सका, पर यह समय बीता रोचक बातो मे ही। अब किसी और दिन लिखूगा अपना रोचक निबन्ध।

[illegible] 1981
[illegible] (1974)
[illegible]—110033

चटखनी और बेडी

• ० •

मैं पुरुष हूँ, अपने घर का बादशाह हू और हमेशा बादशाह ही बना रहना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ और बहुत से साथी मुझे कहते भी हैं कि अब बादशाहो का जमाना नही रहा, यह तो राष्ट्रपतियो का जमाना है।

बादशाह पदायशी होते थे और राष्ट्रपति अपने गुणो के कारण दूसरो के द्वारा चुने जाते हैं।

मैं यह भी जानता हूँ कि राष्ट्रपति का पद बादशाह से कुछ कम सम्मान का नही है पर क्या करू मुझे अपने लिए राष्ट्रपति का नही बादशाह का ही पद अच्छा लगता है। बादशाह आखिर बादशाह है।

मैं पढा लिखा हूँ, दस भले घरो मे मेरा आना जाना है, सभा सोसायटियो मे भी मेरा सम्बन्ध है, पर मैं अपने स्वभाव से मजबूर हूँ। मुझे यह अच्छा नही लगता कि किसी और की साक्षी से मेरा सर्वाधिकार घोषित हो और न मुझे यही अच्छा लगता है कि मुझे ऐसे नियमो से बधकर चलना पडे, जो दूसरो के बनाये हो या जिसके लिए दूसरो का समर्थन पाना आवश्यक हो।

मैं चाहता हूँ कि मेरी इच्छा हो, मेरे नियम हो मेरे घर मे मेरी बात ही कानून हो और मेरी बात को कानून की तरह ही माना जाये, उसमे काट छाँट परिवर्तन-परिवर्धन और ननुनच न हो।

बात वही है कि मैं पुरुष हूँ अपने घर का बादशाह हूँ और हमेशा बादशाह ही बने रहना चाहता हूँ।

एक बात साफ है कि एक देश मे एक ही बादशाह हो सकता है,

दो बादशाह एक मुल्क मे नही रह सकते, दो बादशाहो के एक साथ होने का अर्थ है कलह, सघर्ष और युद्ध ।

सौ बातो की एक बात है और वह बात यह है कि मैं उस नारी को ही सुघड नार मानता हूँ, जो बिना किसी हिचर मिचर के मुझे बादशाह मान ले और मेरी बात को बात नही कानून समझे, कानून की तरह उसका पालन करे, दूसरे शब्दो म या समझो कि मै ऐसी नारी को ही अपने हृदय का प्यार दे सकता हू जो पूरे मन से मेरा शासन स्वीकार करे ।

ख्वाजा हसन निजामी एक ऐसे आदमी से मिले, जा दिल्ली के पुराने बादशाहो के खानदान की किसी पीढी मे है । अब कहाँ है दिल्ली की बादशाहत ? उड गया वह तूफानी हवा के झाको मे, पर खून मे तो अब भी उसके बादशाहत है । भैस का ठेला हाँकता है बेचारा, पर कभी पल भर को भी नही भूलता कि वह शहशाह का पडपोता है । अपने ठेले पर जब रात म सोता है, तो यही अनुभव करता है कि दिल्ली के लाल किले मे है ।

ख्वाजा साहब उनस मिले तो पूछा, ' शाहजादे तुमने यह ठेला चलाने का रोजगार ही अपने लिए क्या चुना ?"

सुनकर उसके चेहरे पर उदासी की एक लहर दौड गयी पर तुरत ही उस जगह एक शाही तनाव आ गया, बोला—'ख्वाजा साहब, हुकूमत बाहर से लुट गयी पर अन्दर दिल म तो कायम है । मैं जानता हूँ कि अब मैं शाहजादा नही एक ऐसा ठेल वाला हूँ, जिसकी कोई इज्जत नही, पर अपनी आँखो म ता शाहजादा ही हूँ । बादशाहा और उनके शाहजादो की दो आदतें हाती हैं कि किसी से खुश हो गय, तो उसे इनाम दे दिया और नाराज हा गय तो सजा फरमा दी । इस ठेल के राजगार मे दोना आदतें पूरी हो जाती है । किसी दिन इस भैंस के काम से खुश होता हूँ, तो अपनी बनायी चार रोटियो म स एक इसे द देता हूँ और प्यार से इस पर हाथ फेर देता हूँ, पर किसी दिन किसी बात पर गुस्सा आ जाय तो चार हटर खीच दता हू । ए मेर हुजूर, यह ठेला भी तो इस तरह एक बादशाहत ही है ।'

बस या समझ लीजिए कि जो हालत उस ठेलेवाले शाहजादे की है,

वही हालत अपने घर म मैं अपनी चाहता हूँ। कहा तो आपसे कि मैं पुरुष हूँ, अपने घर का बादशाह हूँ और हमेशा बादशाह ही बने रहना चाहता हूँ, मेरी इस बादशाहत को जो स्त्री माने, सिर-आँखो ले, वही सुघड नार है।

मैं जो कुछ चाहता हूँ, उसम कोई अनुचित बात नही है, न अन्याय की ही कोई बात है, मेरे महान देश भारत के महर्षियो ने अपने रचे धर्म-शास्त्रो मे पुरुष को, पति को पत्नी का परमेश्वर कहा है। क्या परमेश्वर की इच्छा म बाधा डालने का किसी को अधिकार दिया जा सकता है? क्या वे महर्षि मूख थे, जिन्होंने शास्त्रा म यह बात लिखी? वे पुरुष थे और जानते थे कि पुरुष को परमात्मा ने बनाया ही शासन करने के लिए है और शासन मे वही सफल हो सकता है जिसकी बात कोई न काटे, जिसकी बात हमेशा सबसे ऊपर रहे, जिसकी मर्जी को दूसरे भी अपनी मर्जी मानकर चलें।

'स्त्री भी तो अपनी मर्जी के अनुसार जीना चाहती है।' ठीक है बात। स्त्री के भीतर भी जान है और जहाँ जान है, वहाँ मर्जी और इच्छा होगी ही, पर सुघड नार वह है जो जिये अपनी मर्जी से, रहे अपनी मर्जी से चले *अपनी मर्जी से पर अपनी मर्जी को पहले मेरी मर्जी बना ले,* मुझ यह अनुभव न हो कि वह मुझे अपनी मर्जी के पीछे हाँकना चाहती है, मुझे यही अनुभव हो कि वह जिस राह चल रही है, वह उसकी नही, मेरी मर्जी की राह है, मैं उसके साथ ही नही, उसके पीछे भी चल सकता हूँ, पर शर्त यही है कि मुझे महसूस यही हो कि वही मेरे साथ, मेरे पीछे, मेरी राय से चल रही है।

क्या मेरी राय कभी गलत नही हो सकती? क्या मैं कभी कोई ऐसा काम नही कर सकता जिसे नतिक दृष्टि से अपराध कहा जा सके? प्रश्न ठीक है आपका। मेरी राय गलत हो सकती है। मेरा काम अपराध हो सकता है, पर यह किसकी गलती होगी? किसका अपराध होगा? यह उसकी गलती होगी, उसका अपराध होगा, जिसे शास्त्रों ने ति ५२ कहा है।

इस गलती को चुपचाप सहा जाय और इस अपराध के बाद भी अपराधी को सम्मान की दृष्टि से देखा जाय यही सुघड़ नार का धर्म है। साधारण स्थिति में आदमी अपने को उस आदमी से दूर कर लेता है, जिसके काम को वह पसंद नहीं करता पर सुघड़ नार मैं उसे ही मानता हूँ जो उन घड़ियों में भी मेरे प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करती रहे।

अजी अब युग बदल गया है। यह स्त्री-पुरुष की समानता का युग है। पुरुष को परमेश्वरी के दिन लद गये।' इस तरह की बातें कहनेवाले मुझे और भी मिले हैं और आप भी यही कह रहे हैं उनको और आपको यह बात भी ठीक है कि मैं एक साथ दो युगों में जी रहा हूँ, घर-गृहस्थी के मामले में मैं पुराणपंथी हूँ पर खान-पान, रहन-सहन के मामले में मैं आधुनिक हूँ।

नारी के लिए मेरा नारा है—तुम अपनी आत्मा मेरे हवाले करो, मैं तुम्हें भोजन वस्त्र आभूषण मकान आदि की सुविधा दूंगा। जो स्त्री इस नारे पर नत-मस्तक हो इसे वरदान मानकर स्वीकारे, मैं उसे ही आदर्श नारी मानने को तैयार हूँ।

मैं मानता हूं कि मुझमें पुरुष का अहं बोल रहा है, पर बोलते अहं का ही तो नाम है पुरुष, मैं पुरुष हूँ अपने घर का बादशाह हूँ और बाहर कैसी भी परिस्थिति हो मैं अपने घर में हमेशा बादशाह ही बने रहना चाहता हूँ, सुघड़ नार आदर्श महिला वही है जो मेरी इस चाह को पूर्ण करने में मन से सहयोग दे जो ऐसा नहीं करती वह लाख शिक्षित, सुसंस्कृत, गुणमयी और सुन्दर हो, मेरी दृष्टि में तो अनघड़ नार ही है।

यह पुरुष के नादिरशाही अहंकार का रेखाचित्र है। कहीं यह अंगार होकर घर को जलाता है तो कहीं गरम भूमल बनता घर को रहने के अयोग्य अवश्य कर डालता है।

नारी का स्वभाव है सत्कार है अपने से श्रेष्ठ पुरुष के प्रति समर्पित होना, उसे आदर से आराध्य मान लेना, पर परेशानी यह है कि वह राम हुए बिना ही पत्नी से सीता होने की आशा करता है। उसका अहंकार नारी को अपने से श्रेष्ठ स्वीकार करने को तैयार नहीं। कहीं गुणों में नारी पुरुष

से श्रेष्ठ हो, तो वह गर्व नहीं करता, आदर नहीं देता, ईर्ष्या से क्रुद्ध हो झझोड़ता है और स्वर्ग को नरक बनाने मे जुटा रहता है। मतभेद के समय सौ मे सौ बार वह अपनी ही बात मनवाना चाहता है, क्योंकि वह अपनी बात को ही बात मानता है, झझोड़ना चिल्लाना ही उसके तर्क हैं और समाज म नारी की असहायता ही उसका बल।

इटली की श्रेष्ठ कहानी लेखिका श्रीमती कारोला प्रोस्परी की एक कहानी है उसका प्रधान पात्र है पियेत्रो। अपने घर का बडा है। घर मे पत्नी है और चार बच्चे हैं। परिवार मे सब कुछ है पर आनन्द नहीं है। पियेत्रो के कडवे स्वभाव की काली छाया ने सारे परिवार को मातमी खामोशी से ढक दिया है। वह हडकाये कुत्ते की तरह सबके पीछे पडा रहता है। भूत की तरह सब उससे डरते हैं।

उसकी बातचीत का ढग यह है—एक दिन वह अपने कमरे मे बिना बिजली जलाये घूम रहा था बिना कारण जला भुना, कोई जरूरी बात कहने उसकी पत्नी वहाँ गयी नम्रता से पूछ कर ही वह कमरे मे घुसी और बहुत प्यार से उसने कहा, ' तुम बहुत सिगरेट पी रहे हो, स्वास्थ्य के लिए यह अच्छा नहीं है, तुम तो जानते हो और यहाँ अधेरे म क्या बैठे हो ?"

पियेत्रो ने बिजली जलायी और क्रुद्ध आँखो से पत्नी को देखकर उससे कहा, ' न जाने इस उम्र मे तुम एसे बाल क्यों सवारती हो ? '

पत्नी बच्चो की तरह सिसक सिसक कर रोने लगी, पर उसे अपनी बडी बेटी की सगाई के बारे म बात करनी थी। वह माँ थी। उसने जहर का घूट पीकर अपने को सभाला और भावी दामाद का उसे परिचय दिया। कितनी खुशी की खबर थी, पर पियेत्रो इस धरती पर भी बेहद तेजी से घुरडाया और उसने बेहूदे प्रश्नो की झडी लगा दी। इसके कुछ देर बाद भोजन के समय बच्चो की हँसी से कुढकर वह रात मे ही अपने गाँव चला गया।

गाँव के अकेलेपन मे उसे वे सब सुख याद आये, जो उसे प्रतिदिन अपनी पत्नी और बच्चो के द्वारा प्राप्त होते थे। उनके अभाव ने उस भाव

दिये। वह बहुत पछताया कि उसी ने सारे परिवार को परेशान कर रखा है। उसे याद आया कि उसके पिता भी पूरे ज्वालामुखी थे और उनके चिड-चिडेपन के कारण वह अपने पिता से घृणा किया करता था। उसके मन मे जलती लुकाठी-सा एक पैना प्रश्न खडा हो गया—क्या मेरे बच्चे भी मुझसे घृणा करते हैं ? इस प्रश्न ने उसे बेचन कर दिया और उसने खडड मे कूद कर आत्महत्या कर ली।

कहानी ममस्पर्शी है, पर अदभुत नही क्योकि हम अपने देश के परिवारा मे दस-बीस नही, पियेत्रो के हजारा जीते-जागते सस्करण देख सकते हैं। जिन्होने अपने अहकार और झका के कारण घरो को नरक बना रखा है जिनस पत्नियाँ परेशान और बच्चे सहमे हुए हैं।

कोई उनसे यह भी नही कह सकता कि बेवकूफ, तू यह क्या कर रहा है, क्याकि वे पति हैं, घर के बादशाह! वे जो करें, वही ठीक है। हजारो साल नारी परिवार म अधिकारहीन होकर रही है, कत्तव्य ही उसका जीवनधम रहा है। धर्म की इस रेशमी भावना ने उसे शात-सतुलित रखा है पर युग ने उसे अधिकार की चेतना दी है उसके अस्तित्व ने व्यक्तित्व की माँग की है।

पुरुप अपने अहकार की जडता म उसे स्वीकार नही कर पा रहा है, फलस्वरूप परिवार म प्रजातन्त्र पनप नही रहा है और अस्वस्थ अधिनायकता उसे अस्त-व्यस्त कर रही है।

प्रजातन्त्र है—असहमति म सहमति की अनुभूति, पर यहाँ है बलपूवक थोपी सहमति की उत्तेजना। इसके दूरवर्ती परिणाम विचारणीय हैं चिन्तनीय हैं, क्योकि परिवार म प्रजातन्त्र विकसित न हो तो राष्ट्र मे भी प्रजातन्त्र विकसित नही हो पाता और वह रोग के कीटाणुओ से शिथिल, शक्तिहीन हो जाता है तब फासिज्म जन्म लेता है और समाज की सहज उन्मुक्तता छीनकर उसे निपेधो के बन्धनो मे जकड देता है। तब नागरिक चलते नही हैं रेंगते हैं और जीवन की धारा म तरते नही, बहते रहते हैं, समाज का जीवन एक विशेष भ्रम म जीने को विवश हो जाता है।

क्रोधी, झक्की, चिडचिडे और बक्की पुरुप ! तूने कभी सोचा है कि अपनी आग म तू व्यवहार के जिस लोहे को तपा रहा है, उसम तेरे घर की चटखनी नहीं, तेरे परों की बेडी का ही निर्माण सम्भव है।

सुलह-समझौता

• • •

एक बार फिर कहिए तो, कि क्या कहा आपने ?

जी, क्या कहा, जरा फिर कहिए तो !

मैंने पहले कहा और मैं फिर भी वह दूगा, कोई बात नही, पर तुम यह तो बताओ कि *क्या अल्लामिया* के कारीगर ने तुम्हारे कानो म सैकेण्ड-हेड यानी कबाडी बाजार वाले पर्दे लगा दिये है जो तुम्हे सुनाई नही देता और तुम फिर कहिए फिर कहिए की माला फेरते रहते हो !

कान के पर्दे मेरे कान के पर्दे ? अजी, मेरी कान के पर्दे तो वसे ही नम्बर एक हैं जसे आपके हारमोनियो के स्वर इतने तेज है मेरे कान कि कहने से पहले सुन लेते है ।"

वाह प्यारे वाह, शेखचिल्ली के उत्तराधिकारी यानी वारिस मालूम होते हो, तभी तो वो गप मारी कि जमाने की सब गप्पें मात हो गयी, पर यह तो बताओ कि तुम्हारे कान ठीक हैं तो फिर मेरी बात तुम्हे क्या नही सुनाई दी ?

बात-बात का क्या सुनना—वह आपने कही और मैंने सुनी, पर भाई साहब, बात सुनने से बात समझने म नही आती और जब समझ की खिडकी म कोई बात समाये ही नही, तो उसका जवाब क्या दिया जाय।

फिर बात समझ म कसे आती है ?

अजी, बात समझ मे आती है उसकी जात का पता लगने से।

तो भले मानस, बात की भी जात होती है ?

जी हाँ, बात की ही जात होती है। लीजिए, सुनिए। एक बात कही जाती है गले से एक बात कही जाती है दिमाग से और एक बात कही जाती है दिल से। कहिये बात की जात होती है या नहीं।

आपकी बात मैंने सुन ली आप कहते हैं कि आप सुलह शान्ति चाहते हैं पर सवाल तो यह है कि आपकी चाह आपके होठों में है, दिमाग में है दिल में है वह कहाँ से बाहर आ गयी है।

अरे भाई वह कहीं से बाहर आयी हो, है तो सुलह शान्ति की चाह ही। फिर उसमें क्या फर्क पड़ता है।

फर्क, कुछ मामूली फर्क पड़ता है अजी जमीन-आसमान का फर्क, धरती-पाताल का फर्क और दिन रात का फर्क। सुलह शान्ति की चाह सिर्फ होठों पर रहती है वह सुलह समझौते पर पहुँच जाये तो काम याब नहीं होती और कागज पर ही रह जाती है। आप तो विद्वान हैं। उसी दिन आपकी तबियत पूछने गया। तो मैंने देखा था कि आपकी अलमारियों में इतिहास की बहुत अच्छी-अच्छी पुस्तकें लगी हुई थीं। तब आप स्वयं ही जानते होंगे कि हमारे देश में और दूसरे देशों में भी ऐसे सुलह-समझौते होते रहे हैं जो कागजी दस्तावेजों में बन्द हैं और जिन पर बाद की तो बात ही क्या बनने के दिन भी अमल नहीं हुआ। बात साफ है कि वे होठों पर उछलने का बैडमिंटन खेलने वाले सुलह-समझौते थे, दिलों से दिलों में उतरने वाले सुलह समझौते नहीं।

भैया यह तो तुमने एक बारीक बात कह दी।

भाईसाहब, इससे भी बारीक बात यह है कि अगर दिल में प्रतिहिंसा और प्रतिशोध भरे हों और समभाव दबाव से दिमाग समझौते की बात मान भी लें, तो मन की किसी न किसी रूप में फूट पड़ती है, और सब करा-कराया चौपट हो जाता है जैसे चौधरी ने कर दिया था।

कौन से चौधरी ने? किस तरह कर दिया था सब करा कराया चौपट? जरा मुझे भी तो सुनाओ पूरी बात, तुम तो भाई बातों का भण्डार हो।

चौधरी की बात किसी पुस्तक ग्रन्थ में नहीं हमारे लोक-जीवन में सुरक्षित है लीजिये, आप भी सुन लीजिये—

का क बद्द (क. ५२१ म२२ 1951)
(कविता म०ड 1974)
मन्द [सं क्र "रद"२२ ट्टपप—4,000]

एक गाँव मे दो आदमी रहते थे। एक था किसान, एक था दुकानदार। दोनो खाते-पीते, दोना के घर मे जवान बेटे। दोनो का कोई बाँटा साझा नही, पर दोनो मे दुश्मनी। गाली गलौज कहा सुनी तो रोज की बात, पर जब तब लाठी डण्डा और सिर फटोवल मे कमी नही। दोना के गुट, कोई इधर, कोई उधर, बाप एक के साथ तो बेटा दूसरे के साथ। गाँव की हालत यह कि जस साण्डा की आवाज हो। अच्छे काम सब बन्द, बुरे कामो म खूब उफान। जीते जी नरक का सीन।

एक दिन चार भले आदमियो म सलाह हुई कि इस हुडदग को रोका जाये। उन्होने औरो से बात की। सभी परेशान थ सभी शान्ति चाहत थे। एक दिन पचायत बुलाई गयी, दूकानदार तो मान गया कि लडाई नही करेगा, पर किसान मानता ही न था। अन्त मे पचा ने कहा—तुम हमारी बात नही मानत तो हम तुम्हारा बाइकाट कर देंगे और गाँव का कोई आदमी तुमसे किसी तरह का सम्बन्ध नही रखेगा।

यह बडी बात थी, क्योकि शहर मे तो आदमी बाजार, होटल से काम चला सकता है पर गाँव मे तो बिरादरी-नातेदारी का ही सहारा है। उसने मजूर किया कि पच जो हुकुम देंगे, वह मानेगा। तब पचा ने हुकुम दिया कि किसान सब पचो को अपने घर बुलाकर हलवा खिलाए। दूकानदार को भी बुलाये और खुद हलवा परोसे।

एक दिन किसान ने पचो को और दुकानदार को अपने घर बुलाया। पगत बैठी, पत्तल परसी गयी और किसान खुद थाल लेकर हलवा परसने लगा। परसते-परसते जब वह दुकानदार के सामने आया तो दिल की दुश्मनी भडक उठी। अब वह क्या करे! एक तरफ पचो का हुकुम! किसान ने झट अपने पैर का जूता दुकानदार की पत्तल पर निकाला और जूते मे हलवा परस दिया।

उसका कहना था कि मैंने पचो की बात नही टाली, पर सुलह-समझौते की योजना पर तो पानी फेर दिया। आप ही बताइए कि फेर दिया या नहीं। तो भाई साहब, होठो पर बैडमिंटन खेलनेवाला समझौता नहीं टिकता और जब डराव-दबाव से दिमाग में चिपकाया समझौता टिकता

है वो, जो दिल मे समा जाये और दिल से दिल म उतर जाये।

क्या भाई, समझौता किया ही क्या जाये। एक विद्वान की राय है कि समझौता करने का मतलब है अपनी बात से हट जाना और जो अपनी बात स हटे वह और चाहे जो हो, मर्द नही है। मर्दानी बात तो यह है समझौता-वमझौता कुछ नही, कार्यंवासयेम शरीर पातयेमम या तो विजय पायें, या फिर मर जायें, तुम नही या हम नही।

तो भाई साहब, आप मानते है कि जीवन मे समझौते का कोई स्थान नही ?

ना जीवन म समझौते का कोई स्थान नही। समझौते का साफ मतलब है सिर झुकाना और सिर झुकाने से अच्छा है सिर कटाना।

लेकिन सिर खुद एक समझौता है भाई साहब, इसका क्या उपाय कीजिएगा।

सिर सिर समझौता है कैसा समझौता ? सिर सिर है वह कोई समझौता नही है।

अजी भाई साहब आत्मा है चैतन्य, मिट्टी जड। जड और आत्मा के समझौते से जीवन बनता है जीवन चलता है और जीवन न हो, तो सिर कधा पर कहाँ रहे, वह गलियो से सडे कद्दू सा लुढकता फिरे। यह समाज भी समझौता है जिसम हम रहते पनपते हैं। कपडेवाले के पास कपडा है दर्जी के पास मशीन है। कपडेवाला कपडा दबाए बैठा रहे, दर्जी साहब खाली मशीन धडाधड चलाते रहे पर कुरता नहीं सिल सकता। दोनो समझौता करलें, तब भी कुरता नही सिल सकता। क्योंकि धागा धागेवाले के पास है और बटन बटनवाले के पास। समझौते से कहाँ तक बचिएगा। भाईसाहब, यह पूरी जिन्दगी ही एक समझौता है। स्त्री पुरुष म समझौता न हो तो हमी-खुशी का करजा हमारा पल भर मे सूखा ढोकडा हो जाए।

तुम्हारी बात गहरी है और समझ म आती है कि समझौता जीवन म जरूरी है पर क्या जिससे एक बार दुश्मनी हो जाये, लाख समझौते करो, दोस्ती तो उसम हो नही सकती।

भाई साहब, आपकी वात अपनी जगह ठीक है, पर प्रश्न नम्बर एक यह नही है कि दुश्मनी के बाद दोस्ती हो सकती है या नही ? प्रश्न नम्बर एक तो यह है कि दोस्ती क्या है दुश्मनी क्या है इस बारे म हमारे विचार घुधले ह और इसी से सब झमेला है। राशनी की वात यह है कि दास्ती और दुश्मनी कोई ठोस चीज नही है ये मन के भाव हैं—मन के हारे हार है मन के जीते जीत। दो आदमी दो देश अगर दुश्मनी को वात सोचन लगते हैं तो दुश्मनी का भाव माहौल बन जाता है। और दास्ती की दिशा म सोचने लगें, तो दास्ती का भाव माहौल बन जाता है।

लीजिए यो समझिए कि इस बात को—फ्रास इग्लण्ड म लगभग सौ साल तक युद्ध चला पर अब दोना देश दूधमानी जसे दोस्त हैं। दुश्मनी, लडाई और युद्ध के विरुद्ध सबसे वडी दलील यह है कि ये कभी स्थायी नही हो सकती। आप ही बताइए कोई एसा युद्ध है जिस का अत समझौते से न हुआ हो। गाधीजी ससार को सबसे बडा यही तत्वज्ञान दे गये हैं कि बुराई म लगे पर बुरे से प्यार करो, क्योंकि लडाई से उसकी बुराई छूट गयी, तो वह बुरा रहेगा ही नही।

बस एक बात और कि समझौते करना तो वडी बात है ही, समझो की वडी बात है और इसकी बारीकी यह है कि हम हार-जीत और समझौते का फक समझें। नेपोलियन जीता, तो देश उसके कब्जे म आ गये और हारा तो वह कैदी बन गया, पर समझौते मे देना-लेना होता है। जो लोग देने को देखने रहते है और लेने पर ध्यान नही देते, वे समझौते को नही समझ सकत। जिन्दगी न ताना है न बाना, वह तो ताना-बाना है। उसे अलग करके देखें तो उघडा सूत रह जाता है, कपडा नही। तो समझौते को, समझने की कला यह है कि परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य मे हम यह देखें कि क्या हमने दिया और क्या पाया और क्यो इतना दिया और क्यो इतना ही पाया।

• • •